

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में पारिस्थितिक  
सजगता का अध्ययन

SAMAKALEEN HINDI UPANYASOM MEIN  
PARISTHITIC SAJAGATA KA ADHYAYAN

*Thesis submitted to*

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

*for the award of the degree  
of*

**DOCTOR OF PHILOSOPHY**

*By*

इन्दु पी.एस.  
INDU P.S.

*Supervising Teacher*

**Prof. (Dr.) M. SHANMUGHAN**

DEPARTMENT OF HINDI  
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY  
COCHIN-682002

October-2012

## *Certificate*

This is to certify that this is a bonafide record of research work carried out by **INDU P.S**, under my supervision for Ph.D degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university.

**Dr. M. Shanmughan**  
Supervising Teacher

Dept. of Hindi  
Cochin University of Science and Technology  
Cochin-682022

Place : Cochin  
Date :

## **DECLARATION**

I hereby declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of Dr. M. Shanmughan, Professor (Retd), Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin-682 022, and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university.

**INDU. P.S.**

Dept. of Hindi  
Cochin University of Science and Technology  
Cochin-682022

Place : Cochin

Date :

## पुरोवाक

पृथ्वी और पृथ्वी के जीव जालों पर जब-जब आतंक या हमला होता रहा तब-तब उसका प्रतिरोध भी आदिकाल से लेकर होता आ रहा है। इसका कारण और कुछ नहीं बल्कि मानव और प्रकृति के बीच की आत्मीयता है। पूरे विश्व का संतुलन ही इन दोनों के बीच की पारस्परिकता पर निर्भर है। भारतीय साहित्य का मेरुदंड इन दोनों के बीच की आत्मीयता है। इसलिए भारतीय परंपरा को आत्मसात करनेवाले रचनाकार साहित्य के मूल में प्रकृति एवं मानव के बीच के सह-अस्तित्व को सुरक्षित रखते हैं।

मगर पूँजीवादी विकास संकल्पना के ज़ोर पकड़ते ही प्रकृति और मानव की यह आत्मीयता घटने लगी। मानव प्रकृति से अलग होने लगा। विकास की ओर अग्रसर मानव प्रकृति पर वार करने लगा। इसमें कोई शक नहीं है कि मानव का विकास ही नहीं बल्कि उसका समूचा अस्तित्व ही पर्यावरण पर आधारित है। पर्यावरण, मानव संसाधन और विकास इन तीनों का संतुलन एक ओर जहाँ विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है, वहीं दूसरी ओर इनका असंतुलन मानव समाज को काल के कराल हस्त में तिरोहित होने को विवश कर देता है। इतिहास गवाह है कि मानव सभ्यताओं के पतन के पीछे पर्यावरण और मानवीय संसाधनों का असंतुलन प्रमुख वजह रहा है।

आज औद्योगिक विकास के नाम पर पारिस्थितिक संतुलन को तहस-नहस किया जा रहा है। विकास के नाम पर जंगलों को बर्बाद करना, पेड़ों को काटना, जानवरों को मारना, बड़े-बड़े कारखानों का निर्माण, उससे कई तरह के प्रदूषण का उत्पन्न होना, नदियों का ज़हरीला होना, शोषण से उनका सूख जाना, वायु को प्रदूषित करना, भौम संतुलन को बिगाड़ना आदि सचमुच विकास नहीं बल्कि मनुष्य का अपने लिए कब्र खोदना है। इससे मानव जीवन काफी खतरनाक हालत का सामना करता आ रहा है।

साहित्यकार सहज ही सूक्ष्म द्रष्टा होते हैं। वे इन खतरनाक परिस्थितियों को पूरी तरह से भाँप लेते हैं और अपनी सृजनात्मकता के ज़रिए उसका प्रतिरोध करते हैं। समकालीन साहित्य की सबसे बड़ी खूबी यह प्रतिरोध है यानी कि रचनाकार की सृजनात्मक जागरूकता है। इस पारिस्थितिक विनाश के खिलाफ रचनाकार की सजगता का अनुपम मिसाल है आज का उपन्यास साहित्य। यह शोध प्रबन्ध समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य में मौजूद पारिस्थितिक सजगता को परखने का विनम्र प्रयास है।

मैंने इसका शीर्षक 'समकालीन हिन्दी उपन्यासों में पारिस्थितिक सजगता का अध्ययन' रखा है। अध्ययन की सुविधा के लिए यह चार अध्यायों में विभाजित है। अंत में उपसंहार है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का पहला अध्याय दो खंडों में विभाजित है जैसे (क) 'पारिस्थितिक दर्शन का विश्लेषण' तथा (ख) भारत में पारिस्थितिक आंदोलनों का विकास। पहले खंड में प्रकृति और मानव का संबन्ध, जीवन के स्थायित्व के लिए प्रकृति संतुलन की अनिवार्यता, मानव की उपभोग संस्कृति के परिणामस्वरूप बनती विपत्ति आदि का विश्लेषण किया गया है। इस खंड में आगे पारिस्थितिक दर्शन पर विस्तार से विचार किया गया है। पर्यावरण, परिवेशकी व प्रदूषण संबन्धी अवधारणाओं का विकास, रेचल कार्सन का 'निशब्द वसन्त' (silent sprint) में चर्चित पारिस्थितिक विचार तथा पारिस्थितिक दर्शन एवं उसके चार आयामों, गहन परिस्थितिवाद, सामाजिक परिस्थितिवाद, पारिस्थितिक समाजवाद एवं इकोफेमिनिज़म के विचारों को एकत्रित किया गया है।

दूसरे खण्ड में स्वातंत्र्योत्तर भारत के सत्ताधारियों की तरफ से पारिस्थितिक-संतुलन के खिलाफ आयोजित विकास संबन्धी विचारधाराओं को एकत्रित किया गया है। साथ-साथ बृहद्-बाँधों का निर्माण के बारे में और जंगलों के विनाश उससे उत्पन्न प्राकृतिक प्रकोपों पर विस्तार से विचार किया गया है। इसके अलावा विभिन्न पारिस्थितिक आंदोलनों जैसे सैलेंटवाली संरक्षण आंदोलन, चिपको आंदोलन, भोपाल दुर्घटना, नर्मदा बचाओ आंदोलन, प्लाच्चिमड़ा में कोका-कोला के खिलाफ आंदोलन एवं छत्तीसगढ़ में शिवनाथ नदी बचाओ आंदोलन आदि प्रमुख आंदोलनों का परिचय इसमें दर्ज है।

दूसरा अध्याय है - 'समकालीन हिंदी उपन्यासों में पृथ्वी की ऊर्जाओं के शोषण के खिलाफ सजगता'। इस में समकालीन हिंदी उपन्यासों के आधार पर जल, वायु और भूमि पर होनेवाले शोषण के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया गया है। पानी, पानी की माँग, भूमिगत जल, जल जन्य बीमारियाँ, नदी बृहद् बाँधों का निर्माण, बाँधों के निर्माण से उत्पन्न प्राकृतिक प्रकोप एवं नदी जोड़ योजना आदि पानी के शोषण के विभिन्न परतों को सामने रखने की कोशिश भी की गयी है। इसके अलावा वायु, वायु प्रदूषण, वायु प्रदूषण से उत्पन्न इन्सानी समस्याओं, ध्वनिप्रदूषण तथा भूमि प्रदूषण से उत्पन्न प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूक्षरण, भूस्खलन, भौमताप आदि का भी विश्लेषण किया गया है।

तीसरा अध्याय वनों पर केन्द्रित है। इसका शीर्षक 'वनों और जीवजालों के शोषण का प्रतिरोध' रखा गया है। वन, वनों का नाश, वृक्षों का नाश, जानवरों और पक्षियों का नाश तथा वनों के काटने से उत्पन्न आपदाओं-अनावृष्टि, बाढ़, सूखा एवं पहाड़ स्खलन आदि का विश्लेषण किया गया है। खनन एवं क्रेसर से होनेवाले पारिस्थितिक संकट को आंकने का भी प्रयत्न इस अध्याय में हुआ है। इसके अलावा वन बाशिंदों के जीवन यथार्थ, आदिवासियों का शोषण, भाषा पर संकट एवं उनकी संस्कृति आदि बुनियादी स्तरों में उनके संघर्ष को परखने की कोशिश भी हुई है।

चौथा अध्याय है - 'विस्थापन का मुद्दा', दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ विस्थापन नहीं होता। यह अध्याय विस्थापन की समस्याओं पर आधारित है। विस्थापन की परिभाषा, विस्थापन के प्रकार, विस्थापन का अनुपात, विस्थापन के लिए कारणीभूत विकासयोजनाएँ, पारिस्थितिक विस्थापन तथा विस्थापितों में जनजाति समूह आदि शीर्षकों में यह अध्याय विभक्त है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो. एम. षण्मुखन के निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है। उनकी प्रेरणा से ही यह कार्य संपन्न हुआ है। उन्होंने मुझे प्यार और हौसला दिया, वक्त-बे वक्त मेरी गलतियों को सुधारने की जोखिम उठायी। मेरे शोधकार्य को सफल बनाने के लिए उनकी अहम भूमिका रही है। मैं उनके प्रति बेहद शुक्र गुजार हूँ।

मेरे इस शोध कार्य के विषय विशेषज्ञ डॉ. के. वनजा जी के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। उनके वात्सल्य का मैं सदा पात्र रही हूँ और आगे भी उम्मीदमन्द हूँ।

हिन्दी के विभागाध्यक्ष डॉ. आर. शशिधरन जी के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ। उन्होंने हमेशा मेरे हौसले को बुलंद करने की कोशिश की है।



विभाग के अन्य अध्यापकों के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मेरी काफी मदद की है।

हिन्दी विभाग के पुस्तकालय के कर्मचारियों को भी मैं धन्यवाद अदा करती हूँ जिन्होंने इस शोधकार्य को सुगम बनाने के लिए काफी सहयोग दिया है।

अपने प्रिय मित्र, निम्मी, विजी और धन्या के प्रति भी मैं शुक्रिया अदा करती हूँ।

मेरी माता जी श्रीमति सुमा, पिताजी सुकु, भाई शंकर व पति अरुणकुमार, मुन्ना विष्णु वर्धन ने जितनी मदद की है, मैं लाफ़्ज़ों में बयान नहीं कर सकती।

मैं यह शोध-प्रबन्ध विद्वानों के सामने सविनय प्रस्तुत कर रही हूँ। अनजाने आ गई कमियों और गलतियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सविनय

इन्दु पी.एस.

हिन्दी विभाग  
कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय  
कोच्ची-22

तारीख :

## विषय सूची

### पहला अध्याय

#### खण्ड-क

1-47

#### पारिस्थितिक दर्शन का विश्लेषण

प्रकृति और मानव का संबन्ध - जीवन के स्थायित्व के लिए प्रकृति संतुलन की अनिवार्यता - मानव की उपभोग संस्कृति के परिणाम स्वरूप बनती विपत्तियों की विश्लेषण - पर्यावरण, परिवेशिकी व प्रदूषण संबन्धी अवधारणाओं का विकास - हनेरी डेविड, जोन मयोर, अलदो लियपोल्ड, लूयी मंफोड, कार्सन जैसे चिन्तकों की विचारधारा का विवेचन - रेचल कर्सन का निशब्द वसन्त में र्चचित परिस्थिति संबन्धी विचार - गहन परिस्थितिवाद, सामाजिक परिस्थितिवाद, परिस्थितिक साम्यवाद, पारिस्थितिक स्त्रीवाद का विश्लेषण।

#### खण्ड-ख

48-112

#### भारत में पारिस्थितिक आंदोलनों का विकास

स्वातंत्र्योत्तर भारत के सत्ताधारियों की तरफ से प्रकृति संतुलन के खिलाफ आयोजित विकास संबन्धी विचारधारा - बृहद् बांधों का निर्माण - जंगलों का विनाश और प्राकृतिक प्रकोप - 1970 में केरल में घटित सैलन्टवाली संरक्षण आंदोलन - उत्तर भारत का चिपको आंदोलन - भोपाल दुर्घटना से उत्पन्न प्रदूषण संबन्धी अवधारणा वर्तमान वैश्वीकरण निगमों की प्राकृतिक साधनों पर बहुराष्ट्रीय निगमों एवं पेयजल की समस्याएँ - नर्मदा बचाओं आंदोलन एवं केरल के प्लाच्चिमड़ा में कोका-कोला के खिलाफ आंदोलन - छत्तिसगढ़ में शिवनाथ नदी बचाओं आंदोलन आदि का विवेचन।

**दूसरा अध्याय** 113-182  
**समकालीन हिन्दी उपन्यासों में पृथ्वी की ऊर्जाओं के शोषण के खिलाफ सजगता**

जल - वायु - भूमि पर संकट - पानी-पानी की माँग - भूमिगत जल-जल जन्य बीमारियाँ - नदी बृहद् बाँधों का निर्माण बाँधों के निर्माण से उत्पन्न प्राकृतिक प्रकोप - नदी जोड़ योजना - वायु-वायु प्रदूषण - वायु प्रदूषण से उत्पन्न इन्सानी समस्याएँ - ध्वनि प्रदूषण - भूमि - भूक्षरण - भूकंप - भूखनन - भौमताप - आणव हत्यारों का प्रयोग - कीटनाशकों का प्रयोग।

**तीसरा अध्याय** 183-269  
**वनों और जीवजालों के शोषण का प्रतिरोध**

वन - वनों का नाश - वृक्ष - वृक्षों का नाश - जानवरों और पक्षियों का नाश - अनावृष्टि - बाढ़ - सूखा - पहाड़ - पहाड़ खलन - खनन - क्लेशर - आदिवासी - आदिवासी जीवन यथार्थ - आदिवासी शोषण - आदिवासी संस्कृति - भाषा पर संकट।

**चौथा अध्याय** 270-311  
**विस्थापन का मुद्दा**

विस्थापन के विविध रूप - विस्थापन के अनुपात - विकास से उत्पन्न विस्थापन - बाँधों से विस्थापन - समकालीन उपन्यासों में चित्रित विस्थापन की समस्याएँ - खनन - पारिस्थितिक संकट से बनते विस्थापन - सूखे से विस्थापन - बाढ़ से विस्थापन - भूखलन से विस्थापन - भूक्षरण से विस्थापन - आदिवासी विस्थापन - ताप बिजली घर से जनित विस्थापन।

**उपसंहार** 312-328

**संदर्भ ग्रन्थ सूची** 329-348

## पहला अध्याय

- क) पारिस्थितिक दर्शन का विश्लेषण
- ख) भारत में पारिस्थितिक आंदोलनों का विकास

खण्ड-क

पारिस्थितिक दर्शन का विश्लेषण

## खण्ड-क

### पारिस्थितिक दर्शन का विश्लेषण

ऐसा समझा जाता है कि पूरे ब्रह्माण्ड में पृथ्वी ही एक ऐसा नक्षत्र है जिसमें जीवन और वनस्पति दोनों विद्यमान हैं। धरती पर प्राण और वनस्पति का हमेशा एक संतुलन रहा है। सहज संतुलन प्रकृति का एक स्वाभाविक गुण है। प्रकृति में विद्यमान एवं दृश्यमान समस्त चराचरों में मनुष्य सर्वोत्कृष्ट जीव है। वह प्रकृति का एक अनुपम-अनमोल अंग है। प्रकृति और मनुष्य के बीच अटूट संबन्ध विद्यमान है। प्रकृति की अनोखी और अनंत सत्ता इंसान को सदा से आकर्षित करती रही है। उसका मनुष्य के संरक्षण और विकास में हमेशा एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मानव के अभ्युदय से लेकर विज्ञान की अधुनातन यात्रा तक प्रकृति मानवीय सोच की एक चिरंतन विषय वस्तु है। वह चुनौती और प्रेरणा, एक साथ दोनों है। यही वजह है कि हर युग में मानव की जिन्दगी में प्रकृति का अद्वितीय स्थान रहा है।

## प्रकृति शब्द की व्युत्पत्ति एवं स्वरूप

हिन्दी विश्वकोश के मुताबिक प्रकृति शब्द की व्युत्पत्ति है “प्र-कृ-क्तिन। उसमें प्रकृति के कई अर्थ दिए गए हैं 1) स्वभाव या मिजाज, 2) मूल अथवा प्रधान गुण जो सदा बना रहे, 3) योनि, 4) लिंग, 5) स्वामी अमात्य, 6) धर्माध्यक्षादि सप्त प्रकृति, 7) शिल्पी, 8) शक्ति, 9) योषत्, 10) परमात्मा आकाशादि भूतपंचक, 12) करण, 13) गुह्य, 14) जंतु, 15) छंदोभेद, 16) माता आदि।”<sup>1</sup> भारतीय वाङ्मय में प्रकृति के विविध अर्थ प्रचलित हैं, जैसे सृष्टि माया-शाश्वत सत्य, विचार-शून्य, स्वभाव आदि। किंतु लोक व्यवहार में धरती - आकाश, पेड़-पौधे, पशु-पक्षि, नदी-झरने आदि प्रकृति के अर्थ में लिये जाते हैं। अंग्रेज़ी में प्रकृति के लिए ‘नेचर’ शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन वहाँ भी प्रकृति का कोई एक अर्थ उभरकर नहीं आता।

प्रकृति की समुचित और सरल परिभाषा देना उतना ही जटिल एवं भ्रामक है, जितना मानव जीवन की। यानी न प्रकृति और न मानव जीवन को किसी एक परिभाषा में बाँधकर रखा जा सकता है। ‘ए डिक्शनरी ऑफ हिन्दूइज्म’ में “प्रकृति को प्रसव-धर्मिणी के अर्थ में ग्रहण किया गया है, क्योंकि इसमें निर्माण करने की अनंत क्षमता होती है।

- 
1. सं. नगेन्द्र बसु - हिंदी विश्वकोश, भाग-14, बी.आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन दिल्ली, 1986 - पृ. 463
  2. सं. मारगरेट एंड जेम्स स्टटली, ए डिक्शनरी ऑफ हिन्दूइज्म, एलीड पब्लिशर्स प्रा.लि. बंबई 1977 - पृ. 230

‘दि इंसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन’ में प्रकृति को परिभाषित करते हुए कहा गया है “साधारण तौर पर, हम प्रकृति उसे कहते हैं, जो मानवीय संस्कृति के नियंत्रण के परे जीव-जंतु युक्त भौतिक संसार है”<sup>1</sup> ‘दि इंसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी’ कहता है “प्रकृति, अपने विस्तृत रूप में, विश्व की समस्त सक्रिय वस्तु के पूर्ण अस्तित्व की उपस्थिति के रूप में समझी जा सकती है। यह वस्तुओं के क्रियात्मक रूप की संरचनात्मक विधि और पद्धति के रूप में भी व्याख्यायित की जा सकती है।”<sup>2</sup>

‘दि आक्सफोर्ड कम्पेनियन आफ फिलॉसफी’ में प्रकृति की मुख्यतः तीन परिभाषाएँ दी गई हैं। पहला यदि, हम विस्तृत रूप में व्याख्या करें, तो प्रकृति का आशय इस भौतिक संसार के समस्त दृश्यमान वस्तुओं से है। प्राकृतिक होने का अर्थ है सांसारिक होना यानी जो कुछ भी प्राकृतिक है, वह सांसारिक है और उनमें भेद पैदा करनेवाले लक्षण वैश्विक नियमों का अनुसरण करते हैं, जिन्हें कि तोड़ा नहीं जा सकता है। दूसरा प्रकृति संसार की सजीव वस्तुओं का स्वरूप है, जो कि निर्जीव वस्तुओं से अपने को अलग करती हैं।

- 
1. 230 स मर्सिया इलियड, दि इंसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन, भाग-10, दिमकमिलन पब्लिशिंग कंपनी, न्युयार्क, 1987 - पृ. 324
  2. सं. पाल एडबडर्स दि इंसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी भाग-5 दि माकमिलन पब्लिशिंग कंपनी - न्युयार्क 1987 - पृ. 324



तीसरा, मनुष्य और उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को छोड़कर इस जैविक संसार में जो कुछ भी है, वह प्रकृति है।”<sup>1</sup>

दि सोसल साइंस इंसाइक्लोपीडिया में लिखा है “पाश्चात्य सामाजिक और बौद्धिक मान्यता के अनुसार प्रकृति भौतिक संसार का एक हिस्सा है, जो मनुष्य-समाज के अन्तर्गत नहीं आता। प्रकृति के अपने नियम-कायदे है तथा यह स्वयं अपने ही भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रक्रियाओं के अनुसार बनती बिगड़ती है।”<sup>2</sup> बेन जान्सन का कहना है कि “जो कृत्रिम नहीं है वह प्रकृति है।”<sup>3</sup>

प्रसिद्ध छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद का कहना है कि “प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिंब है।”<sup>4</sup> भाववाद की भूल-भूलैया में डालनेवाला है। जबकि अज्ञेय कहते हैं “प्रकृति मानव का प्रतिपक्ष है अर्थात् मानवेतर ही प्रकृति है।”<sup>5</sup> अज्ञेय यह भी बताते हैं कि “प्रकृति मानवेतर का एक

- 
1. सं. टेड ऑनरिच, दि ऑक्सफोर्ड कंपनियन ऑफ फिलॉसफी ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्युयार्क, 1995 - पृ. 607
  2. सं. आदम कपूर एंड जेसिका कपूर, दि सोसल साइंस इंसाइक्लोपीडिया रूटलेज, लंदन 1996 - पृ. 566
  3. अद्भुत, ए.एन. कपूर, मॉडर्न इंगलिश पोएट्री, किताब महल, इलाहाबाद, 1962 - पृ. 4
  4. सं. निर्मला जैन, आधुनिक हिन्दी समीक्षा साहित्य अकादमी नयी दिल्ली, 1985 - पृ. 54
  5. अज्ञेय कवि दृष्टि, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1983 - पृ. 51

अंश है।”<sup>1</sup> यानी कि प्रकृति मानवेतर भी है और उसका एक अंश भी। नंदकिशोर नवल के अनुसार “प्रकृति एक निरपेक्ष सत्ता है, यानी अपने अस्तित्व के लिए वह किसी दूसरी वस्तु पर निर्भर नहीं है।”<sup>2</sup> इस प्रकार प्रकृति के अनेक संदर्भ और परिभाषाएँ मयस्सर है।

वस्तुतः दृश्यात्मक जगत की वे वस्तुएँ जो स्वतः उत्पन्न हुई हैं, जिनका निर्माण मनुष्य नहीं किया है और जिनमें नष्ट होकर भी आत्मनिर्माण और आत्मविस्तार करने की अनंत क्षमता है, वे सब प्रकृति के अंग हैं। संक्षेप में मनुष्य प्रकृति की सत्ता और उसके सौन्दर्य के निर्माण में योग दे सकता है, स्वयं उस सत्ता और सौन्दर्य का निर्माण नहीं कर सकता।

### प्रकृति और मानव का संबन्ध

प्रकृति स्वयं में एक स्वतंत्र; परिपूर्ण और वैविध्य भरी सत्ता है। इंसान इस प्रकृति का एक अंग है। वह अपनी बुद्धि, चेतन और सामूहिक परिश्रम के कारण प्रकृति से भिन्न अस्तित्व रखता है यद्यपि जीवन की कई ज़रूरतों की पूर्ति के लिए वह प्रकृति पर निर्भर रहने के लिए मज़बूर है। प्रकृति और मनुष्य के रिश्ते पर बात करते हुए यह उल्लेख कर देना प्रासंगिक है कि “प्राणी जगत के विकास की तर्कपूर्ण व्याख्या पहली बार

---

1. अज्ञेय कवि दृष्टि, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1983 - पृ. 51

2. नंद किशोर नवल, कविता की मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976 - पृ.

डारविन ने विस्तार से की। डारविन का 'सर्वाइवल आफ दि फिटस्ट' का सिद्धांत आधुनिक जगत में बहुत लोकप्रिय हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार प्रकृतिक जगत में मज़बूत अपने से कमज़ोर को मिटा देता है। लेकिन उत्तर डारविन विचारधारा मनुष्य और प्रकृति को एक दूसरे के सहयोगी के रूप में देखती है, प्रतिद्वन्द्वी के रूप में नहीं।<sup>1</sup> मानव और प्रकृति के संबन्ध के इतिहास से भी यही विदित होता है कि दोनों का हज़ारों वर्षों से व्यापक तादात्म्य रहा है। यह तादात्म्य ही दोनों के अस्तित्व के स्थायित्व का प्रमाण है।

निस्संदेह मनुष्य एक प्राकृतिक सत्ता है, लेकिन प्रकृति से अविच्छिन्न होने के बावजूद मनुष्य अपना एक विशिष्ट मानवीय स्वरूप भी विकसित करता है। वह प्रकृति का अंग होकर भी प्रकृति का अतिक्रमण करता है। वह अपने चारों तरफ मानवीय जगत का निर्माण करने के लिए प्रकृति का उपयोग करता है। प्रकृति को विकासशील मानवजीवन के लिए अनुकूल बनाता है। 'ए डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉट' के अनुसार "प्रकृति की अपनी स्वतंत्र सत्ता हो सकती है, लेकिन मनुष्य के लिए यह मानवीय श्रम से जुड़कर ही अपना अर्थ पाती है। श्रम अपने आप में न तो प्रकृति है और न ही संस्कृति, लेकिन इसमें प्रकृति और संस्कृति दोनों के तत्व

---

1. पूरनचंद जोशी, अवधारणाओं का संकट राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995 - पृ. 20

सन्निहित रहते हैं। मनुष्य के लिए प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता का कोई अर्थ नहीं है, यदि वह प्रकृति का उपयोग करना न जानता हो। प्राकृतिक वस्तुओं तथा उसके नियमों को उत्पादन द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में रूपांतरित करके मनुष्य प्रकृति को अर्थ देता है।<sup>1</sup> मार्क्सवादी दृष्टि वस्तुतः प्रकृति को मानवीय श्रम से जोड़कर देखती है तथा उसके सामाजिक विकास में प्रकृति की भूमिका को रेखांकित करती है। मार्क्स का मानना है “न तो वस्तुगत स्तर और न ही आत्मगत स्तर पर प्रकृति मनुष्य को सीधे उस रूप में मिली है जो सत्ता के उपयुक्त हो।”<sup>2</sup>

वस्तुतः मार्क्स ने श्रम को सर्वोपरि मूल्य माना था तथा यह बताया था कि मानव श्रम ने मनुष्य को वस्तु प्रकृति से ऊपर उठाया है तथा बाहर और भीतर की प्रकृति पर काबु पाने में मनुष्य को समर्थ बनाया है। इसप्रकार मार्क्स ने प्रकृति के मजबूत रिश्ते में श्रम के महत्वपूर्ण योग को पहचाना है। लुकाच ने भी उल्लेख किया है “प्रकृति एक सामाजिक वर्ग है” उनका तात्पर्य यह है कि सामाजिक विकास की किसी स्थिति में प्रकृति अपने रूप; अपनी उपलब्धी और अपने उद्देश्य की सामाजिक

- 
1. सं. टॉम बॉटमर, ए डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉट, वेसिल ब्लेकेल पब्लिशर लि. इंग्लैंड, 1983 - पृ. 35
  2. सं. नामवरसिंह कार्ल-मार्क्स : कला और साहित्य चिंतन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991 - पृ. 135

अवस्था को दर्शाती है। क्योंकि प्रकृति और मनुष्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।”<sup>1</sup>

मानव का तमाम परिवेश प्राकृतिक पर्यावरण से प्रभावित है और उसका निरंतर विकास होता रहता है। इस धरती के विभिन्न जीव-जन्तु, तथा वनस्पतियाँ, नदी, झरने, पहाड़ आदि मिलकर प्राकृतिक माहौल का निर्माण करता है। मनुष्य की तमाम ज़रूरतें प्रकृति से पूरी होती थी। प्रकृति सदा जी खोलकर अपनी नियामते प्रदान करती आ रही है।

पुराने ज़माने में मानव वनों में अपना जीवन-यापन किया करते थे। हमारी संस्कृति परंपरा-विरासत और इतिहास के बहुत से भाग प्राकृतिक पर्यावरण से निर्मित हुए हैं। केवल यही नहीं विज्ञान की संभावनाएँ भी प्राकृतिक पर्यावरण में निहित रहती हैं। इसप्रकार मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए प्राकृतिक पर्यावरण बेहद ज़रूरी है। जीवन के स्थायित्व के लिए प्रकृति संतुलन सबसे ज़रूरी है। प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति आज के ज़माने में मानव का दृष्टिकोण ज़राज़र बदल गया है। फिलहाल प्रकृति के प्रति मानव द्वारा नकारात्मक नज़रिया अख्तियार किया जा रहा है। फलस्वरूप प्राकृतिक असंतुलन बढ़ता जा रहा है।

---

1. सं. टॉम वॉटमर, ए डिक्शनरी ऑफ़ मार्क्सिस्ट थॉट, बेसिल ब्लेकबेल पब्लिशर लि. इंग्लैंड, 1983 - पृ. 351

मनुष्य निर्मित औद्योगिक विकास ने तमाम तरह के प्रदूषणों को जन्म दिया है। औद्योगिक संस्थाओं के दखलंदाज़ी के कारण हमारी आबोहवा प्रदूषित होती जा रही है। फलतः पर्यावरण में असंतुलन बढ़ गया है। हाल ही में वायुप्रदूषण के कारण वायुमंडल में विद्यमान ओज़ोन की परतों में छिद्र आ गया है और सूर्य की पराबैंगनी किरणें धरती तक पहुँच रही हैं। जो संपूर्ण जीवजन्तुओं और धर्ती के लिए खतरे का निशाना है। वायुमंडल में प्रदूषण तथा प्रकृति-असंतुलन के कारण मनुष्य को प्राकृतिक प्रकोपों, जैसे बाढ़, सूखा आदि का सामना करना पड़ता है।

इस बात से सभी लोग वाकिफ है कि पिछले कुछ सालों से ग्लोबल वार्मिंग के कारण पृथ्वी की सतह पर तापमान निरंतर बढ़ रहा है। पिछले कुछ वर्ष पिछली सदी से लेकर अब तक के सबसे गर्म वर्ष के रूप में दर्ज हो चुके हैं। लेकिन यह विडंबना ही है कि ग्लोबल वार्मिंग के खतरों को जानते हुए कि दुनिया के सभी राष्ट्र इस समस्या से जूझने के प्रति लापरवाही ही बरत रहे हैं। सबसे ज्यादा गैरजिम्मेदार वे राष्ट्र हैं जिनकी ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाने में सबसे बड़ी भूमिका है।

वैज्ञानिकों द्वारा किए गए विभिन्न शोध कार्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन ही धरती पर बढ़ते तापमान के लिए ज़िम्मेदार है।”<sup>1</sup> एन्थ्रोपोजेनिक हरित गृह सिद्धांत के अनुसार अगली सदी के मध्य तक धरती के औसत तापमान में दो से पाँच डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि आंकी गई है। तापमान में इस बढ़ोत्तरी का कारण कार्बन डाइऑक्साइड का दुगुना होना तथा अन्य ग्रीन हाउस गैसों जैसे मीथेन व, क्लोरोफ्लोरो कार्बन, नाइट्रस ऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड आदि का वातावरण में शामिल होना है। इससे आर्टिक जैसे बर्फ से घिरी भूखंडों की पूरी की पूरी बर्फ पिघल रही है।

ग्लोबल वार्मिंग की वजह जल स्तर बढ़ने से ज़मीन के डूबते जाने का खतरा है। हाल ही में ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने धरती का तापमान बढ़ने पर भावी खतरों की ओर संकेत करते हुए कहा है कि “समुद्र का मीटर स्तर बढ़ने से मिस्र का एक फिसदी नीदरलैंड का छः फिसदी, बंगलादेश का सात फिसदी व मार्शल आइलैंड का अस्सी फिसदी हिस्सा पानी में समा जाएगा। दो फिसदी तापमान बढ़ने से फसलों की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।”<sup>2</sup> निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि यदि

- 
1. डॉ. रामनिवास यादव - पर्यावरण संजीवनी जून 2008 (37) (वैश्विक तापन और जलवायु परिवर्तन)
  2. वैश्विक तापन और जलवायु परिवर्तन - डॉ. रामनिवास यादव पर्यावरण संजीवनी जून 2008 - पृ. 41

इसी रफ्तार से ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन जारी रहा तो यह धरती मानव के रहने के लायक नहीं रहेगी।

फिल्हाल मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण से संवेदनशील रिश्ते को खतम करती जा रही है। हम तो पेड़ों से, जंगल से क्या लाभ ले सकते हैं, इसी दृष्टि से प्रकृति को देखने लगे हैं। उनके साथ जिया कैसे जाए यह बात हम एकदम भूल गए हैं। आज का मनुष्य इस वहम में पड़ गया है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी से वह सब कुछ पा सकता है। लेकिन यह उसकी निरी बेवकूफी है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। इससे मनुष्य सबकुछ पा नहीं सकता। किंतु प्राकृतिक संसाधनों की कोई सीमा नहीं होती। उसके अक्षय भंडार के प्रति विवेकशील रवैया मनुष्य की भौतिक और आध्यात्मिक साधनों की प्राप्ति में समवाय ला सकता है। प्राकृतिक पर्यावरण की ओर ध्यान न देना उसे न बचाना प्राणी जगत को विनाशरूपी अंधे कुँ की ओर धकेलना है।

प्राकृतिक पर्यावरण के साथ विवेकपूर्ण रिश्ता कायम करना प्रौद्योगिकी के विकास में बाधक नहीं बल्कि सहायक है। बहरहाल प्राकृतिक पर्यावरण को प्रौद्योगिकी से खतरा तब पैदा होता है जब उसका इस्तेमाल यांत्रिक तरीके से लिया जाता है। शुभू पटवा का कथन है - “पर्यावरण की दृष्टि स्वसंतुलक, स्व-समायोजक और स्व-शोधक होनी चाहिए। प्रकृति



में तो यही खूबी सहज विद्यमान है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में यह दृष्टि सहज विद्यमान नहीं हो सकती। तब यह तय करना ज़रूरी है कि वैज्ञानिक अनुसंधानों की दिशा ऐसी होनी चाहिए जो मानव को हिंसा की बनिस्बत अहिंसा की ओर ले जाए और प्रकृति के साथ नाहक संघर्ष की जगह उसके साथ एक सामंजस्य और सहयोग की ओर आकर्षित करे। हमें यह मानना चाहिए कि जागतिक और जैविक तौर पर हम प्राकृतिक व्यवस्था के ही अंग हैं और इसके साथ हम जीवंत और अहिंसक रूप से सहयोग करें।”<sup>1</sup> प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और समृद्धि ही मनुष्य के समूचे परिवेश को स्वस्थ रख सकती है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में अगर हम देखें तो भारतीय परंपरा में प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण की भावना तभी से मनुष्य में पनपी जब से मनुष्य ने प्रकृति की महत्ता को पहचाना। भारतीय संस्कृति प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण की भावना से ओतप्रोत है। लेकिन पश्चिमी चिंतन के प्रभाव तथा आधुनिकीकरण के कारण कुछ साल पहले प्रकृति के प्रति हमारा नज़रिया कुछ सख्त हो गया था। उसके प्रति लापरवाही भी बरती गयी। किंतु इधर कुछ अरसे से भारतीयों ने अपने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर गंभीरता से विचार किए हैं और पूरे देश में योजनाएँ भी लागू की गई हैं।

---

1. शुभू पटवा - पर्यावरण की संस्कृति - पृ. 29

इन सब के मद्दे नज़र हम संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रकृति किसी भी जाति के लिए उसके देश का एक हिस्सा होने के साथ-साथ उसकी संस्कृति का प्रतिरूप भी होती है। यह प्रकृति ही है, जो मानवीय जीवन को संभव बनाती है। इस स्थिति को हमें हमेशा के लिए कायम रखना चाहिए।

### **जीवन के स्थायित्व के लिए प्रकृति संतुलन की अनिवार्यता**

मनुष्य की सभ्यता का इतिहास मूलतः प्रकृति के साथ उसकी गृहस्थी का इतिहास है। मिट्टी वह माँ है, जिस पर सारे जीव जन्म लेते और मरते हैं। मिट्टी पर ही आजीवन जीवों का विचरण होता है। प्राकृतिक विवर्तन के ज़रिए करोड़ों करोड़ों वर्षों की लंबी यात्रा में अमीबा से मनुष्य की सृष्टि हुई। जल, वायु, भूमि, तापमान, धातु व वनस्पति जगत के एक विशिष्ट संस्थान में जीवित रहने के प्रयोजन से ही इंसानी जिस्म की सृष्टि हुई है। उसका स्नायुयंत्र इसी के अंग है। ज़ाहिर है कि वस्तुनिष्ठ चिन्तन से अधिसंख्यक मनुष्यों के दीर्घस्थायी कल्याण के उद्देश्य से ही पर्यावरण का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। ज़्यादा उत्पादन यानी अधिक सुख, ज़्यादा उपभोक्ता सामग्रियाँ यानी बेहतर सभ्यता ऐसी परिकथा के पीछे भागना जान लेवा साबित होगा। डॉ. बी.सी. जांट के अनुसार “भारत में विगत तीन दशकों में ऐसे प्रभाव दृष्टिगत ही रहे हैं, जब चेरापूँजी में सूखा पड़ता है तथा थार में बाढ़ आती है। ...चक्रवातों की मार भी बढ़ रही है तथा सूखा एवं बाढ़ की आवृत्ति में निरंतर बढ़ते

प्रबंधन के बाद भी वृद्धि हुई है। क्योंकि ये सभी प्राकृतिक व्यवस्था के अभिन्न घटक हैं जिन्हें एक बार त्वरित करने पर पुनः स्वस्थापन में समय लगता है।”<sup>1</sup>

अरसे से इस पृथ्वी पर मनुष्य विद्यमान है। उससे ज़्यादा अरसे से प्रकृति बनी हुई है। फुकुवोका के लफ़ज़ों में “प्रकृति में विद्यमान ईश्वर की इच्छा प्रकृति की आत्मा या रूह है।”<sup>2</sup> बहरहाल दुनिया भर में लोग पर्यावरण के संदर्भ में बहस कर रहे हैं। इसलिए कि संकट की घड़ी आ चुकी है। जीवन भर सहज स्वाभाविक तौर पर जीते साँसों के ज़रिए प्राणवायु का इस्तेमाल करते हुए मनुष्य उसकी तरफ बिल्कुल तवज्जु नहीं देता। परन्तु साँसों में तकलीफ होते ही ऑक्सीजन सिलिंडर की फरमाइश करने लगता है। जब आपदाएँ कहर बनकर नहीं टूटी तब तक जल, हवा और ज़मीन को लेकर किसी ने कभी नहीं सोचा। सिर्फ इनका इस्तेमाल ही किया। अब इस्तेमाल होते-होते; क्रमशः प्रदूषण बढ़ते-बढ़ते जब प्राकृतिक संसाधन इस्तेमाल के लायक भी न रहे और अधिसंख्यक मनुष्य का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। तब मज़बूरी में ज़्यादा से ज़्यादा लोग पर्यावरण को लेकर छिड़ी बहस में शामिल होने लगे हैं।

---

1. पर्यावरण संजीवनी जून 2008 - पृ. 44

2. "The road back to nature regaining the paradise lost" Environment Philosophy by Masonobu Fukuoka. Published by Japan Publication Trading Co. Ltd. Tokyo - P. 13

पिछले दस बारह हज़ार वर्षों के दरम्यान मनुष्य ने अपेक्षाकृत बेहतर जीवन स्तर के लिए प्रकृति के जल, ज़मीन, तापमान के समीकरण में थोड़ा बहुत परिवर्तन व नियंत्रण ज़रूर किया। मगर ऐसा करते हुए मनुष्य ने हमेशा प्रकृति के मूल नियमों को मानते हुए उन्हीं के मुताबिक अपने परिवर्तनों का तालमेल किया। मसलन कृषि की ही बात करें। किसी देश या विशेष स्थान में मिट्टी की किस्म, पानी की आपूर्ति और ऋतु चक्र के मुताबिक फसले बोयी और काटी जाती थी। फसलें उगाई जाती थी। सिंचाई के लिए जिस तरह नदियों से नहरे निकाली जाती थीं, उसी तरह देश भर में लाखों छोटे-बड़े पोखर और जलाशय थे जो वर्षा के जलसंचयन से सिंचाई में सहायक बने हुए थे।

फुकुवोका के शब्दों में “प्रकृति की रूप कभी भी नाशोन्मुख नहीं है। अगर प्रकृति को किसी किस्म के हास या क्षति का सामना करना पड़ रहा है तो उसके लिए केवल मनुष्य ही उत्तरदायी है।”<sup>1</sup> पिछले पचास सालों में पूँजीवाद कार्पोरेट व्यवस्था में तब्दील होते हुए पर्यावरण की गर्दन मरोड़कर उसका दोहन करने लगा है। पृथ्वी उच्चतम दरों पर मुनाफा सुनिश्चित करने का स्रोत मात्र बनकर रह गयी है। इसीलिए आज का पर्यावरण संकट की तुलना अतीत से करना नामुमकिन है। अतीत में

---

1. "The Road Back to Nature Regaining the Paradise Lost" By Masanobu Fukuoka - P. 212

अदद आदमी प्राकृतिक संतुलन से छेड़-छाड़ किए बगैर उससे काम निकालते थे। उन्हें मालूम था कि प्रकृति को होनेवाली स्थायी और बड़ा नुकसान अन्ततः उन्हीं के लिए जानलेवा सिद्ध होगी। किन्तु मुनाफाखोर राष्ट्र एवं आर्थिक सामाजिक सत्ताओं की प्रवृत्ति सिर्फ लूटने की है। प्राकृतिक पर्यावरण के संतुलन और उनके स्थायित्व को लेकर उन्हें कोई सिरदर्द नहीं है।

प्रत्येक प्राचीन सभ्यता में आम लोग प्राकृतिक शक्तियों का सम्मान करते आए हैं। उनसे प्यार करते रहे हैं। आदिम काल में मनुष्य ने सिर्फ अज्ञान और भयवश प्राकृतिक शक्तियों की पूजा की थी ऐसा बिलकुल नहीं है। पर्यावरण संरक्षण के लिए तमाम किस्म के कानून उन्होंने बनाये थे जिन्हें वे मानते थे। जाने-अनजाने किस मौसम में कौन सी मछलियाँ या सब्जियाँ खायी जाएँ, जंगल से पेड़ काटने ज़रूरी हो तो कैसे छाँटे जाएँ ऐसे अनेक कानून उन्होंने अनुभवों से ही बनाए। अथर्ववेद या - कौटिल्य के अर्थशास्त्र जैसी कृतियों को छोड़ भी दें तो बंगाल में 'खनार बचन', हिन्दी में 'घाघ' अथवा राजस्थान में 'भडली पुराण' तो असल में मिट्टी, जल और ऊर्जा के अन्तर संबन्धों पर आधारित सटीक कृषि कार्य संचालन के अनुभवों के संकलन ही है।

यदि मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेता और उसे अपने वश में कर लेता, तो उसे वर्षा की राह नहीं देखनी पड़ती, वह सूरज या चाँद तारे निकालने का इंतज़ार नहीं करता, वह जब चाहे जितनी मात्रा में चाहे पहाड़ फोड़कर पानी निकाल लेता। लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकता। आज भी प्राकृतिक घटनाएँ अपने आप ही घटती हैं। मनुष्य वर्षा को रोक नहीं सकता सूर्य पर चादर नहीं डाल सकता। बाढ़ या भूकंप को रोक नहीं सकता, मौसम को अपनी सुविधा के हिसाब से मोड़ नहीं सकता है। सभ्यता के विकास पथ पर चलते हुए वह चाँद पर जा सकता है, वहाँ अपना संसार बसा सकता है उसे अपने अधिकार क्षेत्र में ले सकता है, पर उसको काँट-छाँटकर उसे छोटा-बड़ा नहीं कर सकता। वह प्राकृतिक संकटों से अपनी रक्षा करने के लिए तरह-तरह के आविष्कार कर सकता है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है “सभ्यता प्राप्त करके मनुष्य ने बहुत सी प्राकृतिक शक्तियों पर अधिकार किया। वह कीड़े-मकोड़ों की तरह प्रकृति पर पूर्णतः आश्रित नहीं। अपने-अपने प्रयत्नों से प्रकृति के रहस्य का पता लगाया है। वह नये सिरे से प्राकृतिक शक्तियों के नये-नये संयोजन से नयी-नयी चीज़ों को पैदा कर सकता है।”<sup>1</sup>

---

1. संपादक जयनारायण द्विवेदी एवं मुकुंद द्विवेदी, हज़ारी प्रसाद ग्रंथावली, भाग-7, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981 - पृ. 80

प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की बात के संदर्भ में याद रखना होगा कि मनुष्य संपूर्ण प्रकृति पर विजय हासिल नहीं कर सकता। प्रकृति की शक्ति अनंत है, मनुष्य अपने जीने की राह में उसका प्रयोग कर सकता है उसे पूर्णतः अपने वश में नहीं कर सकता। प्राकृतिक शक्तियों का शिष्टतापूर्वक एक हद तक इस्तेमाल करने के साथ प्राकृतिक संतुलन बनाये रखकर ही वह अपने विकास को कल्याणकारी दिशा में मोड़ सकता है।

प्रकृति और पर्यावरण के विनाश से कुछ फर्क नहीं पड़ता ऐसा सोचना अवैज्ञानिक है। आज जो सोचते हैं कि वे समस्त प्रकृति पर कब्ज़ा करके अपनी सुविधाओं और संपदा में वृद्धि कर लेंगे, वे अत्यंत अदूरदर्शी और अल्पकालिक महत्वकांक्षी कहे जाएँगे। जितनी द्रुतगति से इस पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण हो रहा है। अथवा उनका विनाश हो रहा है। उससे आगामी दो-तीन दशकों के अन्दर जल, ज़मीन और हवा की हालत सचमुच आशंका जनक हो जाएगी, धन, सिर्फ धन, बहुत कुछ कर सकता है लेकिन बहुत कुछ वह भी नहीं कर पाता। अन्तरीक्ष से आनेवाली बैंगनी रश्मि परमाणु विकिरण को टाला नहीं जा सकता। प्राणी शून्य, पेड़-पौधों से रिक्त पक्षियों से रहित एक जलहीन पृथ्वी पर अपने प्रासादों में भी निवास असंभव है। सामान बटोरकर सुख के क्रम में जीते लोग भूल जाते हैं कि मनुष्य सिर्फ अपनी देह से नहीं बचता, प्रकृति ने उसे दिये

है स्नायुयंत्र और मस्तिष्क और मन। उस मन की तृष्णा सिर्फ पूँजी और वस्तु उपकरणों से शांत नहीं होती। वह चाहता है प्यार। सन्तानों के लिए चाहता है सुख और शान्ति। सब कुछ पर अधिकार करने की चिन्ता से ये चीज़ें हाज़िल नहीं की जा सकती तो फिर क्यों वे प्रकृति के विरुद्ध खड़े होते हैं? उत्पादन के नशे में इस खूबसूरत ग्रह का विनाश करने में क्यों तुले हुए हैं? यह क्या भूला जा सकता है कि सुन्दर अतीत से लेकर आज तक जितने देशों में जितने तरह के लोग है, वे इस विचित्र विशाल जन-समुद्र के एक मात्र वासस्थल, इसी पृथ्वी पर ही रहेंगे। मनुष्य का अतीत व भविष्य इसी पृथ्वी में सामाहित है। इसके बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं है इसलिए पृथ्वी के पर्यावरण की सुरक्षा के दायित्व से मनुष्य भाग नहीं सकता।

संक्षेप में कहें तो इस वक्त मुनाफाखोरी के लिए पर्यावरण के तबाही की अदूरदर्शी परिकल्पनाएँ और कार्य एवं अतीत व भविष्य के सामंजस्य में ज़्यादातर मनुष्य के दीर्घकालीन हितों के लिए प्रकृति के यथासाध्य संरक्षण की बेहद ज़रूरत है। पृथ्वी पर जल, ज़मीन और हवा का इस पैमाने पर तबाही हो चुकी है कि हमारे शिक्षित, विवेकवान, बुद्धिमान नारी-पुरुष अगर यथेष्ट सचेत न हुए तो हमारे इस सुन्दर और पसंदीदा गृह को हमारी आनेवाली पीढ़ी के लिए सुरक्षित रख पाने की स्थितियाँ नहीं बचेंगी।



## मानव की उपभोग संस्कृति के परिणामस्वरूप बनती विपत्तियों का विश्लेषण

मौजूदा समय में राष्ट्रीय-अन्ताराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक चर्चित विषयों में पर्यावरण शामिल है। इसे लेकर तमाम तरह की बहसें चल रही हैं। आज विकास के नाम पर पर्यावरण को तहस-नहस किया जा रहा है। मशहूर मलयालम कवयित्री सुगतकुमारी के शब्दों में “विकास माने मानवराशी के समष्टिगत भलाई के लिए अवश्य साधनों का निर्माण एवं उपभोग।”<sup>1</sup> लेकिन आज का माहौल कुछ ऐसा है कि कुछ लोग सोचते हैं कि चाहे उपाय जो हों, ज़्यादा से ज़्यादा उत्पादन और अधिकतम वस्तुओं का उपभोग ही राष्ट्रीय विकास का पर्याय है। यानी अधिक से अधिक बिजली, ज़्यादा से ज़्यादा जल, अधिकतम बिक्री योग्य कृषि उपज, सबसे ज़्यादा विलास सामग्री।

ऐसी विचार धारा के हिमायती इस तरह का उत्पादन बढ़ाने के लिए दूसरे मुल्कों के बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ मिलकर कारोबार बढ़ाने के मकसद से अपने ही देश के प्राकृतिक संसाधनों का मनमाना इस्तेमाल करने के हक में भी है। इंसान अपनी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए हमेशा प्राकृतिक संसाधनों जैसे वनस्पतियों, नदियों, रिहाइशी ज़मीन में

---

1. कावु तींडल्ले - सुगतकुमारी - पृ. 25

कुछ न कुछ परिवर्तन करता रहा है। बहरहाल व्यापक पैमाने पर प्रकृति की अपनी नियमावली का संपूर्ण उल्लंघन करते हुए मौलिक परिवर्तन के साथ प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से एक ओर जहाँ प्रकृति का संतुलन नष्ट होगा, वही दूसरी ओर मनुष्य व दूसरे प्राणियों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा। क्योंकि ये सब प्रकृति का अंग ही तो है। ज़ाहिर सी बात है कि वस्तुनिष्ठ सोच से ज़्यादातर मनुष्यों के दीर्घस्थायी कल्याण के उद्देश्य से ही पर्यावरण का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। ज़्यादा उत्पादन यानी ज़्यादा सुख ज़्यादा उपभोक्ता सामग्रियाँ यानी बेहतर सभ्यता ऐसी संकल्पना के पीछे अंधाधुंध भागना जान को जोखिम में डालना साबित हो सकता है।

पर्यावरण विमर्श या प्रदूषण, कोई नई चीज़ नहीं है जो आज ही शुरू हुई हो। प्रदूषण पचास साल पहले भी थी। आज भी जारी है। आज से करीब पचास साल पहले बंगाल केमिकल्स के संस्थापक व मशहूर वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय ने बार बार अपने लेखों में चेतावनी दी कि अगर सरकार ध्यान देकर एहतियात नहीं बरतती तो तरह-तरह के औद्योगिक प्रदूषण से इस देश में प्रकृति विपर्यस्त हो जाएगी। पचास के दशक में मशहूर अंग्रेज़ इतिहासकार टॉयनजी ने आगाह किया था कि “नदियों की स्वच्छता की परवाह किए बगैर नदियों को दूषित करते रहने से और जहाँ-तहाँ बाँध बनाए जाने से सन् दो हज़ार तक भारत वर्ष की

नदियाँ मर जाएँगी। उनके कंकाल ही बचे रहेंगे। नावें नहीं चलेंगी छलांग मारकर लोग नदियाँ पार करेंगे। आज इस चेतावनी की सत्यता हम चाक्षुष देख रहे हैं।”

मौजूदा दौर उपभोग, विलासिता ऐश और आराम का दौर है। सामान इकट्ठा करते जाना ही इस दौर की समृद्धि का पैमाना है। इसी प्रवृत्ति को रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ‘सभ्यतानाम्नी पाताल’ कहा था। उनके अनुसार मनुष्य का लोभ सिर्फ प्रकृति की बर्बादी से शान्त नहीं होगा, वह मनुष्य का भी विनाश करेगा। महात्मा गाँधी का यह वक्तव्य सभी मुल्कों के पर्यावरणविद यंत्रवत् उद्धृत करते हैं कि प्राकृतिक संसाधन मनुष्य की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त है, उसके लोभ के लिए नहीं।

आधुनिक समय के तथाकथित औद्योगिक क्रांति से पूँजीवादी वर्ग ने प्रकृति को लूटते हुए अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ाना शुरू किया। देश में जल और ज़मीन को उन्हीं के द्वारा परिचालित विभिन्न सरकारें एकदम लापरवाही से पर्यावरण के विनाश में जुटी हुई है।

मिट्टी को मूलतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है - जंगल, कृषिभूमि और पशुपालन क्षेत्र। उनके अलावा है शहरी क्षेत्र और खानें, जिनका मिट्टी पर सबसे बाद में आगमन हुआ। किंतु जैसे कुछ-कुछ मछलियों के बच्चे जन्म से माँ को खाना शुरू करते हैं, उसी तरह

ज़मीन को सबसे ज़्यादा नुकसान पहुँचा रहे हैं शहरी क्षेत्र और खनिज अंचल।

## जंगल

पृथ्वी के पर्यावरण के लिए जंगल, ज़मीन और जीवन जगत के लिए जंगल का महत्व कम नहीं है। इन जंगलों के दोहन में एक ओर पृथ्वी के सभी देशों की सरकारें लगी हैं तो दूसरी ओर सत्ता संपन्न लोग भी वन विनाश की नीतियाँ तैयार करते हैं। हमारे मुल्क के संदर्भ में कहना होगा कि ब्रिटीश नौसैनिकों की अपराजेयता भारतवर्ष के सागौन जंगलों की कीमत पर साबित हुई। भारत के कटते हुए जंगलों के संदर्भ में मलयालम के मशहूर साहित्यकार बषीर का एक लत्तीफा है - “इसप्रकार केरल मरुभूमि (थार) में तब्दील हो जाएगी। एक तरह से अच्छा ही है। हम सब मिलकर यहाँ से तेल निकाल लेंगे।”<sup>1</sup>

गुलाम भारत वर्ष की विशाल आरण्यभूमि इसी तरह हिंस्र, अदूरदर्शी, स्वार्थान्वेषी आक्रमणों में खत्म हुई। यह सिर्फ भारतवर्ष ही नहीं तीसरी दुनिया के प्रत्येक देश का सत्य है। स्पेन ने दक्षिण अमेरिका के जिन देशों को उपनिवेश बनाया। वहाँ गन्ने के रस से चीनी तैयार करने के क्रम में, इंधन के तौर पर उन इलाकों के जंगल काटकर फूँक दिये गये। साम्राज्यवादियों

---

1. कावु तीडल्ले - सुगतकुमारी - पृ. 28

के उपनिवेशों के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक शोषण के इतिहास का बहुत कुछ आज हम जानते हैं लेकिन उन देशों, में प्राकृतिक पर्यावरण के विनाश का औपनिवेशिक इतिहास आज भी कायदे से लिखा नहीं गया है।

सबसे ज़्यादा आशंका तो इस बात की है कि यह भयंकर विनाश बन्द होने के बजाय आज और भी ज़्यादा तेज़ी से चल रहा है। उपग्रहों से मिली तस्वीरों के मुताबिक “भारतवर्ष में हरसाल लगभग तेरह लाख हेक्टेअर ज़मीन पर बसे वन उजड़ रहे हैं। कहीं सड़के बन रही है; कहीं नये पर्यटन स्थल बन रहे हैं। अथवा कहीं नगर-निर्माण के लिए, नदियों को बाँधने के लिए हज़ारों-हज़ार हेक्टेअर प्राचीन वन भूमि को तहस-नहस किया जा रहा है।”<sup>1</sup> तात्पर्य यही है कि पर्यावरण विनाश की अहम वजह कुछेक बड़े व सत्ता संपन्न लोगों का लोभ ही है।

## वायु

मनुष्य व प्रकृति के सह-अवस्थान से जो दूषण व टूटन की स्थिति बनती है, प्रकृति स्वयं उसे संतुलित कर लेती है। किन्तु सत्ता-संपन्नों के सुनियोजित व संगठित लोभ के कारण पर्यावरण की जो क्षति पहुँचती है उसकी मरम्मत की क्षमता मनुष्य में नहीं है। मसलन् शीत-ताप नियंत्रक यंत्र, रासायनिक खाद, विशेष रंगों के स्प्रे आदि से पैदा होनेवाली

---

1. जया मित्रा - विकास का कृष्णपक्ष - वागर्थ सितंबर-2001 - पृ. 29

क्लोरो-फ्लूरो कार्बण (सी.एफ.सी) गैस, ऐसा वायु प्रदूषक है जिसके परिणामस्वरूप वायुस्तर के एकदम ऊपर ओज़ोन सुरक्षा कवच में छिद्र तैयार हो रहा है। यही ओज़ोन सुरक्षा कवच पृथ्वी को सूर्य की रोशनी समाहित अति बैंगनी रश्मियों से बचाता है। इसके त्वचा को छू लेने से कैंसर होने की आशंका रहती है। सी.एफ.सी गैस, कार्बनडाई आक्साइड, मिथेल एवं ऐसी ही कई गैसों से एवं अधिक इंधन के उपयोग से पृथ्वी का तापमान बढ़ने लगा है। पृथ्वी के वायुमण्डल में ये गर्म गैसों एक उत्तम ढक्कन की तरह तैरती रहती है। इससे पृथ्वी की सतह से विकीरित ताप बाह्य अन्तरीक्ष में निकल नहीं पाता। और पृथ्वी की सतह शीतल नहीं हो पाती। इससे त्वचा में कैंसर के अलावा आँखों में मोतियाबिन्द के साथ-साथ कई बीमारियाँ होने की संभावना है। इसके साथ-साथ पर्यावरण के लिए भी यह जानलेवा साबित हो रहा है। मिसाल के तौर पर तेज़ाब की वर्षा हो सकती है; अनेक हरे-भरे अंचल वनस्पतियाँ इस भीषण गर्मी से इस धर्ती से गायब हो जायेंगी।

“विश्व स्वास्थ्य संस्था के अनुसार 625 अरब लोग शहरों में जिन्दगी बसर कर रहे हैं। उनकी उच्छ्वास वायु में औसतन सल्फर डायोक्साइड की मात्रा अप्रत्याशित रूप से ऊँचा है। उनके अनुसार आसिड वर्षा होने की संभावना सुदूर नहीं है। आसिड वर्षा किसी मुल्क की सरहद नहीं जानती। यह विभीषिका प्रत्येक मुल्क के लिए एक समान है।

इन सब के फलस्वरूप दमे का रोग ही नहीं बल्कि पूरे विश्व पर कहर डालनेवाली ग्रीन हाउस इफेक्ट होने की भी संभावना है। इससे ध्रुवों में जमीं बर्फ अल्पमात्रा में भी पिघलने लगी तो महासागरों का जलस्तर इतना बढ़ जायगा कि पृथ्वी के अपेक्षाकृत निचले इलाके और अनेक टापु डूब जाएँगे। यह हकीकत शुरू भी हो चुकी है।

ग्रीन हाउस गैसों में प्रमुख है कार्बन डाई आक्साइड। वायुमण्डल में इस गैस की उपस्थिति हमेशा रही है किन्तु पिछले पचास सालों में इसकी मात्रा इतनी अधिक बढ़ गयी है कि प्राकृतिक श्रृंखलाएँ अस्त-व्यस्त होने लगी है। इस दौरान पूँजीवादी व्यवस्था कारोबार बढ़ाने व बाज़ार तैयार कर मुनाफा कमाने के लिए प्रतिमान पेश कर रही है। जिस देश की सरकारें मोटर, फ्रिज आदि अतिरिक्त विलासिता को जीवन की सार्थकता बतौर सबसे ज़्यादा प्रचारित करती है, जिस देश का उद्योग जगत इस अवधारणा से सबसे ज़्यादा मुनाफा कमाता है वह है अमेरिका।

1987 में मॉंट्रियल में ओज़ोन स्तर को नुकसान पहुँचानेवाले द्रव्यों के बारे में हुई समझौते से अमेरिका अलग हो गया। बाद में भी ओज़ोन छिद्र से संबन्धित चर्चाओं को टालने की कोशिश करता रहा। जबकि ग्रीन हाउस गैसों के मुख्य उत्पादक है पहली दुनिया के सारे देश। 1992 में रियो-डी जनीरो में पृथ्वी सम्मेलन में तीसरी दुनिया के एक प्रतिनिधि ने कहा था कि “दुनिया की सिर्फ पन्द्रह फीसदी आबादी जिन

देशों में बसती है वे पृथ्वी के कुल जीवश्म इंधन का 50 प्रतिशत खर्च करते हैं। इसी को वे विकसित जीवन प्रणाली कहते नहीं थकते।”<sup>1</sup> अपने ही स्वार्थ के कारण इन देशों में सत्ता संपन्न शासक अपनी प्रचारित-आचारित व्यवस्था से अलहदा नहीं हो पाते। हालांकि किसी भी शहर की सड़कों पर रोज़ जितनी गाड़ियाँ चलती है उससे न सिर्फ पृथ्वी और उसी जनपद का तापमान बढ़ता है बल्कि बाशिन्दों के स्वास्थ्य को भी गंभीर नुकसान पहुँचता है।

खासतौर पर बच्चों का कद कम होने की वजह गाड़ियों से निकला विषैला धुआँ सीधे उनकी नाक और मुँह में घुसता है। शहरों में पाँच से पन्द्रह साल के बच्चों में से 85 प्रतिशत श्वासनली और फेफड़ों की तकलीफों से पीडित है। गाड़ियों के पाइप से कार्बन मोनोक्साइड गैस निकालते हैं जिसको हिटलर ने अपने गैस चेम्बर में मनुष्यों पर इस्तेमाल करके अमानुषिक निष्ठूरता के लिए मनुष्य के इतिहास में धिक्कार की पात्रता अर्जित कर ली। वही कार्बन मोनोक्साइड गैस शिशुओं की साँसों को विषैली बना रही है और इसे विकसित सभ्यता का परिचायक माना जा रहा है।

संक्षेप में प्राकृतिक पर्यावरण और मानव राशी का अभेद्य संबन्ध है। प्रकृति के साथ विवेकपूर्ण संबन्ध मानव के विकास में बाधक नहीं

---

1. जया मित्रा - विकास का कृष्णपक्ष, वागर्थ सितंबर, 2001 - पृ. 29



बल्कि सहायक है। प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और समृद्धि ही मनुष्य के समूचे परिवेश को स्वस्थ रख सकती है।

### **पर्यावरण, परिवेशिकी व प्रदूषण संबन्धी अवधारणाओं का विकास**

मौजूदा समय में राष्ट्रीय-अन्ताराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक चर्चित विषयों में पर्यावरण शामिल है। इसे लेकर तमाम तरह के विचार और बहसें चल रही हैं। आज पर्यावरण, परिवेशिकी और प्रदूषण जैसे शब्दों का काफी प्रचलन हो रहा है। जब से पश्चिम में 'एनवायर्नमेन्ट', 'इकोलोजी' और 'पोल्यूशन' की समस्याओं पर तीव्र चिन्ता होने लगी है तब से भारत में भी इसकी गूंज तेज़ हो गयी है।

### **भारत में पारिस्थितिक सजगता की शुरुआत**

1970 में सैलेंटवाली संरक्षण आन्दोलन और उत्तर भारत के चिपको आन्दोलन ने ही सबसे पहले भारत में प्रत्यक्ष पारिस्थितिक चर्चाओं के लिए ठोस पृष्ठभूमि तैयार की थी। अस्सी की शुरुआत में हुई भोपाल दुर्घटना ने भी इसे काफी चालक शक्ति प्रदान की थी।

अस्सी की शुरुआत में भारत में आर्थिक उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया शुरुआत हुई। नब्बे के दशक में यह तेज़ पकड़ी और भारत नव-उपनिवेश में तब्दील होने लगा। यही नहीं नए परिवेश ने नगर-केन्द्रित उच्च मध्य वर्ग तथा ग्रामीण संपन्नवर्गों को प्रलोभनों

की ओर धकेल दिया। भूमण्डलीकरण की प्रगति के साथ-साथ पारिस्थितिक विनाश भी बढ़ता गया - “सूखती हुई नदियों के रूप में, विष लिप्त पानी के रूप में पेयजल के रूप में, नये, नये रोगों के रूप में, दूषित वायु तथा प्रकृति के विनाश के रूप में पारिस्थितिक समस्या हमारी हमसफर रही।”<sup>1</sup>

इस समस्या के भीषण स्वरूप को समझाने वालों को पारिस्थितिक आतंकवादी बुलाया जाता है। दरअसल हमारे तालाबों और जल स्रोतों में ज़हर खोलनेवाले, प्राणवायु को दूषित करनेवाले जंगलों को मिटानेवाले, सागर को लूटनेवाले तथा मिट्टी को कॉणक्रीट से ढकनेवाले ही पारिस्थितिक आतंकवादी है। वे ही आगामी पीढ़ी के भविष्य को बर्बाद करनेवाले उग्रवादी है। अगले दस वर्षों में मिलनेवाला मुनाफा ही उनके लिए भविष्य है। उसके आगे सोचने के लिए न ही उनमें कूवत है और ना ही कोई दिलचस्पी।

जिन्दगी के समस्त क्षेत्र आज पारिस्थितिक सोच के विषय बन गए हैं। खेती में फुकुओका द्वारा प्रचलित जैव संप्रदाय, स्वास्थ्य संरक्षण में हुए प्राकृतिक परिणाम, भवन निर्माण में बेक्कर स्टैल, ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में बदले तंत्र प्रदूषण रहित उद्योग, भूमण्डलीकरण के पर्यावरण विरुद्ध तत्व, पर्यटन के क्षेत्र में औद्योगीकरण के फलस्वरूप होनेवाले आघात, खान-पान में आए परिवर्तन, जल का उपयोग रासायनिक विष से

---

1. हरित निरूपणम मलयालत्तिल - जी. मधुसूदनन - पृ. 60

मुक्त कपड़ों का उपयोग आदि सूर्य के नीचे आनेवाली सभी वस्तुओं को हम परिस्थिति के साथ जोड़कर देख सकते हैं। इस तरह “परिस्थित दर्शन सभी दर्शनों की माता एवं दर्शनों के दर्शन के रूप में परिणत हो गया है।”<sup>1</sup> जी. मधुसूदनन के शब्दों में “धर्ती को अपने वजूद को बचाये रखने का हक है। यह धर्ती मानव के नाम पर वसीयत में मिला कोई घर नहीं है। इन्सान इस पृथ्वी माँ की दया पर ज़िंदा है। इसी विनम्र चेतना से ही पारिस्थितिक नैतिकता का उद्भव होता है।”<sup>2</sup>

### परिस्थिति दर्शन का विकास

1970 के आसपास ही इक्को फिलोसफी का विकास होने लगा। यह तो मुख्य रूप से गहन परिस्थितिवाद (Deep Ecology), सामाजिक परिस्थितिवाद (Social Ecology), पारिस्थितिक साम्यवाद (Eco-Marxism), पारिस्थितिक स्त्रीवाद (Eco-Feminism) आदि शाखाओं में आबंटित है।

1963 में प्रकाशित रेचल कार्सन का ‘निशब्द वसन्त’ (silent spring) नामक ग्रन्थ के प्रकाशन के साथ ही पाश्चात्य दुनिया में पारिस्थितिकी संबंधी चर्चाओं की शुरुआत हुई थी। उनसे पहले हेनरी

---

1. कथयुम परिस्थितियुम - जी. मधुसूदनन - पृ. 17

2. वही - पृ. 33

डेविड तोरो, जॉन मुयर, अलदो लियपोल्ड, लूयी मंफोड़ आदि चिंतकों के पारिस्थितिक एवं सैद्धांतिक आविष्कारों के बावजूद कार्सन के प्रायोगिक वैज्ञानिक ग्रन्थ ने ही पाश्चात्यों को सचेत किया था।

सचमुच “परिस्थिति दर्शन धरती को बचाने का कोई प्रणव मंत्र नहीं है। बल्कि जीवन की रजत-रेखा है। किसी को धर्ती को बचाने की ज़रूरत नहीं। प्रकृति अपनी कालयात्रा को नियंत्रण में रखेगी।”<sup>1</sup> समस्या केवल मनुष्य और पेड़ पौधों और जीव जन्तुओं के अस्तित्व की है। निष्कर्षतः आधुनिक पारिस्थितिक समस्या हमारे जीवन को पारिस्थितिक रूप से नहीं बल्कि आत्मीय एवं सांस्कृतिक तौर पर भी प्रभावित करती है। फिलहाल साहित्य क्षेत्र में भी इस चिंतन का भावुक परिणाम हुआ है।

### **रेचल कार्सन का निशब्द वसन्त में चर्चित परिस्थिति संबन्धी विचार**

मशहूर अमरीकी लेखिका रेचल कार्सन ने पर्यावरण प्रदूषण की भविष्यवाणी दो दशक से भी पहले, अपने साहित्य के माध्यम से कर दी थी। रेचल कार्सन का निशब्द वसन्त (silent spring) बीसवीं सदी का सबसे ज़्यादा प्रभावशाली ग्रन्थ है जिसने तहलका मचाकर वैज्ञानिकों तथा लोगों की आँखें खोली। इस किताब को समस्त मानव जाति के लिए

---

1. कथयुम परिस्थितियुम - जी. मधुसूदनन - पृ. 17

लिखी गई शताब्दी का सबसे महत्वपूर्ण वृत्तांत कहा गया है। इस नायाब किताब ने कीटनाशक औषधियों के बारे में अब तक चली आ रही सार्वजनिक बोध को स्थायी रूप से बदलने का बीड़ा उठाया। इसमें प्रदूषण तथा कीटनाशी रसायनों की प्रतिक्रियाओं और प्रकोपों का सूक्ष्म चित्रण पहली बार किया गया। इसमें दिखाया गया कि कीटनाशी रसायन 'बूमैरंग' है। इनका छिड़काव होता है कीटों और हानिकारक जीवों को मारने के लिए, लेकिन प्रभाव पड़ता है उल्टे मानव ही पर। रेचल कार्सन के शब्दों में "हमारा ध्यान जितनी ज़्यादा दुनिया के अजूबों और हकीकतों की तरफ जाएगा उतना ही कम रुचि हम उन्हें भंग करने में दिखाएँगे।"<sup>1</sup> 1962 में इसका प्रकाशन हुआ था। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से अमरीका में D.D.T जैसे मारक विष पर पाबंदी लगा दी गयी। साथ ही साथ इसने अमरीकी पारिस्थितिक संरक्षण अभिकरण (EPA) में भी अहम भूमिका निभाई।

रेचल कार्सन ने अपनी किताब के ज़रिए ऐसे कई दस्तावेज़ पेश किए जिन्होंने साबित किया कि विनाशकारी कीड़ों को मारने के लिए जिन ज़हरीले रासायनों का इस्तेमाल होता है वे हमारी प्रकृति एवं उसकी जटिल से जटिल प्रक्रियाओं के लिए नुकसानदेह है। लेकिन इन सबसे मानवजाती अनजान है। थोड़ी सी अवधि में संश्लेषित ये हानिकारक रसायन जीवत और जड़ पदार्थों में घुलमिल कर सर्वव्यापी बन गये हैं।

---

1. (From the cover page of silent spring) Silent Spring - Rachel carson

बृहत् नदी में ही नहीं ज़मीन के नीचे अदृश्य रूप में बहनेवाली सरिताओं से भी ये मिल गए हैं। इस्तेमाल किए गए इन रसायनों के अवशेष भूमि में सालों तक बने रहते हैं। इन रसायनों ने मछलियों, पक्षियों, घरेलु व जंगली जानवरों के शरीर में इस तरह घर कर लिया है कि प्राणियों पर प्रयोग करनेवाले तक अपनी चीज़ों को इनके प्रदूषण से मुक्त रखने में असमर्थ है। दूर पर्वतीय झीलों की मछलियों, भूमि के केंचुओं, चिड़ियों के अंडों और मानव के शरीर में भी ये पाये जाते हैं। ये रसायन जब जंगलों में छिडके जाते हैं तुरंत उसका संकेत हमें मिल जाता है। रेच्वल कार्सन के शब्दों में “दो दिनों में ही झीलों के तट पर मरी और मरती हुई मछलियाँ दिखाई दी जिनमें शिशु ‘साल्मण’ भी थी। सडकों और जंगलों में पक्षी मर रहे थे।”<sup>1</sup>

ये रसायन अब हर उम्र के मानव की देह में जम गए हैं। रेच्वल कार्सन के शब्दों में “माँ के दूध और संभवतया अजन्मे शिशु के रगों में भी पाये जाते हैं।”<sup>2</sup> द्वितीय महायुद्ध के बाद ही इन कीटनाशक रसायनों के उत्पादन हेतु कारखानों की स्थापना हुई थी।

---

1. Silent Spring - Rahul Carson - P. 103

"with in two days dead and dying fish, including many young salman, were fund along the banks of the stream.... along the roads and in the woods birds were dying."

2. वही - पृ. 12

They occur in the mothers milk and probably in the tissues of the unborn child.

फिर विभिन्न आधुनिक वैज्ञानिक प्रविधियों से जटिल रसायन तैयार किए जाने लगे। ये कीटनाशक रसायन प्राकृतिक खनिजों और पादप-उत्पादों यानी आर्सेनिक, तांबे, सीसे, मैंगनीज़, जस्त और अन्य खनिज यौगिकों से तैयार किए गए। जैविक दृष्टि से संश्लेषित कीटनाशक रसायन शक्तिशाली, होते हैं - “इनमें विषाक्त करने की ही शक्ति नहीं होती बल्कि शरीर की महत्वपूर्ण क्रियाओं में दखल कर उनको खराब करके घातक रीति से बदल देने की भी सामर्थ्य होती है। ये शरीर के महत्वपूर्ण एंज़ाइमों को नष्ट कर देते हैं और अर्जा देनेवाली ऑक्सीकरण क्रिया में बाधा पहुँचाते हैं।”<sup>1</sup>

डि.डी.टी मानव समूह के लिए किस हद तक नुकसानदेह है इसका जिक्र भी रेचल कार्सन ने अपनी किताब में किया है। इसका पूरा नाम है - डाइक्लोरोडाई फिनाइल ट्राइक्लोरोइथेन। इसका सर्वप्रथम प्रयोग दूसरे महायुद्ध के दौरान हज़ारों सिपाहियों शरणार्थियों और कैदियों पर लगी जूँ को मारने के लिए किया गया था। अनजाने इसका मानव शरीर में प्रवेश होने पर यह प्रधान अंगों में जम हो जाता है। जैसे कि एड्रिनल ग्लैन्ड, वृषणों, थायरोयड ग्रंथि आदि में। अपेक्षतया अधिक मात्रा में यह जिगर, गुर्दे और अंतडी में ही जम हो जाता है।

---

1. प्रदूषण पृथ्वी का ग्रहण - प्रेमानन्द चन्दोला - पृ. 25

कीटों, चुहा तथा अनचाही वनस्पतियों के नियंत्रण के लिए प्रयुक्त किए जानेवाले रसायनों से ही प्रदूषणकारी पदार्थों की निरंतर वृद्धि होती जाती है। कुछ रसायन अवांछित पौधों व मछलियों के विनाश के लिए जानबूझकर पानी में मिलाए जाते हैं। कतिपय रसायन जंगलों में छिडकाने पर नदी नालों में पहुँच जाते हैं। कुछ पत्ती के साथ ज़मीन पर बिखरकर धीरे-धीरे नीचे की ओर रिस जाते हैं। इसप्रकार भूमिगतजल भी प्रदूषित हो जाती है। आज इनके संबन्ध में काफी जानकारी उपलब्ध है। लेकिन इन इसका इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं। यह नहीं कि रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए। लेकिन संतुलन की ज़रूरत है। इस ज़हर से असंख्य लोगों से संपर्क कराने की ज़िम्मेदारी कतिपयों का रहा है। अवाम तो इस बात से बिलकुल बेखबर है। पृथ्वी के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति को कोख से लेकर मृत्यु तक खतरनाक रसायनों से संपर्क कराया जा रहा है। हमारी धर्ती आज विनाश के कगार पर खड़ी है अंग्रेज़ी कवि कीट्स के शब्दों में-

“झीलों की नरकटे मुरझा गयी है  
और यहाँ अब चिड़ियाँ गाती नहीं।”<sup>1</sup>

- 
1. Rachel Carson - Silent spring (from the introduction of silent spring)  
"The sedge is withered from the lake and no birds sing"  
(KEATS)



संक्षेप में अब इन्सान में दुर्दृशिता कम होती जा रही है। वह अपने साथ इस धर्ती का भी विनाश करने पर आमादा है। रेचल कार्सन इस मानवीय त्रासदी से हमें आगाह करती है।

### गहन परिस्थितिवाद

पारिस्थितिक विचारधाराओं की शुरुआत पश्चिम में परिवर्तनवाद के रूप में हुई थी। परिवर्तनवादियों के अनुसार मौजूदा संस्कृति की सीमाओं के भीतर ज़रूरी परिवर्तन के ज़रिए पारिस्थितिक समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। नोर्वीजियन आलोचक अर्णोस ने इस नयी विचारधारा को षाल्लो इक्कोलजी के नाम से अभिहित किया है। 1973 में गहन परिस्थितिवाद नामक एक नूतन दर्शनधारा की नींव उन्होंने डाली। गहन परिस्थितिवाद के मूल में नींव के पत्थर के समान दो विचारधाराएँ विद्यमान हैं। पहली विचारधारा है मनुष्य के समान इस प्रकृति की प्रत्येक सत्ता की भी अपनी अस्मिता है। अपने वजूद को ढूँढने का हक भी उनमें निहित है। दूसरा है इस दर्शन को मानव केन्द्रित होने के बजाय जैव केन्द्रित होना चाहिए। इस प्रकार दुनिया में बयोसेन्ट्रिक समता बरकरार रहनी चाहिए।

मनुष्य की यह गलत धारणा है कि इस संसार की तमाम चीज़ें एवं प्राकृतिक वैभव उसके नफे के लिए सृजित हैं। पल-पल बदलती हुई

जीवनशैली एवं जैविक स्तर को बरकरार रखने के लिए वह प्राकृतिक संपदा को लूटने में मशगूल है। बदलते हुए इस माहौल में मनुष्य को अपनी विचारधाराओं, नीतियों तथा अर्थ शास्त्र को आमूलचूल परिवर्तित करने की ज़रूरत है। भारतीय विचारधाराओं में बौद्ध व सेन दर्शन ने भी गहन परिस्थितिवाद के विकास में अहम भूमिका निभाई है। गहन परिस्थितिवाद बाद में पारिस्थितिक आतंकवादियों की विचारधारा बन गया। लेकिन अर्नेनस की विचारधारा कतई हिंसा का रुख अख्तियार नहीं करता। बहरहाल गहन परिस्थितिवादियों में भी कुछ लोग ऐसे हैं जो प्राकृतिक संरक्षण की राह पर हिंसा पर ऐतबार करते हैं। यों यह स्पष्ट है कि गहन (तीव्र) पारिस्थितिवादी दर्शन पाश्चात्य देशों में सबसे पहल अस्तित्व में आया था और उसका व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार हुआ था।

### **सामाजिक परिस्थितिवाद**

“पूँजीवादी व्यवस्था प्रकृति और समाज दोनों पर एक साथ हमला करने के साथ उनमें गहरे ज़खम भी पैदा करती है। यह एक ओर प्रकृति का उन्मूलन करती है, तो दूसरी ओर सामाजिक अनैतिकताओं को भी बढ़ाती है।”<sup>1</sup> उन्नीसवीं सदी के अंत में वामपंथी विचारधारा के ज़रिए पीट्र क्रोपोट्किन, चार्लस फोरियर, विल्यम मोरिस आदि विचारकों एवं

---

1. कथयुम परिस्थितियुम - जी. मधुसूदनन - पृ. 352

आलोचकों ने पूँजीवादी व्यवस्था के इस पारिस्थितिक हमले पर लिखा था। बीसवीं सदी के आखिरी तीन दशकों में साहित्यकारों की तरफ से भी परिस्थितिक दर्शन में फिर से जान फूँक दी गयी। यों फिर से हरे और लाल का संगम हुआ। यह संगम मुख्य रूप से दो धाराओं में आगे बढ़ता है। पहला है - सामाजिक परिस्थितिवाद एवं दूसरा है पारिस्थितिक मार्क्सवाद। इन दोनों की सबसे बड़ी खासियत है कि यह अतिवादी परिस्थितिवादियों से अलग हटकर पारिस्थितिक समस्याओं की सामाजिक - सांस्कृतिक वजहों पर ज्यादा ज़ोर देते हैं।

रेचल कार्सन के 'निशब्द वसन्त' के प्रकाशन वर्ष में (1962) ही मुरे बुक्चिन नामक अमेरिकन विचारक की 'नकली परिस्थिति' प्रकाशित हुई। इस किताब ने सामाजिक परिस्थितिवाद को दार्शनिक गरिमा प्रदान की। इसके बाद लिखी गयी अपनी तमाम किताबों के ज़रिए उन्होंने इस दार्शनिक शाखा को और विकसित किया। गहन परिस्थितिवादी तमाम इलज़ाम मानव केन्द्रित सभ्यता पर लगाते हैं। उनकी नज़र समस्याओं की तह तक पहुँचती नहीं है। सतह पर ही केन्द्रित रहती है। वे समस्याओं की नफ़ज़ पकड़ने में नाकामियाब हो जाते हैं। वे उसके पीछे छिपे असली सामाजिक वजह को अनदेखा कर देते हैं। दरअसल सबसे पहले इन्सान ने इन्सान पर ही अधीशत्व स्थापित करने की कोशिश की। फिर वे प्रकृति पर अधीशत्व कायम करने में कामियाब हुए।

मानव ने शुरुआती दौर में प्रकृति का अनुसरण करते हुए ज़िन्दगी बिताने की कोशिश की थी। बाद में पुरुष के अधीशत्व बरकरार रखने के लिए गोत्र समाज का कई दलों में आबंटन हुआ। पुरुष ने नारी को अपने कब्जे में कर लिया। इस सामाजिक अधीशत्व के सहज परिणामस्वरूप प्रकृति को उसने अपने अधीन में कर लिया। संक्षेप में “इस पुरुषमेधा व्यवस्था एवं अधीशत्व को खतम कर देनेवाली पारिस्थितिक अराजकवाद ही बुकिचन का सामाजिक परिस्थितिवाद है।”<sup>1</sup>

### पारिस्थितिक साम्यवाद

पारिस्थितिक साम्यवाद चिंतन की शुरुआत रूडोल्फ बहरों की ‘लालिमा से हरीतिमा की ओर’ (from red to green) नामक मशहूर किताब से होती है। डेविड पेप्पर, पीटर डिक्कन्स सरीखे कई आलोचकों ने पारिस्थितिक साम्यवाद की व्याख्या स्पष्टता के साथ करने की कोशिश की है। पारिस्थितिक साम्यवाद की समकालीन कार्यकर्ताओं में सबसे अक्वल है - जेयंस ओ कोणर। वे न्यूयॉर्क से प्रकाशित ‘पूँजीवाद, प्रकृति साम्यवाद’ नामक शोध पत्रिका के संपादक हैं। बुकिचन के सामाजिक परिस्थितिवाद से भिन्न राजनैतिक अर्थशास्त्र का एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण ही पारिस्थितिक साम्यवाद चिंतन में उपलब्ध है। जी मधुसूदनन के शब्दों

---

1. कथयुम परिस्थितियुम - जी. मधुसूदनन - पृ. 353

में इस धारा के अनुसार “श्रम, शोषण, उत्पादन, मुनाफे का दर, पूँजी - वितरण एवं उसका केन्द्रीकरण जैसे मुख्य मुद्दों पर विचार करने के बाद ही पूँजीवादी के व्यवस्था के अंतरगत आते प्रकृति के विनाश को हम आंक सकते हैं।”<sup>1</sup>

पारिस्थितिक साम्यवादियों की नज़र में पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था का क्रांतिकारी परिवर्तन के बाद ही पारिस्थितिक संकट का हल निकाला जा सकता है। साथ ही साथ ये भी अतिवादी परिस्थितिवादियों और सामाजिक परिस्थितिवादियों की तरह प्रकृति की स्वावलंबित एवं जैव विविधता को मानते हैं। इसके अलावा इक्कोलजी को इक्कीसवीं सदी की बुनियादी विज्ञान के तौर पर भी स्वीकार करते हैं। केरल के विज्ञान एवं साहित्य परिषत् को एक हद तक पारिस्थितिक साम्यवादी संघटन मान सकते हैं यद्यपि उसने एन.जी.ओ की हैसियत पाली है।

### **पारिस्थितिक स्त्रीवाद**

पारिस्थितिक सौन्दर्यवादी आलोचना की एक समांतर प्रवृत्ति के रूप में पारिस्थितिक स्त्रीवाद की शुरुआत हुई। प्राकृतिक जैविक समाज एवं प्रत्येक प्राकृतिक तत्वों की आपसी तालमेल का विश्लेषण करनेवाली विज्ञान शाखा है प्रकृति विज्ञान। इससे प्रेरणा स्वीकारती एक विज्ञान

---

1. कथयुम परिस्थितियुम - जी. मधुसूदनन - पृ. 353

शाखा है पारिस्थितिक स्त्रीवाद। डेविड तोरो, अल्दो लियपोल्ड, जोन म्यौर, रेचल कार्सन आदि महारथियों की रचनाएँ इसके लिए प्रेरणादायक रही हैं।

### पारिस्थितिक स्त्रीवाद का उद्भव और विकास

फ्रायड के “शारीरिक घटना ही स्त्री की तकदीर है।”<sup>1</sup> (Anatomy is destiny) जैसे सिद्धांत पुरुषमेधा व्यवस्था का हिमायती है। फ्रायड के इस तरह के सिद्धांत महज़ पश्चिमी समाज के उच्च-मध्यवर्ग के पागलपन का नतीजा है। इसी वर्ग की स्त्रियों ने ही नारीवाद की पहल की थी। पर वे उपभोक्तावादी संस्कृति की नारी शोषण के खिलाफ आवाज उठाने में नाकामियाब रही। यही नहीं वे स्वयं इस उपभोक्तावादी संस्कृति की गिरफ्त में आकर गुलाम बन गयीं। स्त्री का मकसद पुरुष सरीखा बनना नहीं है। स्त्री-पुरुष के जैविक अंतर को हीनता बोध से नहीं बल्कि गर्व से देखना चाहिए। नारी को नारी बनकर ही अपने वजूद एवं स्वतंत्रता को कायम रखना चाहिए। पुरुष से नहीं बल्कि पुरुषमेधा व्यवस्था से लड़ना चाहिए। क्योंकि लिंग-भेद एक व्यक्तिगत समस्या नहीं बल्कि सामाजिक दुराचार है। इसीलिए ही आज स्त्री एवं प्रकृति का शोषण करनेवाली उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध एक प्रतिरोध के रूप में पारिस्थितिक स्त्रीवाद आगे बढ़ रहा है।

---

1. Three Essays on the theory of sexuality - Sigmund Freud

नारीवादी आंदोलन की प्रवर्तकों में सबसे पहले सियोण दि बुआ ने ही नारी को प्रकृति के साथ जोड़कर देखा था। पुरुष सोचता है कि स्त्री एवं प्रकृति की सहजता एवं स्थायीभाव पर कब्ज़ा जमाकर ही संस्कृति की सृष्टि कर सकता है। पुरुषमेधा समाज इतना हल्का एवं कृतघ्न हो गया है कि माँ की कोख से जन्म लेकर, और उसके प्यार में पलकर उसी माँ को ही खतम करने पर तुला हुआ है। पुरुष यह साबित करना चाहता है कि स्त्री एवं प्रकृति की उर्वरता से ज़्यादा पुरुष अपनी कर्मों के बलबूते पर सब कुछ हासिल कर सकता है। वह यह सच्चाई भूल जाता है कि प्रकृति माँ को तबाह करते हुए ही वह उद्योग व उपभोग संस्कृति का पैदाइश करता है। बुआ (वा) के अनुसार पुरुष के इस विकास व्यग्रता के पीछे आर्थिक ही नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक वजह भी मौजूद है। सबकुछ तबाह कर देनेवाला विकास उसके लिए विस्मृति है। इस तथ्य की विस्मृति कि अपनी पूरी ज़िन्दगी इस प्रकृति के सहारे ही बितानी पड़ेगी। होक हैमर एवं अडोणों के शब्दों में “स्मृति का नुकसान वैज्ञानिक प्रगति की सबसे बड़ी शर्त है। सारी की सारी भौतिकता विस्मृति है।”<sup>1</sup> 1974 में घेरी ऑटनर ने “क्या संस्कृति के लिए नारी की तरह है पुरुष के लिए नारी?”<sup>2</sup> सवाल (Is female tomale as nature to culture) प्रस्तुत किया गया। बुआ

- 
1. Dialitics of Enlightenment - Max Hork Haimer and Theodor w. Adorno, 1972
  2. In women culture and society - Edited

के नज़रिए में एवं घेरी के सवालॉ में पारिस्थितिक स्त्रीवादी विज्ञान का बीज निहित है।

मुररे बुक्चिन का इन्स्टिट्यूट ऑफ सोष्यल इक्कोलजी में ही पहली बार इक्को फेमिनिज़्म शब्द का प्रयोग किया गया है। वह 1976 में एक फेमिनिज़्म कोर्स दाखिल हुई थी। उसकी जिम्मेदारी पारिस्थितिक स्त्रीवाद की प्रसिद्ध दार्शनिक नेस्त्रा किंग पर थी। उन्होंने बाद में 1981 में 'फेमिनिज़्म और प्रकृति के बीच की लड़ाई' विषय पर एक प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसी बीच 1978 में मेरी डाली की गैन इक्कालजी, सूसन ग्रिफिन की स्त्री और प्रकृति नामक दो प्रामाणिक ग्रन्थों का भी प्रकाशन हुआ।

कारन वारन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इको-फेमिनिस्ट एथिक' में "स्त्री एवं प्रकृति पर पुरुष के अधीशत्व के खिलाफ आलोचना की। नारी एवं प्रकृति पर केन्द्रित एक नीतिशास्त्र की ज़रूरत पर चर्चा भी की।"<sup>1</sup> इक्को फेमिनिज़्म के विकास में अहम भूमिका निभानेवाली एक अन्य लेखिका है करोलिन मर्चन्ट। करोलिन मर्चन्ट की राय में "नारी की शारीरिक विशेषताएँ एवं प्रकृति दोनों स्त्री शक्ति के स्रोत है।"<sup>2</sup>

---

1. Towards an Ecofeminist Ethic - Karen J Warren, 1988

2. Earth care women and the Environment - Curolyn Merchant  
Routledge, 1995



## पारिस्थितिक स्त्रीवाद आज

पारिस्थितिक दर्शन की छत्र-छाया में बाद में इक्कोफेमिनिज़्म का चार शाखाओं के ज़रिए निरंतर विकास हुआ। ये शाखाएँ हैं - आध्यात्मिक इक्कोफेमिनिज़्म (spiritual ecofeminism), सांस्कृतिक इक्कोफेमिनिज़्म (cultural ecofeminism), सामाजिक इक्कोफेमिनिज़्म (social ecofeminism), साम्यवादी इक्कोफेमिनिज़्म (socialist eco-feminism)।

अंग्रेज़ी साहित्य में पिछली सदी से ही पारिस्थितिक स्त्रीवाद का प्रभाव हम देख सकते हैं। वर्डसवर्त की बहन डोरोत्ती वर्डसवर्त की रचनाओं का आज पारिस्थितिक स्त्रीवादी नज़रिए से पुनः मूल्यांकन हो रहा है। अमेरिकी लेखिका मेरी ओस्टिन की (The land of little rain) 'बारिश दुर्लभ होता देश' भी इक्को फेमिनिज़्म की सराहनीय रचना है। आनी दिल्लार्द, विल्ला कातर, उर्सुला लेग्विन, मार्गरेट आट्टकुड, स्टार हॉक, आलीस वाक्कर, लस्ली मर्माण आदि प्रसिद्ध पारिस्थितिक स्त्रीवादी लेखिकाएँ हैं।

संक्षेप में प्रकृति और स्त्री पर अधीशत्व स्थापित करने के लिए पुरुषमेधा व्यवस्था हमेशा से काम करती आ रही है। इसके खिलाफ आवाज़ दर्ज करने की सार्थक कोशिशें जारी रहनी चाहिए। पुरुषमेधा सत्ता

और उसकी अधिनायक वृत्ति से लड़कर जीत हासिल करने के लिए स्त्रीवादियों के साथ पारिस्थितिक चेतना से लैस तमाम लोगों को भी कदम से कदम मिलाकर चलना होगा।



खण्ड-ख

भारत में पारिस्थितिक आंदोलनों का  
विकास

## खण्ड-ख

### भारत में पारिस्थितिक आंदोलनों का विकास

स्वातन्त्र्योत्तर सत्ताधारियों की तरफ से प्रकृति संतुलन के खिलाफ आयोजित विकास संबन्धी विचारधारा

मनुष्य स्वभावतः हमेशा विकास के पथ पर अग्रसर होता रहा है। यदि हम मानव इतिहास का बारीकी से विवेचन करें तो पता चलेगा कि मानव तथा विकास एक-दूसरे के पूरक हैं। मानव के बिना सामाजिक विकास तथा विकास के बिना मानव का सामाजिक अस्तित्व कुंद पड़ जाता है। मलयालम की मशहूर कवयित्री सुगतकुमारी के शब्दों में कहें तो विकास का मतलब “समूचे मानव की सार्वभौमिक विकास के लिए निर्मित ज़रूरी साधन एवं उनका उपभोग है।”<sup>1</sup>

शुरुआत में विकास पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके होता था, किंतु पूँजीवादी व्यवस्था की मज़बूती के साथ विकास की मूल अवधारणाओं में काफी बदलाव आया। विकास का आधार स्वहित हो गया और विकास के मूल्यों में तब्दीली आ गई। यदि प्रकृति के साथ

---

1. कावुतीडल्ले - सुगतकुमारी - पृ. 25

सामंजस्य रखते हुए विकास करें तो पर्यावरण प्रदूषण की समस्या काफी हद तक काबु में की जा सकती है। उसके लिए हमें अपने विकास की अवधारणा बदलनी होगी। वैश्वीकरण के वर्तमान संदर्भ में विकास की अवधारणा आक्रामक तथा लूट पर आधारित हो गई है। मसनोबु फुकुओका के अनुसार “विकास का एकमात्र फायदा यही है कि उसने इंसान को प्रकृति से दूर जाने का अवसर दिया।”<sup>1</sup> सुगतकुमारी के अनुसार “स्थायी विकास ही यथार्थ विकास है। अस्थायी विकास से हमें अस्थायी मुनाफे हासिल होते हैं और स्थायी नुकसान भी।”<sup>2</sup>

दरअसल सतत विकास एवं उपभोग में सामंजस्य ही विकास संबन्धी सही अवधारणा का मूलाधार है। इस संबन्ध में महात्मागाँधी का कथन श्रेयस्कर है। उन्होंने कहा था कि हमारे पास ज़रूरत के लिए पर्याप्त साधन है। परंतु असीमित लालच के लिए अपर्याप्त हैं। मानव एवं प्रकृति प्रेमी गाँधी जैसे लोगों तथा समाजशास्त्रियों को छोड़कर अधिकांश सत्ताधारियों के मुताबिक पश्चिमी देशों ने अपनी तरक्की का जो रास्ता अख्तियार किया वही सही है। क्योंकि उसी रास्ते पर चलकर उन्होंने तकनीकी तरक्की की है, उद्योगों में तरक्की की है, अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाई है और इसी के ज़रिए तकनीक को और बुलंदी पर पहुँचाने की काबिलियत बढ़ाई है। आज़ादी के आंदोलन में शामिल हमारे ज़्यादातर नेता, जिन्हें

---

1. One straw revelation by Masanoby Fukyoka - P. 89

2. कावुर्तीडल्ले - सुगतकुमारी - पृ. 89

अंग्रेज़ यहाँ की सत्ता सौंपकर गये, प्रश्चिम के तकनीकी व औद्योगिक प्रगति से बेहद प्रभावित थे। विकास का पैमाना उन्होंने उस हस्तांतरिक तथ्यों के आधार पर बनाया-प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन या राष्ट्रीय आय। अर्थात् जिन देशों की राष्ट्रीय आय अधिक है, वे विकसित हैं, जिनकी राष्ट्रीय आय कम है, वे देश अल्पविकसित हैं। राष्ट्रीय आय से उनका मतलब एक राष्ट्र के सब लोगों के उपलब्ध आय से नहीं। बल्कि राष्ट्र की सीमा में उत्पादित औसत आय से है।

विकास की धुन में हमारे राजनीतिज्ञों ने प्रकृतिक साधनों की सतत उपलब्धता, शुद्धता और मानव समाज के लिए उसकी अनुकूलता आदि नींवाधार समस्याओं की घोर उपेक्षा की। लेकिन आज भी विकसित देशों की होड़ में विकासशील भारत भी अनियंत्रित विकास का मार्ग अपनाते हुए अंधाधुंध दोहन तथा प्रदूषण की राह पर चल रहा है। इसकी मिसाल केरल के पालक्काड़ के मौन घाटी (silent valley) में हम देख चुके हैं। यह 8952 हेक्टेयर क्षेत्रफलवाली प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर स्थली है। 1970 के दशक में केरल सरकार ने इस 'शाँत घाटी' में एक विद्युत परियोजना स्थापित करने का बीड़ा उठाया था। जाने माने प्राणीशास्त्री सतीशचन्द्रन नायर बताते हैं "राज्य सरकार ने मौन घाटी के एवज में वन संपदा से लैस अन्य घाटियों में विकास परियोजनाओं की झड़ी लगा दी।"<sup>1</sup>

---

1. पर्यावरण की राजनीति - लता जोशी - पृ. 108

इसके विरुद्ध पर्यावरणवादियों एवं साहित्यकारों ने घोर आंदोलन चलाया। 1970 में भारत सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय पर्यावरण योजना व समन्वय समिति ने सलाह दी कि मौन घाटी परियोजना को त्याग देना ही श्रेयस्कर है तथा मौन घाटी को बायोस्फियर रिज़र्व स्थान (आरक्षित जीव मंडल) घोषित करना चाहिए।

कर्नाटक की बहुचर्चित कॉंजेट्रिक्स परियोजना भी सत्ताधारियों की तरफ से प्रकृति संतुलन के खिलाफ आयोजित विकास परियोजना की ज्वलंत मिसाल है। यह परियोजना मूल रूप में अमेरिका कंपनी यानी मंगलूर पावर कंपनी की ही एक उपकंपनी है जो पूर्व प्रधानमंत्री एच.डी. देवगौड़ा की पहल में कर्नाटक में पश्चिमी घाट पर 4300 हज़ार करोड़ रुपये की लागत से बन रही है। यह घाटी कई प्रकार के दुर्लभ जीव-जंतुओं का आवास स्थान है। अगर यह परियोजना पर्यावरण नियमों का पालन सख्ती से नहीं करेगा तो इसके विषैले जल से वहाँ के हरे-भरे पेड़-पौधे तथा दुर्लभ जीव-जंतु शीघ्र ही खतम हो जाएँगे। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् एवं प्रकृति प्रेमी मेनका गाँधी ने आरोप लगाया है कि - “विद्युत परियोजना की स्थापना से पर्यावरण को काफी खतरा पहुँचेगा। परियोजना से यहाँ के सैकड़ों लोगों को बेघर होना पड़ेगा। जंगल का एक भाग काट दिया जाएगा। निष्कर्षतः सारा जल समुद्र में चला जाएगा और समुद्र के जल प्रदूषित हो जाएगा। ज़हरीली गैस के हवा में घुलने से अम्लीय वर्षा होगी जो खेती तथा मानव जीवन को बुरी तरह प्रभावित करेगी।

यातायात के नाम पर भी पर्यावरण को काफी नुकसान झेलना पड़ रहा है। विकास के इस पहलू के अंतर्गत चार व आठ लाइन सड़क बनाने की योजना होती है। वह भी सार्वजनिक व्यवस्था तथा हितों को छोड़कर राजनीतिज्ञों तथा कुछ स्वार्थी लोगों के हित के लिए ही हो रहा है। केरल की किनालूर परियोजना इसके लिए सही मिसाल है। किनालूर एक पिछड़ा इलाका है। वहाँ एक छोटी सी रबड़ फैक्टरी है। सरकार चाहती है कि इलाके को औद्योगिक इलाके में तब्दील करें (industrial area)। इसके लिए वहाँ छः लैन सड़क बनाने का निर्णय लिया गया। वहाँ के पर्यावरणविद् और स्थानीय विस्थापित लोग इसके खिलाफ संघर्षरत हैं। वे आरोप लगाते हैं कि भूमाफिया और सरकार के मिली-भगत इसके पीछे हैं।

केन्द्र सरकार की पहल में फिलहाल संसद में आणव देयता बिल (Nuclear liability bill) पेश की गई। यह विधेयक पर्यावरण के लिए खतरा है। यह सत्तारूढ़ पार्टी व अमरिका की दोस्ती का परिणाम है। इसके तहत अमरीका भारत को एक आणव राष्ट्र के रूप में मान्यता देगी। इसके एवज़ में अमरीका के बहुराष्ट्रीय निगम भारत में आणव रियाक्टर स्थापित करेंगे और मुनाफा कमाएँगे मगर इससे होनेवाली तबाही के लिए वे ज़िम्मेदार नहीं होंगे। कम से कम मुआवज़ा देने के लिए ही वे ज़िम्मेदार होंगे। विकास के नाम पर सरकार की पहल में होती ऐसी



परियोजनाएँ वर्तमान पीढ़ी के लिए ही नहीं आगामी पीढ़ी के लिए भी खतरनाक साबित हो सकती हैं।

संक्षेप में हमें भविष्य के लिए विकास की एक स्वस्थ अवधारणा का रूपायन करना होगा। पर्यावरण वैज्ञानिक प्रो. रामदेव मिश्र कहते हैं कि “जब तक हमारे अर्थ और विज्ञान नैतिकता का सहारा नहीं लेंगे तब तक हमारा कल्याण नहीं हो पाएगा। हमें एक नयी सभ्यता का विकास करना होगा जिसमें व्यक्ति, समाज, भौतिक तथा जैविक संसाधनों की उन्नति हो सके।”<sup>1</sup> इसके लिए हमारे सत्ताधारियों को प्रत्येक विकास कार्य के तहत पर्यावरण शुद्धता को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

### **बृहद बाँधों का निर्माण**

सचमुच औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उत्पन्न विकास का प्रतीक है बाँध। आज़ादी के बाद बाँधों के निर्माण का सिलसिला शुरू हुआ। सिंचाई और बिजली दोनों के लिए बाँध का निर्माण ज़रूरी समझा गया। हमारी जितनी प्रमुख नदियाँ हैं उन सभी पर या तो बाँध बन चुके हैं या बन रहे हैं। ज्यों-ज्यों बाँध बनाने का क्रम तेज़ी पकड़ता गया त्यों-त्यों देश भर में यत्र-तत्र सक्रिय पर्यावरणवादियों ने इनके हानि लाभ की ओर लोगों को जागृत करना भी शुरू कर दिया।

---

1. पर्यावरण की राजनीति - लता जोशी - पृ. 130

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने बाँधों को “स्वतंत्र भारत के नये देवालय” बताया था (भक्रा बाँध के संदर्भ में)। पचास के दशक में मशहूर अंग्रेज़ इतिहासकार टायनबी ने आगाह किया था कि “नदियों की स्वच्छता की परवाह किए बगैर नदियों को दूषित करते रहने तथा जहाँ तहाँ बाँध बनाये जाने से सन् दो हज़ार तक भारतवर्ष की नदियाँ मर जाएँगी। उनके कंकाल ही बचे रहेंगे नावें नहीं चलेंगी। छलाँग मारकर लोग नदियाँ पार करेंगे।”<sup>1</sup>

“केन्द्रीय भूजल आयोग के अनुसार तीन हज़ार छः सौ बाँध बड़े बाँधों की श्रेणी में आते हैं जिनमें तीन हज़ार तीन सौ बाँधों का निर्माण कार्य अब भी चल रहा है। तब भी भारत की कुल जनसंख्या के 1/5 हिस्सा पेय जल से वंचित हैं। तथा दो तिहाई ऐसा है जिसके पास शौचालय जैसे मूलभूत सुविधा भी नहीं है।”<sup>2</sup> “1951 से लेकर 80 तक सरकार ने बड़े बाँधों के लिए 1.5 अरब रुपए खर्च की थी।”<sup>3</sup> लेकिन इससे फायदा ‘न’ के बराबर था। सिंचाई प्राप्त एक हेक्टर भूमि में जहाँ पाँच टण धान का उत्पादन होना चाहिए वहाँ मात्र 1.27 टण धान ही

---

1. जल युद्धडल - वंदना शिवा - पृ. 75

2. जया मित्रा - विकास का कृष्णपक्ष, वागर्थ सितंबर 2001 - पृ. 28

3. दिलचस्प - आदमी जंगलों को मिटाता जा रहा है, राजभाषा भारती, जनवरी-मार्च 2001 - पृ. 93

4. नव साम्राज्यवाद के नये किस्से - अरुंधति रॉय - पृ. 217

उपलब्ध होता है। इसके अलावा जल की उपलब्धता में आनेवाली कमी, भारी मात्रा में मिट्टी एवं कीचड़ भरने से पानी संभरण में आनेवाली कमी एवं वाटर लॉगिंग आदि से होनेवाला नुकसान करीब 89 अरब रुपये का होगा। अरुंधति रॉय की राय में “बड़े बाँध बीते ज़माने की बात है। ये बाँध पर्यावरण के लिहाज़ से विध्वंसक आर्थिक रूप से अव्यावहारिक और राजनीतिक रूप से अलोकतांत्रिक है।”<sup>1</sup>

बड़े बाँध वन्य जीव गण और विलक्षण औषधीय पौधों के लिए भारी पैमाने पर नुकसानदेह हैं। अलावा इसके पिछले पचास वर्षों में अकेले हिन्दुस्तान में बड़े बाँधों ने 3 करोड़ 30 लाख से ज़्यादा लोगों को विस्थापित किया है - “नर्मदावाली परियोजना के कारण 250000 से ज़्यादा लोग बेघर हो गए हैं।”<sup>2</sup> सरकार डींग मारती है कि संसार की सबसे बड़ी पुनर्वास योजना उनकी है। लेकिन विस्थापित लोग तीन शोड़ों में जीवन बिताने के लिए अभिशप्त हैं। तमाम बुनियादी ज़रूरतों से वे वंचित हैं। ये विस्थापित PAP (परियोजना के शिकार) के नाम से जाने जाते हैं। इसीलिए बाबा आंते ने प्रधानमंत्री को लिखा था कि “बड़े बाँध वंशों के हत्यारे हैं।”<sup>3</sup> विश्व बाँध संस्था के अनुसार दुनिया भर में “40 से पचास अरब लोग विस्थापित हुए हैं।”<sup>4</sup>

---

1. नव साम्राज्यवाद के नये किस्से - अरुंधति रॉय - पृ. 217

2. वही - पृ. 119

3. जल युद्धडल - वंदना शिवा - पृ. 85

4. वही - पृ. 81

अरुंधति रॉय की राय में “एक देश के विकास में बड़े बाँधों की भूमिका ऐसी है जैसे “देश की सेना में अणु बम।”<sup>1</sup> सुगतकुमारी के शब्दों में प्रत्येक बाँध जंगलों की मिट्टी, नदी एवं वहाँ की जनता के रहन-सहन, कुलमिलाकर वहाँ के इक्कोसिस्टम को तबाह करती है।”<sup>2</sup> हमें सचमुच बड़े बाँधों की जगह छोटी-छोटी परियोजनाओं को तरजीह देनी चाहिए। क्षयोन्मुख बाँधों को पुनःजीवित रखने के लिए वनरोपण पर ज़ोर दें, भूक्षरण को रोके और दूसरे ऊर्जास्रोतों - जैसे - हवा, सूरज, लहर, छोटी बिजली परियोजनाओं पर तवज्जुह रखनी भी चाहिए।

### जंगलों का विनाश और प्राकृतिक प्रकोप

हमारे देश के आर्थिक; सामाजिक एवं पारिस्थितिकीय विकास में वनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जंगल धरती के प्राकृतिक आवरण होते हैं। एक स्वस्थ जंगल में जल, हवा और मिट्टी का सामंजस्य रहता है। प्रकृति वैज्ञानिकों के अनुसार एक बीहड़ जंगल “जैविक भंडार-घर होता है।”<sup>3</sup>

वनों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव केवल आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। वन विश्व भर में जैव वैविध्य बनाये रखने में

- 
1. जलयुद्धडल - वंदना शिवा - पृ. 90
  2. कावुर्तीडल्ले - सुगतकुमारी - पृ. 92
  3. हमारा पर्यावरण - लाईक फतेहअली - पृ. 36

महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा 'जीन बैंक' की तरह काम करते हैं। पर्यावरण के क्षेत्र में वनों का काफी दूरगामी प्रभाव पड़ता है क्योंकि सभी जीवों के लिए वायुमंडल में उचित अनुपात में आकसीजन बेहद ज़रूरी है। इनसान अपनी तमाम क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं द्वारा वायुमंडल के इस संतुलन को हमेशा तोड़ता रहता है, परंतु वन पुनः उसे संतुलित कर देते हैं।

पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के अलावा वन जल संपदा को भी संरक्षित रखते हैं। वंदना शिवा की राय में "वन मिट्टी की हिफाज़त करता है एवं वनों की मिट्टी द्वारा अवशोषित जल भूमिगत जलस्रोतों के स्तर को बनाये रखने में मदद करता है।"<sup>1</sup> जन, जंगल, जल और ज़मीन के मध्य अटूट अंतर्संबन्ध होना बेहद ज़रूरी है, क्योंकि इसके बिना मानवीय जीवन से जुड़े सभी पक्ष बेमानी हैं। देश के स्वस्थ पर्यावरण के लिए हरितपट्टि का होना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

वन क्षेत्रफल के बढ़ने के बजाए लगातार कम हो रहा है। मौजूदा समय में हमारे देश में कुल 633.4 लाख हेक्टर क्षेत्र में वन फैले हुए हैं। यह क्षेत्र देश के कुल-भू क्षेत्र का 19.27 प्रतिशत ही है। "आदर्श पर्यावरण के लिए यह आवश्यक है कि देश के एक तिहाई हिस्से यानी 33 प्रतिशत भाग पर जंगल हों।"<sup>2</sup> केरल के मशहूर कवयित्री एवं परिस्थिति प्रेमी

---

1. जलयुद्धडल - वंदना शिवा - पृ. 17

2. पर्यावरण - विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 85

सुगतकुमारी के अनुसार “केरल में घने जंगल के रूप में पाँच प्रतिशत तक शेष नहीं रह गया है।”<sup>1</sup>

हमारे देश में जनसंख्या तेज़ी के साथ बढ़ रही है। विकास कार्यों के लिए वन भूमि को गैर वन भूमि में तब्दील किया जा रहा है। कच्चे माल के लिए वनों का सफाया किया जाता है, फलस्वरूप पारिस्थितिक असंतुलन की स्थिति पैदा होती है। इसका बुराअसर देश के मौसमी चक्र पर भी साफ दिखने लगा है। वन विनाश से जुड़ा सबसे अधिक खतरा उत्तर पूर्वी भारत को ही मोल लेना पड़ेगा। वहाँ कुल वन क्षेत्र में 635 वर्ग किलोमीटर की कमी आई है। भारत में वन विनाश की बढ़ती दर का प्रमुख कारण मनुष्य और पशुओं का वनों पर अंधाधुंध वारदात है। भारत का क्षेत्रफल विश्व के भौगोलिक क्षेत्रफल का मात्र 2.4 प्रतिशत है, जबकि यहाँ विश्व की 16 प्रतिशत जनता तथा 15 प्रतिशत पशु निवास करते हैं। वर्ष 1981-1991 के बीच देश की आबादी 13.50 प्रतिशत की दर से बढ़ी, जबकि इस दौरान 1930 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र में कमी आई। जिस रफ्तार से वन क्षेत्र घट रहा है उससे साफ ज़ाहिर है कि 33 प्रतिशत वनाच्छिन्न क्षेत्र का लक्ष्य हासिल करना दिवास्वप्न ही होगा।

वन विनाश की वजह देश विदेश में कई वन्य जीव लुप्त हो गए हैं। वन विनाश के खतरे से हिमालय के हिमनद भी सुरक्षित नहीं है। हाल

---

1. कावूर्तीडल्ले - सुगतकुमारी - पृ. 63

ही में किए गए एक अध्ययन के अनुसार, विश्व में अन्य स्थानों की तुलना में हिमालयी हिमनद तेज़ी से समाप्त हो रहा है। यदि इस क्षेत्र में हिमनदों के पिघलने की वर्तमान दर बरकरार रही तो वर्ष 2035 तक इस क्षेत्र से हिमनद के पूर्णतया खतम होने की आशंका ज़ाहिर की जा रही है। काबिले गौर तथ्य यह है कि 15 हज़ार साल पुराने ये हिमनद न सिर्फ़ भारत की प्रमुख नदियाँ - गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र के उद्गम स्रोत ही नहीं बल्कि करोड़ों भारतीयों के जीवन का आधार भी है। वनों की सघनता घटने से हिमालयी क्षेत्र में भूक्षरण की दर तेज़ी से बढ़ रही है।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि किसी भी राष्ट्र की संपन्नता और सभ्यता के विकास में जंगलों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। विकास के पैमाने तय करते समय मौजूदा समाज के भविष्य की संभावना पर भी विचार करना चाहिए। अगर हम ऐसा नहीं करते तो अविवेकपूर्ण कदमों के दुष्परिणाम सामने आने में देर नहीं लगेगी। इसलिए यह ज़रूरी है कि सभ्यता के पतन की इबारत लिखने से हम खुद को बचा लें।

### **1970 में केरल में घटित सैलेंटवाली संरक्षण आंदोलन**

वर्षा जंगल (Rain Forest) जैव परिवर्तन का पालना है। सैलेंटवाली केवल भारत का ही नहीं बल्कि संसार के मिटते नित्यहरितवनों में शुमार है। सबसे वैविध्यपूर्ण यह चोला जंगल (Shola Rain Forest)

बर्बादी के कगार पर है। “यहाँ साल में 5000 मि.मी. तक बारिश मिलती है।”<sup>1</sup> चोला जंगल के रूपायन की कई वजह हैं। परिस्थिति वैज्ञानिक एम.के. प्रसाद के अनुसार “सागर तट से यहाँ की ऊँचाई, ज़ोरदार हवा, वर्षा आदि इक्कोलजीय तत्वों के प्रभाव से ही यहाँ चोला जंगल बना था।”<sup>2</sup>

दुनिया में सबसे ज़्यादा जैववैविध्य वर्षा जंगलों में पाया जाता है। एक हेक्टर में करीब 2500 जीव जाति के वनस्पति देखी जा सकती है। उसमें भी दस प्रतिशत इन्डो-मलेष्या के जंगलों में पाया जाता है।

### चोला जंगलों की खास वनस्पतियाँ

“पुकारा (Elaaco Carpus Munroil, Mart), कल्लवी (Meliosma Simplicifolica, Roxb), जामुन (Eugenia Jambalana, Lam) लासियन्तुस (Lasianthus CSP), कारांज्जिली (Callenia Excclsa wight), नाकचेंपकम् (Mesua Ferrea, Lin), पुत्रा (Calophillum wightinum T. Ard), पतंकल्ली (Pocciloneuron indicum, Bed) आदि।”<sup>4</sup>

---

1. हरितचिंतकल - एम.के. प्रसाद - पृ. 11

2. वही

3. वही

4. Wikipedia.org/wiki/silent - valley - National Park



### चोला जंगलों के खास पेड़

आट्टंकी (*Gordonia Obtusa Wall*), कीरिन्ति (*Maesa Pero Hetiana, Wall*), मुक्कण्णन पेरु (*Allophullus Sematum, Blume*), वट्टला (*Macaranga roxburghi, wight*), सीसाल पीनिया (*Caesal Diniapp*), मुल्लनकारा (*Canthium didimum, Roxb*), काट्टुनीरुरी (*Bryn ia rhamnoides, muel*)”<sup>1</sup>

“कुन्ति नदी और भवानी नदी का जलस्रोत सैलंटवाली चोला जंगल है। जंगल विभाग के अनुसार इन दोनों नदियों के बचाव के लिए इस जंगल का संरक्षण बेहद ज़रूरी है।”<sup>2</sup>

### चोला जंगलों के खास जीवि वर्ग

बंदर (*Muccaca radiota*), शिकल बंदर (*Maccaca Silenus*), काला बंदर (*Prshytis Johni*), बाघ (*Pantheratigiris*), चीता (*Panthera Pardus*), जंगली बकरी (*Muntiacus Munjak*), पुल्लिवेरुक (*Viverro megaspilacivettina*) हाथी (*Elphas Maimus*), सियार (*Canis aureus*), जंगली सुअर (*Suscristatus*),

---

1. [Wikipedia.org/wiki/silent - valley - National Park](https://www.wikipedia.org/wiki/silent_valley_national_park)

2. हरित चिंतकल - एम.के. प्रसाद - पृ. 13

3. 'वंशनाश का सामना करनेवाला जानवर' - UCN Red Data Book

जंगली गिलहरी (*Ratuta Indica*) आदि है।”<sup>1</sup> इस प्रकार पारिस्थितिक महत्व की दृष्टि से सैलेंटवाली की अहमियत पूर्णतः आंकी नहीं जा सकती। “सौ से ज़्यादा ऑर्किड की प्रजातियाँ, तितली, 16 से ज़्यादा पक्षि प्रजातियाँ, 36 सस्तनि, 730 से ज़्यादा कीड़े, शिंकल बंदर जैसे अनेक विलुप्त प्रजातियों की एक मात्र सहारा है सैलेंटवाली।”<sup>2</sup> यह नित्यहरितवन एक ऐसा अनोखा एवं अनमोल जंगल है जहाँ मानव का हस्तक्षेप सबसे कम हुआ है।

सैलेंटवाली राष्ट्रीय उद्यान पालक्काड़ जिला के मण्णारक्काड़ इलाके के नज़दीक है। इसका विस्तार 90 स्क्वयर किलोमीटर है। 1847 में वनस्पज्ञि रोबर्ट वैट ने सैलेंटवाली को खोज निकाला था। शायद जंगलों को आम तौर पर मुखर करनेवाले झींगुरों के अभाव के कारण ही इसका नाम ‘सैलेंटवाली’ पड़ गया था। भारत नदी की पोषक नदी कुन्ति नदी यहाँ से लग-भग 1000 मी. ऊँचाई से गिरती है। 1920 में ही इस प्रपात पर बाँध बनाकर बिजली पैदा करने की संभावना पर चर्चा शुरू हुई थी। 1958 में इस परियोजना के लिए ज़रूरी तकनीकी जानकारी इकत्र करने की कार्यवाही शुरू हुई। तब बिजली मंत्री जाने माने समाजसेवी जज वी. आर. कृष्णय्यर थे। सात साल के बाद 17 करोड़ रुपये की लागत में

- 
1. [Wikipedia.org/wiki/silent valley - National Park](https://www.wikipedia.org/wiki/silent_valley_-_National_Park)
  2. [Wikipedia.org/wiki/silent valley - National Park](https://www.wikipedia.org/wiki/silent_valley_-_National_Park)

120 मेगावाट बिजली तैयार करनेवाली परियोजना केन्द्रीय जल विद्युत आयोग के सामने सौंप दी गई। 1973 में आयोग की सहमति से केरल विद्युत मण्डल (K.S.E.B) ने लागत में बढ़ोत्तरी की। 17 करोड़ से बढ़ाकर 25 करोड़ कर दिए गए। इडुक्की परियोजना का अंतिम दौर चल रहा था। बोर्ड की आर्थिक समस्याओं के कारण सैलेंटवाली परियोजना का काम आगे नहीं बढ़ सका।

1976 फरवरी को आपात्काल के दौरान इंदिरागाँधी ने इडुक्की परियोजना को राष्ट्र के लिए सौंप दिया। इसके बाद के.एस.ई.बी. ने आर्थिक दृष्टि से ज़्यादा फायदेमंद सैलेंटवाली परियोजना की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया। दक्षिण भारत के दूसरे राज्यों की तुलना में बिजली की उपलब्धी और उपभोग दोनों ही में केरल सबसे पीछे है। केरल का एक पिछड़ा हुआ जिला है पालक्काड। इस जिले में बिजली की कमी यहाँ के औसत आदमी को खल रही है। सैलेंटवाली परियोजना से यह उम्मीद किया जा रहा था कि ऊर्जा के क्षेत्र की असमानता खतम हो जाएगी। तथा कम से कम 10000 हेक्टेयर खेतों में सिंचाई हो सकेगी। 3000 से ज़्यादा लोगों को लंबी अवधि के लिए रोज़गार भी मिल जाएगा।

लेकिन वन-वन्यजीवि विभागों की ज़िम्मेदारी निभानेवाला केन्द्र कृषि मंत्रालय ने अनुमति नहीं दी। पश्चिम घाटी की परिस्थितिक समस्याओं के अध्ययन के लिए उपसमिति बनायी गयी। समिति की राय थी कि

परियोजना से जनित पारिस्थितिक आघातों की रिपोर्ट मिलने तक परियोजना का निर्माण स्थगित किया जाय।

के.एस.ई.बी. ने इसके खिलाफ कई दलीलें पेश की। बॉर्ड की राय थी कि पहले तो किसी ने इस परियोजना में कोई दिलचस्पी नहीं जताई थी। अब जैव विविधता की बात की जा रही है, बंदरों की बात की जाती है। यह बहस 'आदमी बनाम बंदर' (Man verses Monkeys) नाम से मशहूर है। उनका यही तर्क था कि परियोजना से सैलेंटवाली की कुल विस्तार से केवल 8.3 कि.मी. ही जलमग्न हो सकता है। आखिर इतना शोर शराबा क्यों? उनका यह भी दलील थी कि पालक्काड़ जैसे पिछड़े जिले के विकास के लिए वह परियोजना बेहद ज़रूरी है।

उन्होंने इस कटु सत्य से मुँह फेर लिया था कि "दुनिया से विलुप्त संरक्षित जीवियों में से पाँच सैलेंटवाली में मौजूद है। सैलेंटवाली को बचाना महज़ पालक्काड़ जिला, केरल व, भारत का ही नहीं बल्कि इस संसार का कर्तव्य है।"<sup>1</sup> गौरतलब है कि "स्टीवनग्रीन (न्यूयॉर्क जन्तुविज्ञान संघ) और करेनमिनकोव्स्की द्वारा शिंकल बंदरों के बारे में तथा रॉमुलस विट्टेकर और जेरॉलड मार्टिन ने साँपों के बारे में जो शोध किया वही सैलेंटवाली से जुड़ी गंभीर चर्चाएँ है।"<sup>2</sup>

---

1. हरित चिंतकल - एम.के. प्रसाद - पृ. 28

2. हरित निरूपणम मलयालत्तिल - जी मधुसूदनन - पृ. XXVI

छंद पश्चिमी वैज्ञानिकों ने नीलगिरी देखने के बाद इसकी खासियतों पर बाँबे नाचुरल सोसाइटी को लिखा था। लेकिन इन सबसे केरलीय अनभिज्ञ थे। केरल के नाचुरल हिस्टरी सोसाइटी के डॉ. सतीशचन्द्रन नायर ने सैलेंटवाली संबन्धी अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया। नायर ने जो तस्वीरें ली थी, सबकी केरल की कई जगहों में प्रदर्शनी हुई। इस संदर्भ में केरल वन अनुसंधान के डॉ. एस. विजयन का नज़रिये की भी काफी अहमियत थी। उनके अनुसार “सैलेंटवाली को एक बयॉस्फियर रिसर्व के रूप में बचाये रखने की ज़रूरत थी।”<sup>1</sup> डॉ. सलीम अलि एक लंबे अंतराल के बाद सैलेंटवाली पहुँचे और उनकी राय थी कि “सैलेंटवाली इस पृथ्वी के सबसे संपन्न एवं उसी हद तक खतरे का सामना करनेवाली एक ऐसी आवास व्यवस्था के लिए उत्तम मिसाल है जिसके बारे में शोध एवं पढ़ाई तो ‘न’ के बराबर है।”<sup>2</sup>

‘केरला साहित्य परिषद’ ने भी सैलेंटवाली संरक्षण आंदोलन में जोशीली भागीदारी की। प्रो. एम.के. प्रसाद, डॉ. एम.पी. परमेश्वरन सरीखे दिग्गजों ने परिषद के सदस्यों में एकमत साबित करने में अहम भूमिका निभाई। 1978 अक्टूबर में रुस के अष्वबाद में आयोजित प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के अंतराष्ट्रीय संरक्षण समिति (International Union

---

1. हरित निरूपणम मलयालत्तिल - जी मधुसूदनन - पृ. XXVI

2. वही - पृ. 11

for Conservation of Nature and Natural Resources) की बैठक में सैलेंटवाली तथा यहाँ के शिंकल बंदरों के संरक्षण का सुझाव पारित किया गया। गौरतलब है कि “1961-1963 में संसार में हज़ारों की तादाद में शिंकल बंदर मौजूद थे। मगर 1975 में इनकी संख्या घटकर 500 में सिमट गयी। उनके वंश की बढ़ोत्तरी के लिए कम से कम 130 स्क्वयर कि.मी. नित्य हरित जंगल की ज़रूरत है।”<sup>1</sup> कहने की ज़रूरत नहीं कि अगर सैलेंटवाली नहीं रही तो शिंकल बंदर का नामो-निशान तक इस दुनिया में नहीं रहेगा।

केरल विधान सभा में वामपंथी व दक्षिणपंथी पार्टियों ने मिलकर परियोजना को जल्द से जल्द शुरू करने का प्रस्ताव पारित किया। 1978 में सभी पार्टियों के एक संघ ने प्रधानमंत्री मोरार्जी देशाई से मुलाकात की। मुलाकात के दौरान परियोजना जल्द लागू करने का निवेदन प्रस्तुत किया। उन्होंने मुख्यमंत्री को लिखे पत्र के ज़रिए परियोजना के लिए अपनी सहमति जाहिर की। परियोजना को स्थगित करने के लिए ‘फ्रेंड्स ऑफ ट्रीस’ संस्था के जॉसफ जॉण ने अदालत में मुकदमा दायर किया। उनके साथ कालिकट के ‘सेव सैलेंटवाली संघ’ ने भी मुकदमे में भागीदार होने का फैसला किया। 1979 में अदालत ने परियोजना का निर्माण स्थगित

---

1. हरित चिंतकल - एम.के. प्रसाद - पृ. 31

कर दिया। अदालत के नीति-निर्णय के इतिहास में यह महत्वपूर्ण फैसला सदा याद किया जाएगा।

अक्तूबर 21 को वर्ल्ड वैल्ड लैफ फ्रण्ड; परिषद एवं केरल नाचुरल हिस्टरी सोसाइटी ने मिलकर केरल सरकार की तरफ पारित सैलेंटवाली संरक्षण अधिनियम पर चर्चा के लिए एक समारोह का आयोजन किया। लेकिन सरकार ने अदालत के ज़रिए इस पर रोक लगा दी। इस पर कड़ी भाषा में ऐतराज़ ज़ाहिर किया गया। हिन्दू अखबार ने परिस्थितिवादियों के इस अभियान को पहले से आखिर तक सराहनीय सहयोग दिया था। मलयालम अखबार 'केरल कौमुदी' ने भी सहयोग दिया। अन्य अखबारों ने चुप्पी साध ली।

प्रकृति संरक्षण समिति का गठन हुआ। इसके लिए कवि एन.वी. कृष्णवारियर ने ही पहल की थी। एन.वी., सुगतकुमारी, ओ.एन.वी. कुरुप और अय्यप्प पणिक्कर आदि श्रेष्ठ कवि गण इसके प्रारंभिक सदस्य थे। समिति का नारा था 'प्रकृति के संरक्षण के लिए, जीवन को बरकरार रखने के लिए।'<sup>1</sup> पृथ्वी का संरक्षण करनेवाले दो हाथ उसके ऊपर आलेखित था "नमः पृथिवै।" यही समिति की चित्रमुद्रा थी। अथर्ववेद के भूमि सूक्त को समिति की आदर्शरेखा मानी गई।

---

1. हरित निरूपणम मलयालत्तिल - जी. मधुसूदनन - पृ. XXVIII

“यत्ते भूमे विखनामि  
 क्षिप्र तदपि रोहतु  
 मा ते मर्मा विमृग्वरि  
 मा ते हृदयमर्पिपम”<sup>1</sup>

(है पृथ्वी में जो कुछ भी तुझसे ले लेता हूँ वह सब कुछ पुनः अंकुरित हों। है पावने तुम्हारे मर्म को, हृदय को न भेद करें)

1980 जून 6 को तिरुवनन्तपुरम के वी.जे.टी. हाल में समिति का पहला समारोह आयोजित किया गया। तिरुवनन्तपुरम समारोह के बाद अन्य नगरों और गाँवों में आयोजित कवि सम्मेलनों में ज़्यादातर प्रकृति कविताओं की ओर तवज्जुह दी गयी थी। मिसाल के तौर पर ओ.एन.वी. के ‘भूमिक्कोरु चरमगीतम’ (पृथ्वी के लिए एक मृत्युगीत), काडेविडे मक्कळे (बच्चों जंगल किधर है), सुगतकुमारी के मरत्तिन्नु स्तुति (पेड़ों को स्तुति), कडम्मनिट्टा की ‘कुज्जे मुलप्पाल कुडिक्करुत (मुन्ना, माँ का दूध नहीं पीना) सरीखी कविताएँ। कइयों ने नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत किया, तस्वीरों और कार्टूणों के माध्यम से भी प्रतिरोध दर्ज किया गया।

---

1. अथर्ववेद - Verse - 35

2. Judge veeramanthri focuses on Hindu contribution to environment protection [www. asiantribune.com](http://www.asiantribune.com)



इसमें भाग न लेनेवाली मशहूर कवियों में एक थी बालामणियम्मा। उन्होंने कहा था - “मलबार के पिछडेपन को दूर करने के लिए स्थानीय ऊर्जा उत्पादन की सख्त ज़रूरत है। इसलिए सैलेंटवाली परियोजना का साथ देती हूँ।”<sup>1</sup> लेकिन इसके खिलाफ मशहूर कवि ओलप्पमण्णा ने कहा था कि “सैलेंटवाली में अब काटने के लिए पेड़ बाकी नहीं रह गया है। कुन्ती नदी तुम्हारी मृत्यु हो गयी है।”<sup>2</sup>

बषीर, ओ.वी. विजयन और एस.के. पोट्टेक्काड सरीखे दिग्गजों उपन्यासकारों ने भी इस आंदोलन का समर्थन किया। बषीर के शब्दों में “जिस जंग में पराजय सुनिश्चित है, उसमें एक सैनिक के तौर पर मेरी भी भागीदारी होगी।”<sup>3</sup> पी. गोविन्दपिल्ला, एस. शर्मा, सीतानारायण पिल्ला, डॉ. पी.के. वारियर, के.वि. सुरेन्द्रनाथ और वरक्कला राधाकृष्णन जैसे राजनीतिज्ञ भी इस आंदोलन में शरीक हुए।

1972 में स्टॉकहॉम में आयोजित अन्ताराष्ट्र परिस्थिति सम्मेलन में भाग लेनेवाले एकमात्र सत्ताधारी श्रीमति गाँधी थी। प्रकृति पाठ से सराबोर जो खत पिता ने बेटी को लिखे वह फिसूल नहीं रहा। 1980 जनवरी में सत्ता पाने पर उन्होंने जिन फैसलों को लागू किया उसमें

- 
1. हरितनिरूपणम मलयालत्तिल - जी. मधुसूदनन - पृ. XXX
  2. वही
  3. वही

सैलेंटवाली परियोजना पर रोक भी शामिल थी। पहले उन्होंने तात्कालिक तौर पर उसका निर्माण स्थगित किया। फिर उसे हमेशा के लिए खत्म कर दिया।

संक्षेप में यह आन्दोलन ऊर्जा के दावेदारों व प्रकृतिप्रेमियों का आपसी संग्राम नहीं था बल्कि ऊर्जा के वास्ते एक विराट प्राकृतिक 'जीन कोश' के बलिदान के खिलाफ, जानलेवा संघर्ष था, आगामी पीढ़ी के नाम।

### उत्तर भारत का चिपको आंदोलन

अस्सी के दशक में 'चिपको' आंदोलन का प्रसार एक राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक घटना रहा था। उत्तराखण्ड के चमोली तथा उत्तर काशी, पिथौरगढ़, अलमोड़ा, नैनिताल, देहरादून, टिहरी तथा पौड़ी जिलों में पेड़ों को बचानेवाला 'चिपको आंदोलन' हर सफल आंदोलन की तरह एक स्वतः स्फूर्त आंदोलन रहा। सत्तर के दशक में प्रारंभ हुए यह आंदोलन अस्सी के दशक में ही व्यापक हो गया, और आज भी ज़िन्दा एवं सक्रिय है। इसकी शुरुआत महिलाओं ने ही की थी। उत्तर प्रदेश के पर्वतीय जिलों में जहाँ इस आंदोलन की शुरुआत हुई, 5 अप्रैल 1981 को 1000 मीटर से अधिक ऊँचाई के क्षेत्र में हरे पेड़ की औद्योगिक कटाई पर पाबंदी लगी जो आज ज़ारी है। केन्द्र सरकार ने सभी राज्यों को निर्देश दिया कि वे

अपनी कार्य-योजनाओं में इसे शामिल करें। सुंदरलाल बहुगुणा की घोषणा थी कि “जंगल की मुख्य पैदावार मिट्टी, पानी और प्राणवायु है।”<sup>1</sup> चिपको आंदोलन के प्रभाव के चलते आम तौर पर पूरे देश में और मुख्य रूप से पर्वतीय इलाकों में वनों की कटाई में कटौती हुई है और वन संरक्षण व वन रोपण को वरीयता मिल गई है।

आम तौर पर आंदोलन का मतलब हलचल और तोड़ फोड़ है। सुंदरलाल बहुगुणा का “चिपको आंदोलन महात्मा गाँधी के सपनों की सामाजिक क्रांति का आंदोलन है।”<sup>2</sup> इसके दो रूप हैं - संघर्ष और रचना। यह भूमि उपयोग की गलत नीतियों के खिलाफ संघर्षरत है। यह आंदोलन मिट्टी और पानी को सूखने और सोखनेवाले पेड़ों को लगाने व खनन से धरती को बंजर बनाने के खिलाफ भी आवाज़ उठाता है। मिट्टी तथा पानी के संरक्षण के लिए उपयुक्त खाद्य चारा व पेड़ लगाकर धरती से गुम होनेवाली हरियाली को पुनः स्थापित करने में लगा है। इस प्रकार के कई प्रयास दुनिया भर में हो रहे हैं। मिसाल के तौर पर कश्मीर के सोनामुल्ला बनिहाली जिन्होंने सार्वजनिक रूप से हल को आग लगाकर पहाड़ों में भूक्षरण करनेवाली मक्का की खेती के स्थान पर अखोट और अन्य वृक्षों की खेती के द्वारा अपने क्षेत्र को खुशहाल बनाया है। बहुगुणा

---

1. धरती की पुकार - सुन्दरलाल बहुगुणा - पृ. 37

2. वही

के मुताबिक “विश्व के रहे-सहे वनों को बचाने की ‘चिपको’ जैसे जन आन्दोलन की माँग अब अरण्य - रुदन मात्र नहीं रह गया है, वह तो मानव अस्तित्व के लिए मानव की सशक्त माँग बन गई है।”<sup>1</sup>

इस आंदोलन का न कोई संगठन है और न संस्था, फिर भी हवा की तरह यह सारे देश में फैल रहा है। जैसे बताया गया इस आंदोलन की शुरुआत महिलाओं ने की थी। पहाड़ की महिलाओं का जीवन पूर्णतः वनों पर आधारित है। इन्होंने कई बार वनों के विनाश की पीड़ा को सहा था। अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में काम आनेवाले वृक्षों से उनका विशेष लगाव होना स्वाभाविक है। परिणामस्वरूप पहली बार ‘बछेड’ नामक पहाड़ी गाँव ने प्रतिरोध की आवाज़ बुलन्द की। पहले वन विभाग की आज्ञा पर विभाग के अफसर पेड़ों को काटने के पहले नंबर लगाने आये। महिलाओं को जब इसकी खबर मिली तो एक बहादुर एवं दिलेर महिला कलावति के नेतृत्व में 200 महिलाओं ने वन विभाग के कर्मचारियों को एक भी पेड़ पर हाथ लगाने नहीं दिया और कहा कि “सूखा वन बूढ़ा पेड़ भी हमारे लिए ज़रूरी है, जैसे हर घर के लिए बूढ़ा आदमी ज़रूरी है।”<sup>2</sup> उसके बाद इसी गाँव में पहले पहल महिला मण्डल दल का गठन हुआ।

सलना (गाँव) की महिला मण्डल के सदस्य बौना देवी के अनुसार “चिपको आन्दोलन के कारण जागरूकता आई। पहले हम जानवरों

---

1. धरती की पुकार - सुंदरलाल बहुगुणा - पृ. 33

2. वही - पृ. 32

की तरह लोगों को देखकर भाग जाया करते थे। हमने अपने गाँव की भूमि पर सुरक्षा हेतु चारों तरफ दीवार खड़ी की, जिससे कई लाभ हुए, मसलन (1) जंगली जानवरों से फसल की रक्षा, (2) फल (अखरोट, शहतूत, संतरा) मिलने लगे (3) रात में पहरेदारी का सिलसिला खत्म (4) अनाज में बढ़ोत्तरी (5) पशुओं के खेत चर जाने से होनेवाले झगड़ों का अन्त आदि।”<sup>1</sup> यहाँ पानी की किल्लत की समस्या ज़ोरों पर है। गाँव में बच्चों का स्कूल 6 कि.मी. दूर है। इसलिए वर्षा में स्कूल जाना नामुमकिन सा है। यातायात व्यवस्था के अभाव में फसल (सेब 60 पैसे) कम कीमतों में बिकती है। बर्फ़ ज़्यादा पड़ने से अनाज का नुकसान हो जाता है। भूक्षरण की समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है।

जागेश्वर शिक्षण संस्थान के मंत्री आनन्द सिंह विष्ट के अनुसार पहाड़ का विकास यहाँ के जन-जागरण पर निर्भर है। अब तक सरकार ने कुछ नहीं किया। हमारा नारा था ‘पलायन रोको - रोज़गार दो।’ चिपको आंदोलन से जुड़े महेन्द्र के शब्दों में “हम पहले समृद्ध थे, हमें मात्र तेल और नमक खरीदना पड़ता था। चीन-भारत के युद्ध से पहाड़ी लोग फौज से जीने लगे, तब से लोग पैसा कमाने तराई की तरफ पलायन करने लगे। उन्होंने यह जान भी लिया कि विकास क्या है आज पहाड़ का युवा

---

1. पर्यावरण : विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 71

वर्ग तराई की ओर भाग चला है। अब तक पहाड़ों पर सड़क बनाने हेतु 7 करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं। जबकि यह सड़क दो करोड़ रुपये में ही बन सकती थी। पहले झरनों से लकड़ी नीचे जाती थी। अब सड़कों से जाने लगी और जंगल उजड़ने लगे।”<sup>1</sup> पलायन के कारण गाँव में केवल महिलाएँ ही बची है। महिलाएँ रोज़मर्रा के साधन जुड़ाने के लिए वनों से जुड़ी है। चिपको आंदोलन से जुड़े हज़ारों नर-नारियों की आवाज़ों का प्रतिनिधित्व करनेवाले ये लोग उत्तराखण्ड की एक ताज़ा-तरीन छवि हमें देते हैं। चिपको का नारा है-

“क्या है जंगल के उपकार ?

मिट्टी, पानी और बयार।

मिट्टी, पानी और बयार,

ज़िन्दा रहने के आधार।”<sup>2</sup>

यह नारा सही मायने में मानव जीवन की आधारभूत कसौटियों को परिलक्षित करता है। पहले भी हमारे साम्राज्यवादी शासकों ने कानून के तहत हमारी वन संपदा को लूट लिया था। 1865 में वनवासियों के लिए बनाये गये कानून के तहत अवाम के सामाजिक हितों को मदेनज़र पहली बार जंगलों पर प्रतिबंध लगाया गया। 1894 में सरकार ने अपनी वन नीति में संशोधन करके पांचवे अनुच्छेद में लिखा था कि घटिया

---

1. पर्यावरण : विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 71

2. वही

इमारती लकड़ी, जलावन या चारा देनेवाला जंगल स्थानीय निवासियों को अपने हित में इस्तेमाल करने का अधिकार होगा। इसके खिलाफ उभरे संघर्ष को कुचला गया जिसमें सत्रह व्यक्ति शहीद हुए तथा 80 लोग गिरफ्तार हो गये।

आज़ादी के बाद भारत सरकार की पहली नयी वन-नीति 1952 में जारी की गई। यह नीति भी साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों के कानूनों की अगली कड़ी थी। जिसके अनुसार वनों के अन्दर या आसपास रहनेवाली आबादी को अहमियत न देकर राष्ट्रीय हित को अहम माना गया। इसमें वन संपदा की लूट के वास्ते सड़क बनाने, सिंचाई के साधन, विद्युत योजनाओं तथा बड़े-बड़े कारखानों के लिए जंगलों को उजाड़ देना तो राष्ट्रीय हित था, पर सरकार द्वारा घोषित बिना किसी सघन जंगल (इलाके) पर खेती कर लेना अवैध कब्ज़ा माना गया। इसप्रकार हमारी सरकार ने भी वनवासियों के साथ इस तरह पेश आई कि वे ही वनों के जानी दुश्मन हो।

राष्ट्रीय कृषि आयोग ने तो अपनी रपट में यहाँ तक कहा कि “ग्रामीण आबादी को मुफ्त में वन उत्पादन उपलब्ध कराने तथा उनको अनेक अधिकार और सुविधाएँ देने से वनों का विनाश हो गया है, इसलिए इस नीति को बदलने की ज़रूरत है। ग्रामीण आबादी ने वनों को बचाये रखने तथा इसके पुनरुद्धार करने में भी कोई विशेष योगदान नहीं दिया है। वनों के अतिदोहन के बाद इनसे वे ईमानदारी की आशा नहीं रखेंगे। हम

उन्हें फिर से मुफ्त में वनोत्पादन देकर कोई दूसरी मुसीबत मोल लेंगे।”<sup>1</sup>  
इसमें आयोग की गरीब विरोधी मंशा साफ तौर पर ज़ाहिर होती है।

सरकार की सारी योजनाएँ राजनीतिज्ञों - नौकरशाहों, ठेकेदारों, उद्योगपतियों को ही विशेष लाभ पहुँचाती हैं, आम लोगों की तो महज़ इसको पूरा करने के लिए बलि चढ़ाई जाती है। चिपको आंदोलन जैसा रचनात्मक संघर्ष ही इस प्रभुत्ववादी राज्य को लोकोन्मुखी बना सकता है। चिपको आंदोलन एक ऐतिहासिक पुनरावृत्ति है। जोधपुर के महाराजा ने अपने नये महल के वास्ते जलावन लाने का आदेश दिया था। अमृता देवी नामक एक महिला की आस्था खेजडी के पेड़ों पर थी, क्योंकि ये पेड़ रेगिस्तानी इलाकों में रेत के तूफानों को रोकते हैं तथा ये शुद्ध प्राणवायु व पानी की उपलब्धी में मददगार है। इससे जानवरों के लिए चारा भी मिलता है तथा भू-क्षरण भी नहीं होता है।

महाराज के आदेशपालकों को अमृता देवी ने रोक दिया। आज्ञाकर्ताओं ने उसे आर्थिक दंड देना चाहा। लेकिन उसे नामंज़ूर करते हुए अमृता देवी ने कहा कि “पेड़ हमारे भाई बहन हैं, अतः मैं अपनी जान देकर भी इनकी रक्षा करूँगी।”<sup>2</sup> यों कहते हुए अमृता देवी पेड़ से चिपक

---

1. पर्यावरण : विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 72

2. वही - पृ. 74



गई। राजा के चाकरों ने उसे काट दिया। इस तरह 363 गाँव वालों को शहीद कर दिया गया।

इस जानलेवा आंदोलन से प्रेरणा लेकर चमोली जिले के बछेड़ गाँव में पहली बार 200 महिलाओं ने पेड़ों से चिपक कर 'चिपको आन्दोलन' की शुरुआत की थी। चिपको आन्दोलन का फैलाव काफी आकर्षक ढंग से हुआ था। एक गाँव से महिलाएँ, बच्चे तथा पुरुष सब ढोल बजाकर गाना गाते जैसे। "यह जंगल हमारे माँ का घर है, हम पूरी जोर लगाकर इसकी रक्षा करेंगे"<sup>1</sup> तथा नारे लगाते दूसरे गाँव जाते हैं। वहाँ बैठक करके जागरूकता लाते हैं, फिर पेड़ों का रोपण करते हैं और अगले गाँव की ओर कदम बढ़ाते हैं।

आंदोलन के दो प्रखर नेता सुन्दरलाल बहुगुण और चण्डी प्रसाद है। बहुगुणा ने हिमालय के जंगलों के व्यावसायिक कटान पर रोक लगाने की माँग की है, जबकि दूसरे चण्डीप्रसाद भट्ट वनों के संवर्धन की माँग कर रहे हैं। बहुगुणा के शब्दों में "हिमालय क्षेत्र में वनों की समाप्ति का कारण औद्योगीकरण से पूर्व की खेतिहर आर्थिक व्यवस्था हेतु व्यावसायिक कटान है।"<sup>2</sup> भट्ट के अनुसार "सिर्फ ग्रामीण मांगों की भूमिका के कारण ही वनों की समाप्ति हुई है, यह कोशिश की जानी चाहिए कि उनकी मांग

---

1. पर्यावरण : विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 75

2. वही

इस तरीके से पूरी की जाये कि यह क्षति कम हो। ग्रामीण जनता को इस तरह से संगठित करने की कोशिश होनी चाहिए, ताकि वन-संपदा को पुनः स्थापित किया जा सके तथा वन पर आधारित लघु उद्योगों को बढ़ावा दिया जा सके।”<sup>1</sup> इससे वनवासियों की गरीबी भी दूर हो जाएगी।

इस आंदोलन की एक मुख्य घटना 30 मई, 1981 को घटित हुई। कश्मीर - कोहिमा चिपको पदयात्रा जिसके दौरान पदयात्रियों ने इस संदेश को जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश दार्जिलिंग, सिक्किम, अरुणाचल, असम और नागालैंड के अलावा नेपाल और भूटान तक पैदल यात्रा कर फैलाया।

8 सितंबर 1981 को चिपको आंदोलन द्वारा सुदूर उत्तर से सुदूर दक्षिण में कर्नाटक के सिरसी क्षेत्र में ‘अप्पिको’ के नाम से उभर आया और दक्षिण में केरल के वायनाड, कर्नाटक के कई जिलों और तमिलनाडु के नीलगिरी क्षेत्र में भी सक्रिय हो गया। यह आंदोलन भारत की सीमाओं को लांघकर पूर्व और पश्चिम के देशों में फैल गया है। इस संदर्भ में इसका भी उल्लेख करना ज़रूरी है कि स्विटज़रलैंड में अक्तूबर 1984 की वन पदयात्रा, आस्ट्रिया में डैन्यूब बाँध का विरोध मलेशिया के सारावाक क्षेत्रों में वनों को बचाने के लिए जन-आंदोलन आदि से भी चिपको आंदोलन प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित रहा था।

---

1. पर्यावरण विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 75

संक्षेप में सुंदरला बहुगुणा के शब्दों में “इस आंदोलन का न कोई संगठन है और न संस्था कह सकते हैं कि, फिर भी हवा की तरह यह सारे देश में फैल रहा है।”<sup>1</sup> अब पर्यावरण और विकास के संबन्ध में विश्व में चिंतन चल रहा है। ऐसे में पर्यावरण को मज़बूत करने के लिए एक सशक्त अवाज़ बन रही है।

### **भोपाल दुर्घटना से उत्पन्न प्रदूषण संबन्धी अवधारणा**

यह हकीकत है कि प्रगति की प्रतीक औद्योगिक क्रांति के घातक पहलुओं के बारे में बहुत कम लोग अभिज्ञ हैं। हम नहीं जानते कि औद्योगीकरण का स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ रहा है। न जाने कितने लोग औद्योगिक प्रदूषण के कारण तिल-तिलकर मरते हैं और कभी-कभी भोपाल जैसे छोटे-बड़े हादसों में हज़ारों की बलि चढ़ा दी जाती है।

इन रसायनों में कुछ बहुत ही ज़हरीले और घातक है। खेती में इन रसायनों को बड़ी तादाद में इस्तेमाल किया जाता है। जैविक रीति अख्तियार करें तो कृषि के लिए कीटनाशकों की कोई ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मसनोबु फुकुवोका के अनुसार “ये रसायन एवं रसायनिक खनिज खेती को बर्बाद करते हैं।”<sup>2</sup>

---

1. पर्यावरण : विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 74

2. The road back to nature regaining The Paradise Lost Environment Philosophy by Masanobu Fukuoka - P. 175

भोपाल दुर्घटना के पहले किसी को पता नहीं था कि किसी दुर्घटना से अगर रसायन वायुमंडल में रिस जाएँ तो नतीजा साफ है - मौत बड़े पैमाने पर मौत। भोपाल कांड मिथाइल आइसोसाइनेट (मिक) की ज़हरीली गैस के कारण हुआ था। लेकिन हज़ारों - हज़ारों रसायन ऐसे भी है जो मिक से सैकड़ों गुना खतरनाक हैं।

भोपाल में ढाई हज़ार लोगों के मारे जाने तक वैज्ञानिकों को भी नहीं मालूम था कि मिक किस हद तक खतरनाक है। स्वास्थ्य और पर्यावरण पर मिक के असर के बारे में उँगली भर शोध भी नहीं हुए है। 'मिक' तो अन्य के मुकाबले काफी सुरक्षित रसायन माना जाता है। जैसे उपर्युक्त बताया गया कि कल कारखानों में ऐसे कई रसायनों का उपयोग हो रहा है जिनकी घातकता मिक से कई गुना ज़्यादा है।

कारबाइड के सभी कारखानों का कर्मचारियों के स्वास्थ्य और पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। भोपाल हादसे के बाद कंपनी लगातार दावा कर रही थी कि वह हादसा महज़ एक दुर्घटना थी और बाकी मामलों में कंपनी का रिकार्ड एकदम बेदाग है। लेकिन यह सफेद झूठ है। नुकसान की भरपाई के लिए कंपनी पर सैकड़ों मुकदमे दायर किए गए हैं। ज़्यादातर मामलों में कंपनी को मुआवज़ा चुकाना पड़ा है।

1984 में दिसंबर 2 को भोपाल के यूनियन कार्बाईड कंपनी से मिथाइल आइसोसाइनेट के रिसने से करीब ढाई हज़ार लोगों की मृत्यु

हुई। इसके साथ अन्य जीव-जंतुओं व पर्यावरण पर जो बुरा असर पड़ा इस पर कोई चिंतित नहीं है, जिसकी भरपाई आज तक नहीं हुई। उसकी संभावना भी नामुमकिन है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान का एक जाँच दल 11 दिसंबर को भोपाल पहुँचा। उस दल को मालूम हो गया कि “गैस के असर से मवेशी महज़ तीन मिनट में मर गये थे। मवेशियों की आँखों से पानी बहा था और मुँह से झाग निकला था। गाभिन गायें अचानक जन गई थी। हल्के असर में आए पशुओं का दूध भी एकाएक सूख गया था और रोज़ 8 से 10 लीटर दूध देनेवाली गायें आधा लीटर दूध भी नहीं दे पा रही थी।”<sup>1</sup>

गैस के असर पडे इलाकों से पानी और मछली के नमूने लिए गए। भोपाल की झीलों व ताल तलैयों की मछलियों में रक्त की कमी पाई गई। काशी हिन्दु विद्यालय के वैज्ञानिकों का एक दल भी भोपाल गया था। अध्ययन के बाद वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी कि “बाग-बगीचों के फलों व सब्जियों का कम से कम एक मानसून बीतने तक इस्तेमाल न किया जाए। क्योंकि इन पौधों की आनुवंशिकी पर भी मिक का असर पडा है। इन वैज्ञानिकों ने सारी फसल उखाड डालने और ज़मीन को कम से कम एक साल तक परती रखने की सलाह भी दी थी।”<sup>2</sup>

---

1. हमारा पर्यावरण - संपादक अनुपम मिश्र - पृ. 168

2. वही - पृ. 168

भोपाल के यूनियन कार्बाइड कंपनी में आज भी कई टण रासायनिक कचरा पड़ा है। सी.एस.ई (Centre for Science and Environment) के अनुसार “फैक्टरी का क्षेत्र पूरी तरह से दूषित है। सभी मिट्टी के नमूनों में क्लोरिनेटेड बेन्सीन उसके अलावा लेड, मेरकुरी, आर्सेनिक और क्रोमियम की मात्रा कानड़ा के मापदण्ड से 164 गुना ज़्यादा है।”<sup>1</sup>

2009 दिसंबर एक में प्रकाशित दो अध्ययनों के बाद पता चलता है कि “कंपनी के भीतर और उसके इर्द-गिर्द की मिट्टी और पानी में ज़हरीले रासायनिक काफी तादाद में उपस्थित है।”<sup>2</sup> सी.एस.ई. के प्रयोगशाला अध्यक्ष श्री. चन्द्रभूषण ने बताया कि “फैक्टरी से तीन किलोमीटर की दूरी तक भूगर्भजल में ज़हर की उपस्थिति है।”<sup>3</sup>

दो दशकों के मणसूण ने रासायनिक पदार्थों को भूगर्भजल में मिला दिया है जिससे ये रसायन आस-पास के इलाकों के कुओं और नलकूपों में घुल गया है। कुओं और नल के पानी में ऐसे रासायनिकों के मिलने से कैंसर और जन्मजात बीमारियों के होने और बढ़ने की संभावना है। फ्रेंच लेखक डोमिनिक लापियर (Five to midnight in Bhopal)

---

1. <http://www.corpwatch.org/article.Php?id=15484>

2. <http://www.corpwatch.org/article.Php?id=15485> 2010/2010

3. <http://www.business-standard.com/india/news/CSE-Findings-Claim-toxic-contaminationwater.6/2/1010>

के लेखक) ने यहाँ के कुएँ से पानी पीने के बाद कहा कि “ऐसा लगा जैसे मेरा मुँह, गला और जुबान में आग लग गयी है, साथ ही साथ मेरे हाथ और पाँव में छाले पड़ गये है। ये अठारह वर्ष बाद की बद्हालत है जो यहाँ के लोग हर रोज़ भुगतते रहते हैं।”<sup>1</sup>

तमाम नयी पीढ़ी खतरनाक ज़हर के शिकार हो गयी हैं। यहाँ तक कि “लेड, मेरकुरी और ओरगानों क्लोरिन्स कंपनी के आसपास बसती महिलाओं के दूध में पाई गई है। फिल्हाल ये महिलाएँ अपने बच्चे को दूध पिलाने तक को कतराती हैं क्योंकि वे दूध के ज़रिए अपने बच्चों को ज़हर पिलाती है।”<sup>2</sup> मशहूर पारिस्थितिक संस्था ग्रीनपीस को समझ में आ गया कि “दूसरी जगहों से अलग होकर यहाँ मेरकुरी की मात्रा 6000000 गुना ज़्यादा दिखाई देती है।”<sup>3</sup> एक मेडिकल संघ ने चार हैंडपंपों से पानी लिया और जाँच से पता चला कि “तीनों नमूनों में क्लोरोफोम और कार्बण टेट्राक्लॉराइड का दर ई.पी.ए. (Environment Pollution Assessment) मापदण्डों से तीन गुना ज़्यादा है और कार्बण टेट्राक्लॉराइड की मात्रा 900-2400 से ज़्यादा है।”<sup>4</sup>

---

1. <http://www.bhopal.org/index.Php> id=104

2. <http://www.bhopal.org/index.Php> id=104

3. <http://www.bhopal.org/index.Php> id=104

4. <http://www.corpwatch.org/article.Php> - id=15485

एक शोध के अनुसार खतरनाक रसायन शरीर में एलर्जी पैदा करते हैं और शरीर के नाज़ुक अंगों जैसे आँख, कान, फेफड़े और मस्तिष्क पर बहुत बुरा असर डालते हैं। कभी-कभी इन्हें पूरी तरह बेकार तक कर डालते हैं। यहाँ के लोगों की आँखें पानीदार रहती है, फोटो फोबिया, कोर्णिया में ब्रण, आँखों में जलन आदि देखी जाती है। इसके अलावा साँस न ले पाना, खाँसी, सीने में दर्द। काफी तादाद में लोगों में श्वासनली में तपोदिक और काफी पलिमनरी एडेमा के शिकार भी हो रहे हैं। कई लोग मौत के घाट में उतर गए हैं।

गर्भवति महिलाओं पर इनका असर इस हद तक घातक हो सकता है कि भ्रूणों में स्थायी विकृतियाँ पैदा हो सकती है। ये विकृतियाँ कई पीढ़ियों तक बनी रह सकती है। एक शोध के अनुसार पता चलता है कि “फैक्टरी के आसपास की गर्भवती महिलाओं में गर्भपात बहुत बढ़ गया है। 865 स्त्रियों में 43% तक गर्भपात देखा गया है। फैक्टरी के आसपास यह 71% देखा गया है तो एक संतुलित आबादी में आम तौर पर 21% है।”<sup>1</sup> बच्चे-डायरिया, खाँसी; साँस लेने में तकलीफ, आँखों से पानी निकलना, कै आना आदि तकलीफों से पीड़ित है। इस क्षेत्र की आबादी में मानसिक सदमा भी काफी हद तक बढ़ गया है।

---

1. <http://www.trpmed.org/treh/voll10.htm>



फिलहाल सरकार ने इस खतरनाक ज़हरीले कचरे को ठिकाने लगाने का बीड़ा उठाया है। इसके लिए 1000 करोड़ रुपये खर्च करने का फैसला लिया गया है। इसके तहत कंपनी के भीतर के कचरे का शुद्धीकरण करके उसे गाड़ दिया जाएगा। हमारी दिली ख्वाहिश है कि ये काम जल्द से जल्द पूरा हो जाए।

संक्षेप में इस भोपाल हादसे का संसद में पारित आणव देयता बिल (Nuclear Liability bill) के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए इसके अनुसार बहुराष्ट्रीय निगम यहाँ निलय स्थापित करेंगे और उससे काफी मुनाफा कमाएँगे। लेकिन यहाँ होनेवाले किसी भी हादसे का कम से कम ज़िम्मेदारी कंपनी पर होगी। मतलब यह है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमारे संसाधनों, हमारी प्रकृति और हमारे मेहनती अवाम का शोषण करके मुनाफा कमाते रहेंगे लेकिन हादसा होने पर न्यायसंगत मुआवज़ा तक देने के लिए तैयार नहीं होंगे। भोपाल के निरीह लोगों का हश्र हमारे सामने हैं। उससे सरकार को सबक लेना चाहिए। लेकिन सरकार उनके साथ है। हमें उम्मीद नहीं है कि हमारी सरकार ऐसे बहुराष्ट्रीय निगमों के सामने घुटना न टेककर उन पर नियंत्रण रखने में कामियाब होंगी।

## वैश्वीकरण के संदर्भ में प्राकृतिक साधनों पर बहुराष्ट्रीय निगमों का दबदबा एवं पेयजल की समस्याएँ

बीसवीं शताब्दी का इतिहास यदि लिखा जाए तो तमाम प्रमुख घटनाओं में सर्वोपरी है - वैश्वीकरण। दरअसल ग्लोबलाइज़ेशन की प्रक्रिया 1971 से आरंभ होती है। अमरीका के राष्ट्रपति निक्सन को इसकी शुरुआत का श्रेय दिया जाता है। इसके बाद सन् 1973 में विश्व के बड़े देशों के नेता निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के बजाय चंचल विनिमय दर व्यवस्था पर एकमत हुए थे। फिर सन् 1974 में अमरीका ने अंतर्राष्ट्रीय पूँजी की गतिविधियों पर लगी सभी किस्म की पाबंदियाँ हटा दी। फिर नव्य उदारवाद की आँधी सारी दुनिया में चल निकली। जिसने सारी दुनिया की अर्थव्यवस्था पर दूरगामी प्रभाव छोड़े - “भूमण्डलीकरण महज आर्थिक प्रवृत्ति या घटना नहीं है। इसके कई रूप हैं, जो आपस में जुड़े हुए हैं भूमण्डलीकरण का कार्यक्षेत्र तकनीक, निवेश और निर्माण तक सीमित नहीं है, अपितु युद्ध, आक्रमण, नरसंहार और विनाश आदि आयामों तक फैला हुआ है।”<sup>1</sup>

उदारीकरण के दौर ने छोटे-छोटे देशों की अर्थव्यवस्था के दरवाज़े खुलवा दिये हैं। उनके नियामकों ने स्वतंत्र बाज़ार की आवश्यकता स्वीकार

---

1. भूमंडलीकरण के भँवर में भारत - कमलनयन काबरा - पृ. 46

कर ली है। सभी देश पूँजी की नियंत्रणकारी अंतसंरचना से तालमेल बैठाने की कोशिश कर रहे हैं। ग्लोबलैसेशन के पक्ष में अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति बिलक्लिंटन ने अपने भाषण में कहा है कि “पिछले 50 वर्षों में दुनिया ने जितने आर्थिक परिवर्तन का सामना किया है, वैसा इतिहास में कभी घटा नहीं।”<sup>1</sup> विकसित देशों के लिए स्वतंत्र बाज़ार एक नियामक है तो विकासशील व गरीब देशों के लिए नुकसानदेह है। यह मौजूदा गैरबराबरी को अधिक विकट और व्यापक बनाता है - “विश्व के शीर्ष के एक प्रतिशत लोगों की आय नीचे के 57 प्रतिशत लोगों के बराबर है और यह असमानता बढ़ रही है।”<sup>2</sup>

दूसरी ओर अफगानिस्तान, पाकिस्तान जैसे देशों और क़ूज़ मिसाइलें आसमान को चीर रही है, दुनिया को एक सुरक्षित स्थान बनाने के लिए परमाणु अस्त्रों के भण्डार खड़े किए जा रहे हैं, इकरारनामों पर दस्तखत की जा रही है, तेल की पाइप लाइने बिछाई जा रही है, प्राकृतिक संसाधनों की लूट मची है, पानी का निजीकरण किया जा रहा है और लोकतंत्रों को कमज़ोर किया जा रहा है।

विश्व स्तर पर, संप्रभुत्व सरकारों के अधिकार क्षेत्र के बाहर, व्यापार और वित्त की ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्होंने जटिल बहुस्तरीय कानूनों

- 
1. बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ भूमण्डलीकरण और स्त्री के प्रश्न - प्रभा खेतान
  2. नवसाम्राज्य केनये किस्से - अरुंधति रॉय - पृ. 215

और संधियों का जाल फैलाकर लूट की ऐसी ज़बरदस्त व्यवस्था बना दी है कि जिसके सामने उपनिवेशवाद की कोई कीमत नहीं रह पाई है - दैत्यकार हैवानियत से लैस ये बहुराष्ट्रीय निगम इन मुल्कों की बुनियादी अधिसंरचना, प्राकृतिक संसाधन, इनकी खनिज संपदा, इनके पानी, इनकी बिजली पर कब्ज़ा जमा रहे हैं। विश्व व्यापार संगठन, विश्वबैंक जैसे अन्य वित्तीय संस्थान मौजूदा समय में वास्तव में आर्थिक नीतियाँ और संसदीय कानून लिखकर दे रहे हैं।

नए संदर्भ में यह संकेत मिल रहे हैं कि हमारा देश भी आनेवाले वर्षों में कृषि तो दूर सामान्य पेयजल की उपलब्धता तक के लिए तरस सकता है - “आज दुनिया में 400 बिलियन डालर का पानी का उद्योग है और अगले कुछ वर्षों में 1000 बिलियन डालर तक पहुँच सकता है।”<sup>1</sup> और इसकी संभावना से ही अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आह्लादित हो रही हैं। यद्यपि अभी विश्व का मात्र दस फीसदी जल का औद्योगीकरण हुआ है, लेकिन हमारे देश में भी आर्थिक सुधारों और उदारीकरण के वर्तमान चरण में दुनिया की बड़ी-बड़ी कंपनियाँ पानी के निजीकरण के लिए नई और अनूठी योजनाओं के साथ बाज़ार में उतरने का इंतज़ार कर रही है। कुछ चर्चित अमेरिकी कंपनियाँ इस व्यवसाय में पैर रख चुकी है। फ्रांस के बिवांडी, स्वेज इंटरनाशनल, बाईवाटर और कुछ कोला कंपनियाँ भारत में

---

1. पर्यावरण संजीवनी - जनवरी 2008 - पृ. 15

पेयजल की नयी अर्थनीति के पक्ष में अपना झंडा ऊँचा उठा रही हैं। बिवांडी नामक फ्रांसीसी कंपनी विश्व भर में बोतलों के पानी के उपयोग से एक हज़ार करोड़ डालर की आमदनी हासिल करती है। इसी तरह एक बड़ी अंतरराष्ट्रीय कंपनी पिकटल की दुनिया की 80 से अधिक पानी की कंपनियों में निवेश है। इन कंपनियों का दूरगामी लक्ष्य निवेश को कई गुणा बढ़ाना है।

भारत के अनगिनत उपभोक्ता भी इन कंपनियों का लक्ष्य है। बोतल बंद पानी पहले 'मिनरल वाटर' के नाम पर बेचा जाता था। अमेरिका में सन् 2002 में इसका उद्योग 9 बिलियन डालर से अधिक पहुँच गया था। भारत में पार्ले बिस्लेरी के अध्यक्ष रमेश-चौहान के अनुसार "बोतलबंद पानी के बाज़ार कृत्रिम पेयों के बाज़ार को तीन सालों में पार करेगा।"<sup>1</sup>

यह सभी जानते हैं कि पेयजल की अंतरराष्ट्रीय कंपनियों के विश्वव्यापी वर्चस्व के सामने तीसरी दुनिया के पिछड़े या विकासशील देशों का टिकना संभव नहीं है। आनेवाले दिनों में असली राजनीतिक मुद्दा पानी के निजीकरण का हो सकता है। अमेरिकी "मूल्यां, जीवन-शैली और एकपक्षीय अलोकतांत्रिक दबदबे के प्रतीक और प्रचार है ये कोळा

---

1. जलयुद्धडल - वंदनाशिवा - पृ. 119

पेय। दुनिया भर के कोने-कोने में अपनी हाज़िरी दर्ज करने का दम भरते ये पेय सबकी सफलता के पर्याय बनते, सबके एक हैसियत पा जाने का एहसास देनेवाले व्यवसाय ही नहीं, विश्व के जन-जन की सोच पर लौह जंजीरे जकडते, उनको थोथे आनन्द के मायाजाल में कैद करते, उनको अमेरिका के स्वप्न के एक चित्त ग्राहक बनाते मादक हथियार भी है।”<sup>1</sup>

हमारे देश में पानी के स्रोतों, नदियों, झीलों और भूगर्भ जल के उपयोग को लेकर कृषकों और महानगरों में रहनेवालों के बीच संघर्ष पनप सकता है। यह विडंबना है कि हमारे देश में जंगलों के कटने, बढ़ते औद्योगीकरण, प्रदूषण और पर्यावरण के असंतुलन से जुड़े मुद्दों पर गंभीर रूप से ध्यान नहीं दिया जा रहा है। यह स्थिति तब है जब ज़मीन के भीतर के पानी के स्रोतों में कमी के अलावा घोर प्रदूषण बढ़ चुका है। भारत के गरीब लोग गंदापानी पीने के लिए अभिशप्त है। यही वजह है कि भारत के पूर्व राष्ट्रपति तक को कहना पड़ा - “जब भारत के उच्चवर्ग कृत्रिम पेय बर्बाद करते हैं तो गरीब चुल्लु भर गंदे पानी से खुद की प्यास बुझाते हैं।”<sup>2</sup>

योजना आयोग के अध्ययन के अनुसार “सन् 1952 में देश में 232 ऐसे गाँव थे जहाँ पानी के कोई स्रोत नहीं थे। सन् 2002 में ऐसे

---

1. ‘भूमण्डलीकरण के भँवर में’ - कमलनयन काबरा - पृ. 121

2. President Narayan's Republic Day Speech, 1999

गाँवों की संख्या 90000 थी और सन् 2003 में बिना पानीवाले गाँवों की संख्या एक लाख से ऊपर पहुँच गई है।”<sup>1</sup> यह तब है जब गत कई वर्षों से अच्छी वर्षा हो रही है। महानगरों में समृद्धि की चकाचौंध के पीछे यह तथ्य भुला दिया गया है कि आज भी करोड़ों लोग पीने के पानी के लिए छह से आठ मील दूर पैदल चलते हैं। पिछले पाँच वर्षों में देश के 17, 18 राज्यों में अकाल पड़ा था। छोटे-बड़े, पढ़े-लिखे और अनपढ़ सभी संकटग्रस्त हो गए थे। यह स्पष्ट संकेत मिल गया था कि यदि हम प्रकृति का ध्यान नहीं रखेंगे तो वह हमें किसी न किसी रूप में दंड अवश्य देगी।

ज़्यादा जलशोषण, और जलचक्रमण में रूकावट, अंत में पानी की किल्लत पैदा करेंगी। बाज़ार भी जल के बदले विकल्प के तौर पर और कोई चीज़ बेच नहीं सकता। अदला-बदली का विचार भी बाज़ारीकरण की युक्ति है। संक्षेप में विश्वबैंक के उपाध्यक्ष इस्माइल सेरागोलिडन के शब्दों में “इस सदी का युद्ध अगर तेल के लिए है तो अगली सदी का युद्ध पानी के लिए होगा।”<sup>2</sup>

### नर्मदा बचाओ आंदोलन

‘नर्मदा बचाओ आंदोलन’ नर्मदा नदी पर बन रहे बड़े बाँधों के खिलाफ लड़ा गया भारत का सबसे शक्तिशाली जन आंदोलन रहा है।

---

1. पर्यावरण संजीवनी 2008 - पृ. 16

2. ‘जलयुद्धडल’ - वंदनाशिवा - पृ. 7

बाबा आम्ते के शब्दों में “सामाजिक नीति के लिए की गयी तमाम लड़ाइयों में नर्मदा की लड़ाई देश के जन-जन के होंठों में चिरकाल तक बर्करार रहेगी।”<sup>1</sup> नर्मदा नदी के तट पर बसनेवाले लोग सदा ‘नर्मदे सर्वदे’ पुकारकर अपनी ज़िन्दगी बिताते थे। नदी से अलग होकर उनके लिए अपना कोई वजूद नहीं था। लेकिन उनके और नदी के बीच सर्दार सरोवर बाँध की परियोजना आ गई। इस बाँध के कारण करीब 250000 से ज़्यादा लोग बेघर हो जाएँगे। उन्हें सहारा देने के लिए कोई नहीं था। लेकिन 1986 में मशहूर पर्यावरणवादी व प्रकृति प्रेमी मेधा पटकर इनकी मदद के लिए आ गई। भारत सरकार द्वारा आयोजित सबसे बड़ी पर्यावरण विरोधी परियोजना के खिलाफ संघर्ष शुरू हो गया।

नर्मदा सागर बाँध उर्फ इंदिरा सागर बाँध का निर्माण 1985 में शुरू हुआ था। पहले पाँच सालों में इसकी प्रगति धीमी रही। वित्तीय और भूमि अधिग्रहण संबन्धी बवालोंने यह फंसा रहा। “92 मीटर ऊँचा नर्मदा सागर बाँध (समुद्री सतह से 262 मीटर ऊँचा) नर्मदा पर बनाए गए विभिन्न बड़े बाँधों में दूसरा सबसे ऊँचा बाँध है।”<sup>2</sup> “नर्मदा सागर बाँध का जलाशय भारत का सबसे बड़ा जलाशय होगा। एक लाख 23 हज़ार हेक्टेयर ज़मीन जलमग्न हो जाएगी।”<sup>3</sup> इसमें 41 हज़ार हेक्टर कीमती

---

1. [www.sulekha.com](http://www.sulekha.com)

2. डीटेल्ड प्रोजेक्ट रिपोर्ट ऑफ नर्मदा सागर प्रोजेक्ट खंड-1, जुलाई 1982, नर्मदा सागर प्रोजेक्ट, भोपाल

3. नर्मदा कंट्रोल अथॉरिटी वेबसाइट <<http://www.nca>



जंगल, 249 गाँव और हरसूद कस्बा शामिल है।”<sup>1</sup> परियोजना की विस्तृत रिपोर्ट के अनुसार नर्मदा सागर क्षेत्र में 1982 में ही 30 हज़ार हेक्टर ज़मीन की सिंचाई हो रही थी।”<sup>2</sup> नर्मदा सागर परियोजना का अध्ययन करनेवाले कल्पवृक्ष के आशीष कोठारी क्लॉड अल्वारेज और रमेश बिल्लौरे जैसे महारथियों ने वर्षों पहल चेतावनी दी थी कि नर्मदा पर बननेवाले सभी ऊँचे-ऊँचे बाँधों में नर्मदा सागर सर्वाधिक विनाशकारी होगा। 1987 में जून 24 में दिए गए पारिस्थितिक अनुमति पत्र में कहा गया है कि “पुनर्वास योजना, कमाण्ड एरिया का विकास, वनस्पतियों एवं जीव-जंतुओं का सर्वेक्षण, चारों ओर के इलाकों की संवहन क्षमता, भूस्खलन की संभावना, जन स्वास्थ्य आदि के बारे में परियोजना के अधिकारियों से जानकारी माँगी है। साथ में यह भी लिखा है कि फील्ड सर्वेक्षण की समाप्ति नहीं हुई है 1989 के आस-पास पूरी जानकारी मिल जाएगी।”<sup>3</sup> इससे साफ ज़ाहिर है कि इस हालत में अनुमति नहीं दी जा सकती थी।

बंगलौर स्थित इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस का अनुमान है कि “ओंकारेश्वर और नर्मदा सागर के समेकित कमांड एरिया का 40 फीसदी

---

1. नर्मदा कंट्रोल अथॉरिटी वेबसाइट ><http://www.nca>

2. हरित चिंतकल - प्रो. एम.के. प्रसाद - पृ. 91

3. के. श्रीधरन और एस वेदुला, ग्राउंडवाटर मॉडलिंग इन कंपोजिट कमांड एरिया ऑफ नर्मदा सागर एंड ओंकारेश्वर रिजर्वॉयर्स खंड 3, इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, बंगलौर

हिस्सा बुरी तरह जल जमाव का शिकार हो सकता है।”<sup>1</sup> रिपोर्ट में कहा गया था कि अगर इस कीमत को जोड़ लिया जाए तो यह परियोजना मुनाफे से ज़्यादा नुकसानदेह सिद्ध होगी। देहरादून स्थित वन्यजीव संस्थान ने जैव विविधता, वन्य जीव और विलक्षण औषधीय पौधों के भारी पैमाने पर विनाश की चेतावनी दी थी।

एन.बी.ए. (नर्मदा बचाओ आंदोलन) का मानना है कि बड़े बाँधों की अवधारणा ही पुरानी पड़ गयी है। इसका अभिमत यह है कि बिजली पैदा करने और पानी की व्यवस्था को बनाये रखने के कई लोकतांत्रिक स्थानीय, किफायती और पर्यावरण के अनुकूल अनेक तरीके हैं। N.B.A ने औपचारिक तौर पर माँग की कि नर्मदा घाटी की सारी परियोजनाओं को स्थगित किया जाए और संघर्षरत जनता ने घोषणा की कि डूबकर मरने की नौबत आ जाए तो भी हम अपने घर नहीं छोड़ेंगे। 1989 सितंबर को भारत के विभिन्न प्रदेशों से आए 50000 से ज़्यादा लोग घाटी में इकट्ठे हुए और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे विनाशकारी विकास के खिलाफ लड़ेंगे। ठीक एक साल के बाद 1990 सितंबर 28 को वे फिर इकट्ठा हुए। और अपनी प्रतिज्ञा दुहराई कि अपने घरों को छोड़ने से पानी में डूब मरना पसंद करेंगे। वे गा रहे थे-

---

1. नवसाम्राज्यवाद के नये किस्से - अरुंधति रॉय - पृ. 113

“नर्मदा देवी पर बेडियाँ मत डालो  
 नर्मदा हमारेलिए देवता है, माँ है,  
 नर्मदा हमें रोटी देती है  
 नर्मदा हमारी माता देवता।”<sup>1</sup>

लेकिन आदिवासी और अवाम के गाँवों में प्रशासन बुल्डोज़र के साथ घुस आया। वे गाँवों को नेस्तानाबुद करने पर आमादा थे। उन्होंने हैंड पंप को जाम कर दिया, स्कूलों को गिरा दिया। पेड़ों का नामो-निशान मिटा दिया ताकि लोगों को उनके घर से भी निकाला जा सके। उन्होंने हैंडपंप को गिट्टी कंक्रीट से भर दिया।

पूरी दुनिया में अहिंसक आंदोलनों को कुचला और दबाया जा रहा है। अगर हम उनका आदर और सम्मान नहीं करते हैं तो इसका मतलब है कि हम हिंसक रास्ता अख्तियार करनेवालों को तरजीह दे रहे हैं। अभी एन.बी.ए. सिर्फ बड़े बाँधों के खिलाफ ही नहीं जंग लड़ रहा है - “पूरी दुनिया को भारत के द्वारा दिए गए एक नायाब तोहफे ‘अहिंसक प्रतिरोध को जीवित रखने के लिए लड़ रहा है। आप उसे अहिंसा बचाओ आंदोलन कह सकते हैं।”<sup>2</sup>

---

1. कावु तीडल्ले - सुगतकुमारी - पृ. 39

2. नवसाम्राज्यवाद के नये किस्से - अरुंधति रॉय - पृ. 115

सन् 1990 के क्रिस्मस का दिन-नदी के लिए अपना जीवन बलिदान करने तैयार सात लोगों का 'आत्महत्या संघ' आगे जा रहा है। उसका पीछा करते हुए 6000 स्त्री पुरुष बिस्तर भांडे सब कुछ लेकर 100 से ज़्यादा किलोमीटर पैदल चले थे। अहिंसा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखाने हर एक ने अपने दोनों हाथों को बाँध दिया था। ऐसी हालत में भी उन्होंने एक एक करके पुलिस के प्रतिबंध को तोड़ दिया। संग्राम जारी रहा। आखिर 1991 जनवरी सात को आत्महत्या संघ ने आमरण अनशन की घोषणा की। पहली बार भयबीत विश्वबैंक ने सर्दार सरोवर परियोजना पर पुनः विचार करने की घोषणा की। विश्वबैंक के इतिहास में यह पहली घटना थी।

विश्वबैंक ने 1991 में ब्राडफोर्ड मोर्स की अध्यक्षता में एक जाँच समिति की नियुक्ति की। उन्होंने बताया कि इस परियोजना से पीछे हटने और पुनःविचिंतन करना ही बैंक के लिए बेहतर कदम होगा। आखिर विश्व बैंक को सार्वजनिक तौर पर बे आबरु होकर सरदार सरोवर परियोजना से हाथ खींचना पड़ा था।

---

1. मोर्स आण्ड बेर्गर, सर्दार सरोवर - लेटर टु द प्रेसिडेन्ट - पृ. XXI, XVI, XXIV, XXV

गुजरात सरकार ने परियोजना को आगे बढ़ाने की घोषणा की। 1993 में नदी में पानी बढ़ने पर मणिबेली के अनगिनत परिवारों ने अपने ही घरों में रहने का निर्णय लिया। मासूम बच्चों के साथ पेड़ों का आलिंगन करते हुए वे अडिग खड़े रहे। हिले तक नहीं। एन.बी.ए. की तरफ से घोषणा की गई कि अगर इस परियोजना पर सरकार पुनः विचिंतन के लिए तैयार है तो एन.बी.ए. के कार्यकर्ता बाँध के पानी में डूबकर मर जाएंगे। एन.बी.ए. ने 'जलसमाधी, राली जैसे संग्राम के अनेक नवीन तरीके अपनाए।

केन्द्र सरकार ने अगस्त पाँच को सरदार सरोवर परियोजना पर पुनःविचिंतन के लिए एफ.एम.जी. को नियुक्त किया। लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ा। 1994 मई में सरदार सरोवर बाँध की उपलब्धियों की चुनौती देते हुए सर्वोच्च न्यायालय में रिट हर्जी दायर की गई। उस मणसूण बाँध में पानी की दर बढ़ने से उसकी निचले सतह की कंक्रीट और चट्टान के उखड़ने से 65 मी. विस्तार का सुराख बन गया था। नदी तट की पवरहौस पानी में डूब गयी। सारे नुकसान को सरकार ने महीनों तक गुप्त रखा। इस संदर्भ में पूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी देशायी के एक भाषण का अंश बहुत ही समीचीन है। पोग बाँध के निर्माण के अवसर पर एक सम्मेलन में उन्होंने बताया था - "बाँध के निर्माण के बाद हम आपसे विनती करेंगे कि आप अपने घर छोड़कर जाएँ। अगर तुम लोग जाएँ तो तुम्हारे लिए बेहतर

होगा नहीं तो बाँध के पानी से तुम्हें डुबोकर मार देंगे।”<sup>1</sup> हमारे पूर्व प्रधानमंत्री नेहरू ने हिराकुंड बाँध के लिए विस्थापित लोगों से कहा था “अगर कठिनाइयों का सामना करना पड़े तो तुम्हें देश के हित के वास्ते उसके लिए तैयार होना ही चाहिए।”<sup>2</sup> सत्ताधिकारियों का विकास से पीड़ित अवाम के प्रति सदियों से यही रुख रहा है।

एन.बी.ए. ने औपचारिक तौर पर माँग की कि सारी योजनाओं को स्थागित की जाए। जनता ने घोषणा की कि डूबकर मरने की नौबत आ जाए तो भी हम अपने घर नहीं छोड़ेंगे। नर्मदा बचाओ आन्दोलन का विश्वास है कि बड़े बाँध कारगर नहीं है - “ये बाँध बहुत महँगे हैं और इनके द्वारा पानी वहाँ नहीं पहुँचेगा, जहाँ उसे ले जाने की अपेक्षा की जाती है और इसके साथ ही वह इलाका जिसके लाभान्वित होने की बात की जा रही है - सबसे बड़ी कीमत चुकाएगा।”<sup>3</sup> हिंदुस्तान का सबसे बड़ा चहेता बाँध भाखडा - नांगल के कमांड एरिया में यही हो रहा है। एन.बी.ए. का

- 
1. सी.वी.जे शर्मा (एडी. 1989 मॉडर्न टेम्पिल्स ऑफ इन्डिया। सेलेक्टड स्पीचस ऑफ जवाहरलाल नेहरू इरिगेशन आण्ड पावर प्रोजेक्ट्स सेंट्रल बोर्ड ऑफ इंडिया - पृ. 40
  2. पाट्रिक मक्कल्ली, 1998, सैलन्ड रिवेर्स द इक्वोलजी आण्ड पोलिटिक्स ऑफ लार्ज डाम्स, ओरियण्ड लोगमान हैदराबाद - पृ. 80
  3. एल.एस. अरविंद, सुप्रीम कोर्ट मजॉरिटी जजमेंट : मॉकरी ऑफ मॉडर्न इंडिया, एसोसिएशन फॉर इंडियाज़ डेवलपमेंट <<http://www.aidindia.org/hq/publications/essays/articles>.

विश्वास है कि बिजली पैदा करने जल-तंत्र के प्रबंधन से ज़्यादा लोकतांत्रिक एवं पर्यावरण के लिहाज़ से टिकाऊ विकल्प मौजूद है। यह आंदोलन ज़्यादा आधुनिक और ज़्यादा लोकतांत्रिक होने की माँग कर रहा है।

सन् 2000 अप्रैल को उच्चतम न्यायालय ने अंतरिम फैसला सुनाया जिसके तहत एन.बी.ए. को ऐसे मामलों में दखल देने से मना किया गया। बाँध का निर्माण जल्द से जल्द पूरा करने का निर्देश दिया गया। न्यायालय ने कहा कि किसी बड़े बाँध के विरोध में जलाशय में खड़े होकर अपने घर और सामान को पानी में बहता तैरता देखना एक कारगर संघर्ष की रीति रही है। लेकिन अब यह प्रभावशाली नहीं रहा। बाँध के विरोधियों से अपेक्षा है कि अब वे विरोध प्रदर्शन के नए तरीके ढूँढ निकालें या संघर्ष करना छोड़ दें। भारतीय उच्च न्यायालय से सरदार सरोवर परियोजना के मसले पर आए भयावह फैसले से उत्पन्न निराशा में नर्मदा बचाओ आंदोलन के वरिष्ठ कार्यकर्ता फिर से जल-समाधी लेने की बात करने लगे थे। उनका मज़ाक यह कहकर उड़ाया गया कि वे जो कहते हैं पर करते नहीं। न्यायालय के बेंच ने एन.सी.ए. (Narmada Control Authority) के मार्ग निर्देशों के आधार पर परियोजना की पूर्ति करने का आदेश दिया।

दिल्ली के जंतरमंतर में सन् 2006 मार्च 29 को मेधा पटकर ने आमरण अंशन प्रारंभ किया। जॉसिंग नार्गावे, भगवतिबेन जैसे वरिष्ठ

कार्यकर्ता भी उनके साथ थे। दीवार की ऊँचाई बढ़ाने से छः महीने पहले ही विस्थापितों का पुनर्वास पूरा हो जाना चाहिए था। न्यायालय के इस फैसले को नज़र अंदाज़ करते हुए एन.बी.ए. की तरफ से मार्च 8 को बाँध की ऊँचाई 110.64 मीटर से 121.92 मीटर तक बढ़ाने की घोषणा की गई। मेधा पाटकर ने तो ऐलान किया कि “यह हम तीनों की ज़िन्दगी की समस्या नहीं बल्कि, उन हज़ारों लोगों की जीने के अधिकारों की समस्या है।”<sup>1</sup> अंत में सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप से उन्होंने आमरण अंशन तोड़ लिया। न्यायालय ने फैसला सुनाया कि पुनर्वास योजना का कारगर तरीके से लागू करने तक दीवार की ऊँचाई बढ़ाने का काम स्थगित कर दिया जाएगा।

आज भी मेधा पटकर की अगुवाई में संसार के विभिन्न भागों के एन.जी.ओ. संगठनों की सहायता से इस अमानवीयता के खिलाफ संघर्ष बल पकड़ रहा है। इनके मज़बूत संघर्ष ने आम जनता का ही नहीं बल्कि मशहूर फिल्मस्टार आमिर खान के दिल तक को दहला दिया। उन्होंने कहा कि “जो लोग बेघर हो गए हैं, उन्हें एक छत दिलवानी चाहिए। उन्होंने अमीर लोगों से दरख्वास की कि इस आंदोलन का हिस्सा बनें और एक बेहतर हल निकालें।”<sup>2</sup>

---

1. हरिश्री - सुमेधा special subject energy 2006 मई 6 - पृ. 4

2. <http://www.ecoindia.com/education/narmada bachao andolan.htm>



यह आंदोलन सही ढंग से यह विचार हमारे सामने प्रस्तुत करता है कि बड़े बाँध मौजूदा समय की माँग नहीं है। हमें ऊर्जा के लिए नए विकल्प ढूँढना चाहिए। हवा, सूरज, लहरें जैसे नये ऊर्जा स्रोतों को तलाशना वक्त की माँग है। यही आगामी पीढ़ी व मानवता के लिए श्रेयस्कर भी है।

### केरल के प्लाच्चिमड़ा में कोका-कोला कंपनी के खिलाफ आंदोलन

प्लाच्चिमड़ा एक जगह नहीं है बल्कि एक त्रासदी है। मानव समाज के विकास के इतिहास की बहुत बड़ी त्रासदी। वह जनता के प्रतिरोध का सार्वभौमिक अड्डा बन गया है। यहाँ के बाशिंदों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके चमचे या दलाल सरकारों के खिलाफ लड़ने की अदम्य ताकत निहित है।

कंपनी में भूजल के औद्योगिक इस्तेमाल के संबन्ध में परस्पर विरोधी बयान मिलता है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार वर्ष 2000 में 40 अरब क्युबिक मीटर पानी का औद्योगिक इस्तेमाल किया गया था। “विश्व बैंक की गणना है कि औद्योगिक ज़रूरतों के लिए 2002 में 67 अरब क्युबिक मीटर पानी की ज़रूरत थी। वह 2025 में बढ़कर 228 अरब क्युबिक मीटर हो गई।”<sup>1</sup>

---

1. पर्यावरण संजीवनी जून 2008 - पृ. 29

2000 जून में हिन्दुस्तान कोका कोला कंपनी ने अपना प्लान्ट पेरुमाट्टी में स्थापित किया था। प्लाच्चिमडा की समृद्ध जलसंपदा ने ही इस बहुराष्ट्रीय कंपनी को इसकी ओर आकर्षित किया था। साटलैट उपग्रहों से प्राप्त चित्रों से पता चलता है कि केरल में सबसे ज़्यादा भूगर्भ जल संपदा पालक्काड़ जिले में है। बहरहाल यहाँ के मीठे पानी के इस्तेमाल से काफी तादाद में बोतलबन्द शीतल पेय बनाकर मुनाफा कमाने की मंशा से वे यहाँ आये थे। यहाँ के राजनीतिज्ञों, नेताओं एवं बांशिंदों की मदद से उन्होंने कंपनी खोल दी। कोका कोला कंपनी नौ नल्कूपों की सहायता से प्रतिदिन 15 लाख लिटर पानी का दोहन करती रही। इस इलाके के बांशिंदों की खामोशी का कंपनी शोषण करती रही। एम.पी. वीरेन्द्रकुमार के शब्दों में “तथ्य यह है कि उन्हें हमारी भूगर्भजल संपदा मुफ्त में दी जाती है और वे उसे बोतल में बंद करके हमारे ही बांशिंदों को बेचकर अरबों रुपए कमाते हैं तथा हमारे पर्यावरण और जनता के स्वास्थ्य को बर्बाद करते हैं।”<sup>1</sup>

पानी सचमुच एक अनमोल संपदा है। केरल उच्चन्यायालय के जस्टिस के बालकृष्णन नायर के फैसले में भी कहा गया है “भूजल एक देशीय संपदा है। उस पर पूरे मानव समाज का हक है। इस धर्ती पर जीवन को बरकरार रखनेवाला अमृत है। पानी नहीं है तो यह धर्ती

---

1. [http://www.organicconsumers.org/B.Tc/cocacola\\_082405.cfm](http://www.organicconsumers.org/B.Tc/cocacola_082405.cfm)

रेगिस्तान बन जाएगी।”<sup>1</sup> मौद बारलो की मशहूर किताब ‘ब्लू गोल्ड’ में कहा गया है “इस दुनिया में सबसे भारी तादाद में भूगर्भजल भारत में है।”<sup>2</sup> वंदना शिवा के शब्दों में “पानी सभी जीवों को सार्वजनिक तौर पर मुफ्त में मिलती प्राकृतिक संपदा है। प्रकृति की तरफ से पूरी तरह मुफ्त एवं स्वाभाविक तौर पर इसका वितरण होता है।”<sup>3</sup>

कोळा कंपनी अपनी इच्छा के मुताबिक भरपूर पानी का दोहन करती रही। फलतः प्लाच्चिमड़ा में भूगर्भ जलस्तर कम होता गया। पर कंपनी का मुनाफा बढ़ता गया।

प्लाच्चिमड़ा में कोला फैक्टरी निरंतर गंदा पानी छोटे कुओं में बहाती रही। इस तरह इलाके में पानी का स्तर तो बढ़ गया, लेकिन पानी मैला होता गया। जिला मेडिकल अफसर ने इसे सही भी साबित किया।

भारत सरकार के जलनीति के अनुसार पानी का अंधाधुंध दोहन कानूनी जुर्म है। पहले यहाँ 24 घंटों तक सिंचाई के लिए पानी मिलता था। पर फैक्टरी चालू होने के बाद केवल चार घंटे के बाद कुएँ का पानी खतम होने लगा। भूमिगत जल सांद्र हो गया और खारा भी। ज़्यादातर

- 
1. प्लाच्चिमटयिले जलचूषणवुम जनकीय प्रतिरोधवुम - मातृभूमि - एम.पी. वीरेन्द्रकुमार - पृ. 29
  2. वही - पृ. 33
  3. वही - पृ. 31

नलकूपों का पानी पीने लायक नहीं रहा। भूमिगत जल नलकूपों द्वारा अंधाधुंध खींच लेने के कारण एकदम खारा पानी में तब्दील हो गया। अमूमन धरती के भीतर के खनिजों के कारण ही पानी खारा बन जाता है। परंपरागत खेती को फैक्टरी ने नेस्तानाबूद कर दिया। गंदा पानी के इस्तेमाल से लोग लाइलाज बीमारियों की गिरफ्त में आ गए। खाना पकाने के लिए भी लायक नहीं रहा। मैलम्मा के शब्दों में “इसमें चावल पकाते वक्त पकने के लिए ज़्यादा समय लेता है। पकने पर दस मिनट बाद खराब भी हो जाता है। खाना खाने के बाद तो पेट भी खराब हो जाता है।”<sup>1</sup>

प्लाच्चिमड़ा की ज़मीन एवं जनता की त्रासदी को दुनिया के सामने बी.बी.सी. ने 2003 में ज़ाहिर किया था। कोळा प्लांट से बाहर आते खनिज पदार्थों से भरा कचरा ज़हरीला एवं खतरनाक है। कंपनी ने अनपढ़ मासूम किसानों को यह कचरा खेती की खाद (Fertilizer) के रूप में वितरित भी किया। बी.बी.सी. के अनुसार ऐसे कचरे में भारी पैमाने पर काडमियम पाई जाती है। यह हड्डियों को पीसती खतरनाक बीमारियों की वजह बन सकती है बी.बी.सी. के एक संवाददाता जॉण वेय्ट ने भारत के कोका कोला फैक्टरी के अध्यक्ष संजीव गुप्ता से पूछा कि “मिस्टर गुप्ता हमने प्लाच्चिमड़ा में सूखे कुएँ देखे। गंदा पानी देखा। हमने जाँच के लिए पानी का नमूना लिया था। इस बोतल का पानी देखो

---

1. प्लाच्चिमटयिले जलशोषण और जनकीय प्रतिरोध - पृ. 29

हमने तुम्हारे फैक्टरी की दीवार के केवल पाँच मीटर दूर पर स्थित कुएँ से लिया था। क्या तुम यह पानी पी सकते हो? गंदगी से भरा यह पानी? अपने सीने पर हाथ रखकर कहो यह गंदा पानी क्या तुम पियोगे?"<sup>1</sup>

समस्याओं के खुलेआम सामने आने पर 2002 अप्रैल 22 को मासूम आदिवासी अवाम् ने कोला कंपनी के खिलाफ अनिश्चितकालीन संघर्ष शुरू किया। पंचायत ने हड़तालियों की माँग का लिहाज़ रखा। कुएँ का पानी जाँच के लिए डी.एम.ओ. के पास भेज दिया गया। उन्होंने रिपोर्ट दी कि यह पीने लायक नहीं है। 2003 अप्रैल 7 को पंचायत अध्यक्ष ए. कृष्णन की अध्यक्षता में पंचायत समिति ने कोला कंपनी की लैसेंस रद्द की। पेरुमाट्टी पंचायत ने ही शायद इस दुनिया में पहली बार एक बहुराष्ट्रीय कंपनी को अपने सामने घुटने टेकने को मजबूर कर दिया था। बाद में पंचायत ने अदालत में कंपनी के खिलाफ 'षोकोस' नोटिस दी। 12/6/2003 को सरकार ने उस कार्यवाही को स्थगित किया। पंचायत की कार्यवाही को अदालत ने सही ठहराया।

पंचायत अध्यक्ष ए. कृष्णन ने कंपनी को बंद करने की माँग करते हुए 2004 फरवरी से आमरण अनशन की घोषणा की। इस बीच 2004 में प्लाच्चिमड़ा में लोकजल समारोह संपन्न हुआ। 21.2.2004 को

---

1. अधिनिवेशतिन्टे अटियोषुक्कुकल - एम.पी. वीरेन्द्रकुमार - पृ. 16

मणसूण तक भूमिगत जल लेने से सरकार ने कंपनी पर पाबंदी लगायी। 17.2.2004 को कंपनी ने फिर लैसेंस के लिए आवेदन दिया। 2.7.04 को अदालत की डिविज़न बेंच ने अंतरिम फैसले तक सरकारी फैसले को स्थगित किया।

आखिरकार जनसंघर्ष के सामने कंपनी को घुटने टेकने पड़े। प्लाच्चिमड़ा कंपनी बंद हो गई। लेकिन गम की बात है प्लाच्चिमड़ा के निकट प्रदेश में पेप्सी कोला कंपनी आज भी कार्यरत है। प्लाच्चिमड़ा आन्दोलन की मुख्य कार्यकर्ता आदिवासी महिला मैलम्मा के शब्दों में “यह संघर्ष उन मासूम, निरीह आदिवासियों की तरफ से बहुराष्ट्रीय निगमों के खिलाफ महत्वपूर्ण संघर्ष के तौर पर दुनिया भर में याद किया जाएगा।”<sup>1</sup> संघर्ष के दौरान उन्होंने कहा था “इस संघर्ष की जीत होनी चाहिए। हमारी ज़िन्दगी आज या कल खतम हो जाएगी। हमारे बच्चों को बचाना चाहिए। हमारे पेयजल का दोहन करनेवाली यह कंपनी किसलिए?”<sup>2</sup>

प्लाच्चिमड़ा जल सम्मेलन में अनेक दिग्गज पारिस्थितिक कार्यकर्ताओं ने भाग लिया था। जैसे होसे बुवे, मोद बालों, वंदना शिवा, अफ्लातून, वीरेन्द्रकुमार और मेधापाटकर आदि। सब ने मिलकर एक

---

1. प्लाच्चिमटयिले जलशोषणवुम जनकीय प्रतिरोधवुम - पृ. 48

2. अधिनिवेशत्तिन्टे अडियोषुकुकल - एम.पी. वीरेन्द्रकुमार - पृ. 48

घोषणा तैयार की। एम.पी. वीरेन्द्रकुमार के शब्दों में “यह प्लाच्चिमड़ा घोषणा ‘अपने हक का मगनाकाट्टा है।’”<sup>1</sup>

### प्लाच्चिमड़ा घोषणा

1. जल जीवन का आधार है।
2. पानी किसी की निजी संपदा नहीं है।
3. मानव का मौलिक हक है पानी
4. पानी बिक्री की चीज़ नहीं है।
5. इसके आधार पर ही जलनीति तैय्यार करनी चाहिए आदि कई अहम घोषणाएँ भी की गई।

मशहूर फ्रेंच किसान नेता जोसे बुवे ने इस संघर्ष के बारे में कहा था “यह संघर्ष बहुराष्ट्रीय निगमों के पेयजल जैसे प्राकृतिक संसाधन के शोषण के खिलाफ एक सार्वभौमिक संघर्ष का हिस्सा है।”<sup>2</sup> प्लाच्चिमड़ा लोक जलसम्मेलन की फतह पर बधाई देते हुए वरिष्ठ पत्रकार नवोमी कोलिन ने भी कहा कि “बहुराष्ट्रीय निगमों पर स्थानीय जनता द्वारा एक महत्वपूर्ण फतह दर्ज की गई है। पानी एक चीज़ नहीं है बल्कि यह एक

---

1. अधिनियेशत्तिन्टे अडियोषुक्कुकल - एम.पी. वीरेन्द्रकुमार - पृ. 47

2. वही - पृ. 66

मानव अधिकार है। तुम्हारी जंग उन तमाम लोगों के लिए एक प्रेरणा है जो शुद्ध जल के लिए जंग लड रहे हैं।”<sup>1</sup>

जल संसाधन मंत्रालय द्वारा नियुक्त एक उच्च अधिकार समिति ने प्लाच्चिमडा के निवासियों को मुआवज़ा देने का निर्देश दिया। लेकिन उद्योग विभाग ने उसे खारिज किया। वे कोका कोला के पक्ष में थे। उद्योग विभाग के प्रिंसिपल सेक्रेटरी को यह गम खाये जा रहा था कि “हम कोका कोला को नहीं बचा पाये।”<sup>2</sup>

संक्षेप में यह संघर्ष आनेवाली पीढ़ी के लिए यह सीख देता है कि - हमें अपनी प्रकृति, जल वायु आदि को आनेवाली पीढ़ी के लिए सहेजकर रखना चाहिए। इसके लिए कोका कोला जैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों को यहाँ से भगाना होगा। जो हमारी प्रकृति का गलत इस्तेमाल करते हुए अपने मुनाफे का इज़ाफा कर रहे हैं।

### **शिवनाथ नदी बचाओ आंदोलन**

शिवनाथ नदी के पानी के निजीकरण के खिलाफ उपजे जन आंदोलनों के चलते राजनीतिक हल्कों में काफी सरगर्मी पैदा की है। सन्

- 
1. The Times (London) January 6, 2004 - Message from NAOMI KLEIN
  2. [www.manorama.com](http://www.manorama.com)



1998 में अविभाजित मध्यप्रदेश सरकार ने बेहतर एवं लाभप्रद जल प्रबंधन के नाम पर 'रेडियस वाटर लिमिटेड कंपनी' के हाथों नदी को 22 वर्षों के लिए गिरवी रख दी थी। बिल्ड ऑपरेट ऐण्ड ट्रांसफर (बूट) की प्रणाली के तहत ही यह योजना बनी थी जो वैश्विकी प्रणाली है। इसका फल यह हुआ कि नदी तट और आसपास के लाखों लोग इस कुदरती देन, जल से वंचित हो गए।

विकास के नाम पर विनाश के इस खेल के विरुद्ध ऑल इण्डिया यूथ फेडरेशन द्वारा आयोजित मेहलई से दारा गाँव तक की 6 किलोमीटर की शिवनाथ मुक्ति पदयात्रा में हज़ारों की तादाद में लोगों ने भाग लिया। यात्रा के दौरान गाँवों में सभाएं की गयीं। गाँववालों ने न सिर्फ़ उनका स्वागत किया, बल्कि आन्दोलन और पदयात्रा में शरीक भी हुए। क्रम-क्रम से धरना, जुलूस, नाटक आदि ने जन आन्दोलन को तीव्र बनाया। राज्यसभा और लोकसभा में पानी के निजीकरण को गंभीर मसला मानते हुए सांसदों ने छत्तीसगढ़ सरकार की कड़ी आलोचना की। परिणामतः जल आन्दोलन जन आन्दोलन में तब्दील हो गया और 'शिवनाथ मुक्ति' के बहाने छत्तीसगढ़ और देश के जल से जुड़ी तमाम समस्याओं पर देश का ध्यान आ गया।

छत्तीसगढ़ जल सम्मेलन में विख्यात पर्यावरणविद रामचन्द्र सिंह देव ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि "50 सालों में भूजल मात्र 50

प्रतिशत शेष रह जाएगा और उसमें भी 50 प्रतिशत प्रदूषित भी हो जाएगा।”<sup>1</sup> उन्होंने कहा कि हज़ारों सालों में जो भूजल जमा हुआ था, उसे हमने 10 सालों में निकालकर खतम कर डाला। हमारी ज़रूरतें आगामी 50 वर्षों में 35 प्रतिशत बढ़ जाएँगी। कल क्या होगा? राज्यपाल ने जल के लिए संघर्ष करनेवालों को जलयोद्धा पुकारा और जल-संकट तथा पानी के लूट के संदर्भ में चेतावनी दी कि हम में से कोई भी इस पाप से, इस दोष से, इस अपराध से मुक्त नहीं है। और तो और तालाब जो जल संचयन के सबसे बड़े साधन थे, उन्हें हमने मूर्ति विसर्जन जैसे धार्मिक रीति-रिवाज़ों तथा मकान व व्यापार भवन बनाने के वास्ते नष्ट किए। वक्ताओं ने सुझाव दिया कि सरकार को सिर्फ यही चाहिए कि पानी को व्यापार की दृष्टि से नहीं बल्कि मानव अधिकार की दृष्टि से देखा जाए।

निष्कर्षतः पर्यावरण प्रदूषण की बढ़ती हुई समस्या सचमुच सार्वभौमिक समस्या बन गई है। यह बढ़ता प्रदूषण तथा नष्ट होता पर्यावरण समूचे मानव जाति के लिए एक चुनौती है। यह प्रदूषण जल, वायु तथा मिट्टी को नष्ट करके हमें बर्बर युग की तरफ धकेला जा रहा है। प्रदूषण ओज़ोन परत में छिद्र करके सभी जीव जंतुओं को हानि कर रहा है। यदि पर्यावरण विनाश यों जारी रहेगा तो आगामी दशकों में

---

1. नया ज्ञानोदय - बिन पानी सब सून - पृ. 30

सबकुछ खत्म हो जाएंगे। इस सार्वभौमिक विनाश से बचने का सही रास्ता है कि विकास संबन्धी हमारे नज़रिए में बदलाव आना चाहिए। मानव के नाजायज तरीके से मुनाफा कमाने की जद्दोजहद पर रोक लगाने से ही मानव जाति की भलाई होगी।



## दूसरा अध्याय

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में पृथ्वी की  
ऊर्जाओं के शोषण के खिलाफ सजगता

## समकालीन हिन्दी उपन्यासों में पृथ्वी की ऊर्जाओं के शोषण के खिलाफ सजगता

### जल-वायु - भूमि पर संकट

वायु जल एवं भूमि जीवन की मूल आवश्यकता है। बढ़ती आबादी एवं प्राकृतिक स्रोतों की तेज़ी से खपत ने इनके प्रदूषण को बढ़ाया है, स्वास्थ्य संकट पैदा कर दिया है। मानव प्रकृति का ज़रूरत से ज़्यादा दोहन करता आया है। जिसके परिणाम स्वरूप सूखा, बाढ़, महामारी, भूकंप, भूस्खलन, ओज़ोनपरत का नाश, ग्लोबलवार्मिंग, अकाल जैसी अनगिनत प्राकृतिक आपदाएँ नित्य विकराल रूप धारण करती जा रही है। नेचर पत्रिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट में 'जॉन मेंडोक्स ने लिखा है कि "पर्यावरण विनाश से पृथ्वी की जलवायु में होनेवाले परिवर्तनों का दूरगामी प्रभाव पृथ्वी के घूमने की गति पर भी पड़ सकता है।"<sup>1</sup> हालांकि यह प्रभाव बहुत कम होगा, फिर भी पर्यावरण को बचाकर इसे समाप्त किया जा सकता है।

---

1. 'पर्यावरण विकास और यथार्थ' - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ.सं. 117

यह सभी जानते हैं कि दुनिया की आबादी का गुब्बारा दिन-ब-दिन फूलता ही जा रहा है और अपने भारत की आबादी का गुब्बारा तो कहीं अधिक अनुपात में फूल रहा है। पहले और आज की ज़िन्दगी में भारी फर्क आ गया है। सन् 1950 की तुलना में अब दुनिया की आबादी दुगुनी हो गई है। खाद्य उत्पादन लगभग तिगुना कर लिया गया है और फौसिल इंधन का इस्तेमाल पहले की अपेक्षा चौगुना हो गया है। इन सब बातों के परिणाम स्वरूप पृथ्वी के संसाधनों पर पड़नेवाला दबाव कई प्रकार से प्राकृतिक सीमाओं को पार कर गया है।

दुनिया की सभ्य बस्तियाँ नदियों के किनारे बसीं और सारी खुशहाली व प्रगति इन्हीं के इर्द-गिर्द हुई हैं। इसीलिए हमारे जानकार पुरखों ने उपयोगी नदियों को पवित्र माना और इन्हें स्वच्छ रखना परम धर्म समझा। बढ़ती आबादी, उद्योगों और कल कारखानों के इस युग में आए दिन हम यदि मल-मूत्र, कूड़ा-कचरा, ढेरों रसायन और बेकार चीज़ें डालते जाएँगे तो हम अपनी खैर कब तक मनाएँगे। 'ब्लू गोल्ड' के रचयिता मौद बारलो के अनुसार "अगले पच्चीस वर्षों में दुनिया की आधे से ज़्यादा आबादी कठिन जल दौर्लभ्य का सामना करेगी।"<sup>1</sup>

आनेवाली पीढ़ियों के लिए इस पृथ्वी को दूषित एवं रहने योग्य न बनानेवाले अनेक तथ्य हमारे समाज को चौंका रहे हैं। विश्व स्तर पर

---

1. Blue Gold - Maudi Barlow, Tony Clarke - P XII

सबसे खतरनाक हैं - रक्षाकारी ओज़ोन की परत का क्षीण होना और उसमें छेद होना, चारों ओर प्रदूषण व्यक्ति, जलवायु संबन्धी परिवर्तन और जीवों की विविधता की हानि।

हमारे अंतरिक्ष की ऊपरी परत ओज़ोन गैस से बनी है, जो सूर्य के तीक्ष्ण किरणों के विकिरण से हमारी रक्षा करती है जिसे हम ओज़ोन की रक्षाकारी छतरी कह सकते हैं। हाल के रिपोर्टों से पता चला है कि दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के (एन्टार्टिका) ऊपर की ओज़ोन परत छलनी होती जा रही है और अनुमान करने पर इसका कारण है पर्यावरण में उद्योगों के 'क्लोरोफ्लोरो कार्बन' पदार्थों का विसर्जन है। इसका परिणाम यह होगा कि "आबादीवाले इलाकों में पराबैंगनी विकिरण (अल्ट्रा वायोलेट रेडिएशन) और अधिक मात्रा में पहुँचेगा, जिस से चमड़ी में कैंसर होगा, मानव का प्रतिरक्षा - तंत्र (इम्यून सिस्टम) दोषपूर्ण बन जाएगा और फसलों की वृद्धि भी मंद पड़ जाएगी।"<sup>1</sup>

इसके बगैर जंगलों का नाश दुनिया के सभी देशों में चारों ओर बढ़ता ही जा रहा है जिसे अगर रोका नहीं गया तो अंजाम बहुत बुरा होगा। जंगलों की हानि से स्थानीय लोगों के अलावा अन्य लोगों को भी बुरे परिणाम भुगतने पड़ेंगे क्योंकि जंगल पर्यावरण के महत्वपूर्ण घटक है।

---

1. 'प्रदूषण : पृथ्वी का ग्रहण' - प्रेमानन्द चन्दोला - पृ. 34

उपग्रह से प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि भारत ने केवल आठ सालों में ही अपने वृक्षीय आवरण का 22 प्रतिशत खो दिया है। जंगल दुनिया के प्रदूषण को दूर भी करते हैं।

संक्षेप में यही रफ्तार रही तो हमारा पृथ्वी पर रहना खतरे से खाली नहीं रहेगा। क्योंकि वह भयानक खतरे की चपेट में है। आज मानव के क्रियाकलापों से अनेक प्राकृतिक तंत्र सीमा लांघकर परे जा रहे हैं जिनसे गंभीर दुष्परिणाम होंगे और भविष्य में पृथ्वी पर रहते हमें भयानक खतरों का सामना करना पड़ेगा।

## पानी

जल ही जीवन है (जलेव जीवनम्)। पानी के बिना जीवन की कल्पना भी कठिन है। प्रत्येक वस्तु जल से उत्पन्न और संपोषित है। जैवमण्डल में जीव-जनन्तुओं की समस्त क्रियाओं के लिए जल एक परमावश्यक घटक है। प्रत्येक प्राणी की देह के 70 प्रतिशत से 90 प्रतिशत भाग जल ही होता है। जल की इसी महत्ता को समझकर ऋग्वेद के मंत्रद्रष्टा ऋषि ने घोषणा की है कि यह द्युलोक पृथ्वीलोक, अन्तरिक्ष, वनस्पतियाँ, रस तथा जल एक बार ही उत्पन्न होता है। बार-बार नहीं, अस्तु इनको नितान्त संरक्षण करना चाहिए।



“संकृत द्यौरजायत सकृद, भूमिरजायत।  
पृश्न्या दुग्धं सकृत्यपस्तदन्यो नानु जायते।”<sup>1</sup>

क्योंकि जल ही जगत की प्रतिष्ठा है - “आपो वा सर्वस्य जगत - प्रतिष्ठा।”<sup>2</sup> छान्दोग्य उपनिषद में “अन्न से भी बढ़कर जल को महत्व दिया गया है।”<sup>3</sup>

संपूर्ण पृथ्वी के 71 प्रतिशत जल और शेष 29 प्रतिशत थल है। 2 प्रतिशत जल ज़्यादातर ध्रुवीय प्रदेशों में बर्फ के रूप में जमा है। हमारे घरेलू और औद्योगिक उपयोग में आनेवाला मीठा जल कुल उपलब्ध जल का 0.27 प्रतिशत ही है। इसीलिए हिन्दी के महान रहीम ने फरमाया है कि

“रहीमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून  
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून।”<sup>4</sup>

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि पानी अमूल्य है और मानव के अस्तित्व के लिए अपने प्राकृतिक जलस्रोतों का संरक्षण करना चाहिए।

---

1. ऋग्वेद 6/48/22

2. ‘हिन्दू धर्म और पर्यावरण चेतना - किशनाराम बिशनोइ - पृ. 15

3. पर्यावरण और संस्कृति का संकट - डॉ. गोविन्द चातक - पृ. 14

4. रहीम सतसई - पृ. 169

## पानी की माँग

भारत की जल समस्या बड़ी तेज़ी से भयावह होती जा रही है। “हमारे देश को प्रति वर्ष प्रकृति से करीब 1150 घन किलोमीटर उपयोग योग्य जल की प्राप्ति होती है। इसमें करीब 700 घन कि.मी. जल धरती के ऊपर एवं शेष 450 घन कि.मी. धरती के नीचे प्राप्त होता है।”<sup>1</sup> यही 1150 घन कि.मी. प्रति वर्ष हमारी जलसंपदा है, जिस पर हमारा जीवन निर्भर है और फिर इस जल संपदा को बढ़ाया भी नहीं जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र ने 22 मार्च को ‘अन्तर्राष्ट्रीय जलदिवस’ पर जारी की गयी अपनी रिपोर्ट में पूरे विश्व समुदाय को चेतावनी देते हुए कहा गया है कि “अगर इसी रफ्तार से पानी का उपयोग जारी हा तो वर्ष 2025 आते-आते 2.7 बिलियन आबादी को जल से महरूम रहना पड़ेगा।”<sup>2</sup> विश्व की वर्तमान आबादी के हर सात व्यक्ति में से एक को स्वच्छ पानी नहीं मिल रहा है। ढाई बिलियन लोग दूषित पानी जनित बीमारियों से मर रहे हैं। मरनेवालों की यह संख्या विश्व भर में मरनेवालों की संख्या से दस गुना है। विश्व जलदिवस के अवसर पर अपने संदेश में भूतपूर्व संयुक्त राष्ट्र सचिव कौफी अन्नान ने कहा है कि “यदि पानी की बर्बादी इसी तरह

---

1. पर्यावरण : विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 31

2. दैनिक ट्रिब्यून, 27 मई 1998

जारी रही तो अगले दो दशकों में हर तीन व्यक्तियों में से दो पानी की गंभीर किल्लत का शिकार बनेंगे।”<sup>1</sup> इसके अलावा इंटरनेशनल एटॉमिक इनर्जी एजेंसी’ के अनुसार पृथ्वी पर मात्र तीन फीसदी ही पानी मौजूद है जिसमें से भारत में मौजूदा जल भंडारण 1122 बिलियन क्युबिक मीटर है जो आज की माँग के हिसाब से मात्र 15 वर्षों के लिए ही काफी है। उसके बाद पीने के लिए पानी की समस्या पैदा हो जाएगी। इसलिए अभी सचेत हो जाने की ज़रूरत है।”<sup>2</sup>

जल की आवश्यकता को हम मुख्यतः तीन भागों में बाँट सकते हैं। 1) घरेलू आवश्यकताएँ, 2) कृषि आवश्यकताएँ, 3) औद्योगिक एवं अन्य आवश्यकताएँ। जन संख्या वृद्धि एवं बढ़ते औद्योगीकरण के कारण देश में जल की आवश्यकता हर वर्ष बढ़ती जा रही है। जैसे “वर्ष 1990 में जल की हमारी उपरोक्त तीनों आवश्यकताएँ क्रमशः 25460 एवं 67 घन कि.मी. थी जो वर्ष 2025 तक बढ़कर क्रमशः 52,770 एवं 228 घन कि.मी. हो जाएँगी, इस तरह हम देखते हैं कि जल की कुल आवश्यकता जो 1990 में 550 घन कि.मी. थी वर्ष 2025 में बढ़कर 1050 घन कि.मी. हो जाएगी, जो कि हमारी कुल जल संपदा का करीब 90 प्रतिशत है।

---

1. पर्यावरण : विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 62

2. वही - पृ. 31

इसका पहला कारण यह कि हमारी कुल जल संपदा पूरे देश में समान रूप से वितरित नहीं है। दूसरा कारण है जल प्रदूषण की गंभीर समस्या। प्रदूषण की वजह हमारी पवित्र गंगा तक अत्यंत दूषित हो गई है। यमुना बेसिन के 80 जिलों में से आज 62 जिलों में नदी के प्रदूषण के कारण जल की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी विश्व की जल विकास रिपोर्ट में कहा गया है कि “एशिया में बहनेवाली नदियाँ भी इंसानी कचरे एवं औद्योगिक कचरे के मिलने के कारण सबसे अधिक प्रदूषित हैं।”<sup>1</sup> रिपोर्ट के अनुसार इन नदियों के पानी में पाये जानेवाले ‘सीसे’ की मात्रा औद्योगिक देशों की नदियों में पाये जानेवाले सीसे की मात्रा से 20 गुणा अधिक है। जनसंख्या में वृद्धि, वातावरण में प्रदूषण और वायुमंडल में परिवर्तन के कारण जलस्रोत तेज़ी से सूखते जा रहे हैं।

ताज़ा पानी विश्व भर में 70 प्रतिशत कृषि के लिए इस्तेमाल होता है। सिंचाई व्यवस्था में व्याप्त खामियों के कारण 60 प्रतिशत पानी भाप बनकर उड़ जाता है या नदियों या जलाशयों में वापस चला जाता है। त्रुटिपूर्ण सिंचाई व्यवस्था से जल की बर्बादी तो होती ही है। इससे पर्यावरणीय

---

1. ‘पर्यावरण विकास और यथार्थ’ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 63

एवं स्वास्थ्य संबन्धी खतरे भी उत्पन्न होते हैं। इटली के भौतिक शास्त्री एंटोनियो निवीची कहते हैं कि “वार्षिक जल उपयोग का 60 फीसदी हिस्सा कृषि के लिए होता है।”<sup>1</sup> वंदना शिवा ने हरितक्रांति के संदर्भ में कहा है कि “पानी की ज़्यादा उपभोग माँगनेवाला हरितक्रांति जल दौर्लभ्य रखनेवाले इलाकों को जल खनन की ओर खसीटने के लिए ज़िम्मेदार है।

वाशिंगटन स्थित वर्ल्ड वाच संस्थान का आकलन है कि “भारत के केवल 42 प्रतिशत लोगों को ही स्वच्छ पेयजल मयस्सर हो पाता है। देश में अधिक शिशु मृत्युदर होने के लिए दूषित पेयजल बहुत हद तक ज़िम्मेदार है।”<sup>2</sup> ब्लू गोल्ड के रचयिता मोद बारलों के अनुसार “इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी समस्या दुनिया की प्यास होगी।”<sup>3</sup>

पेयजल संकट का चित्रण समकालीन हिन्दी उपन्यासों में मिलता है। जैसे - राकेशकुमार सिंह के जहाँ खिले हैं रक्तपलाश में पानी की माँग का चित्रण कुछ इस तरह से किया है “कोठिल्ला पहाड से निकलती है धनकाई नदी। पतली बरसाती नदी। बरसात में तो हाहास करने लगती है। जाडे में बालू खोदते-खोदते नाखून घिस जाती है पर एक बूँद पानी नहीं।”<sup>4</sup> ‘संजीव के सावधान नीचे आग है’ में पानी की समस्या का चित्रण

---

1. दैनिक ट्रिब्यून, 27 मई 1998

2. राष्ट्रीय सहारा, अप्रैल 2003

3. Blue Gold - Maude Barlow, Toney Clarke - P. 25

4. जहाँ खिले हैं रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ. 53

मिलता है “झरिया में पानी महंगा और दुर्लभ है। सस्ती और सुलभ है शराब और उससे भी सस्ता है आदमी का खून”<sup>1</sup> संजीव के ‘धार’ में तो पेयजल की कमी के चलते नायिका मैना रेलवे लैन पर बिछी पाइप तोड़कर अपनी प्यास बुझाती है।

मैत्रेयी पुष्पा के ‘इदन्नमम’ में आदिवासियों के प्रदूषित पानी पीने के कारण टाइफाइड, पीलिया आदि के शिकार होने का जिक्र है। भगवानदास मोरवाल के मशहूर उपन्यास ‘काला पहाड’ में नायक सलेमी अपने इलाके की बद्दहालत के चलते विधायक चौधरी मुर्शीद अहमद से फरियाद करते दिखाई देते हैं कि “इलाका तो एक-एक बूँद पाणी कू तरस रो है, और तुम... चाहे ई इलाको मरे या जीवे...”<sup>2</sup> वीरेन्द्र जैन का चर्चित उपन्यास है ‘पार’। इसमें भी पेयजल समस्या का दर्दनाक चित्र अंकित हुआ है। बहुत बरस पहले जब राजघाट पर बाँध का काम शुरू हुआ तब नदी से जो नहर पंचमनगर महल और वहाँ से पानी पुरा तक आती थी उसे मूल मुहाने से बंद कर दिया गया। लोगों को ‘पेयजल’ मुहैया कराना सरकार का दायित्व है मगर उनके कारिंदों ने मिलकर स्वाभाविक तौर पर उपलब्ध पानी को बंद करके लोगों को बूँद-बूँद पानी के लिए मोहताज बनाया - “पानीपुरा में पानी का साधन थी केवल वह नहर या एक तीस फुटी

---

1. सावधान नीचे आग है - संजीव 112

2. कालापहाड़ - भगवानदास मोरवाल - पृ. 207

कुइयाँ। बारहमासी लबालब भरी रहनेवाली नहर के चलते पानीपुरा को कभी कुएँ की दरकार ही नहीं हुई। नहरबंद होने से पानी की किल्लत रहने लगी। नए कुएँ खोदना इसलिए गैर उपयोगी लगा कि जाने कब गाँव खाली करना पड़े।”<sup>1</sup>

नासिरा शर्मा के बहुचर्चित उपन्यास कुइयाँजान में भी इस ओर विस्तार से चर्चा मिलती है। कुरैशी कहता है कि “पानी की ऐसी किल्लत हमारे बचपन में नहीं थी। तो लाला जवाब देता है कि इसलिए कि तब आबादी कम थी और उसी के साथ थोड़े-बहुत कुएँ-तालाब बचे हुए थे। जब से नल और वाटर वर्क्स से हमारा रिश्ता जुड़ा है, पानी का राशन शुरू हो गया। पहले टाइम बाँधा, फिर तीन टाइम से दो टाइम हुआ और अब पानी बिजली पर निर्भर है। संजीव के ‘पाँव तले की दूब’ में भी एन.टी.पी.सी. ताप बिजली घर के प्रदूषण के कारण मोझिया गाँव के आदिवासियों को पानी की कमी खलने लगी। कुएँ प्रदूषित हो गई इसके बाद उनके लिए एकमात्र सहारा बचता है मनसा नाला जिसमें प्लाण्ड और कोलोनी का तमाम प्रदूषित जल बहाया जाता है। इसकी वजह से लोग जलजन्य बीमारियों से पीड़ित है।

---

1. पार - वीरेन्द्र जैन - पृ. 71

2. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 94

सुभाष पन्त के उपन्यास 'पहाड चोर' में भी हम देखते हैं कि 'झाण्डूखाल' का एक मात्र शुद्ध पानी का स्रोत 'धार' खनन के कारण लुप्त हो गया। जिससे गाँववाले बूँद-बूँद पानी के लिए तरसने लगे।

जल की कमी कई क्षेत्रों में तनाव उत्पन्न कर रही है। यह स्थिति उत्तर आफ्रिका और पश्चिमी एशिया में कठिन रूप धारण कर चुकी है। विश्व बैंक के उपाध्यक्ष इस्माईल सेरागोलिडिन ने 1995 में कहा था कि इस सदी का युद्ध अगर तेल के लिए है तो अगली सदी का युद्ध पानी के लिए होगी। आज हम यह अपनी आँखों से देख रहे हैं। आज युद्ध न सही पानी के लिए संघर्ष तो आए दिन गली कूचों में होता ही रहता है। मिसाल के लिए नासिरा शर्मा के उपन्यास 'कुइयाँजान' में इसका ज़िक्र है। इस उपन्यास में हैदराबाद शहर का चित्रण है। हैदराबाद दो नदियोंवाला एक आबाद शहर है। यहाँ पानी बहुत है लेकिन पीने के नाम पर नादारद। एक दिन नमकीनवाली गली में किसी ने गली के नीचे दबे पाइप में मोटर लगा पानी खींचना शुरू कर दिया था, जिससे बाकी घरों में पानी की कमी आई। जब वह पकडा गया तो पड़ोसियों ने जमकर उसकी धुनाई की। बीच-बचाव वाले भी मना करते-करते उस मारपीट में बाकायदा शामिल हो गए। कई लोग जखमी हो गए। भीड़ लग गई। पुलिस आ गई। रास्ता जाम हो गया। उपन्यास के पात्र लालाजी चिंता व्यक्त करते हैं कि "पहले धर्म को लेकर धर्म युद्ध होते थे, फिर सीमा को लेकर तलवारें खिंचती थी,



और अब देखना, ...जल को लेकर प्रांतों के बीच युद्ध छिड़ेगा। ताज्जुब नहीं कि यह गृह-युद्ध एक दिन विश्व-महायुद्ध में बदल जाए।”<sup>1</sup>

### भूमिगत जल

“वर्षा का जल विभिन्न स्थानों से धीरे-धीरे रिसकर भूमि के अंदर चला जाता है। नदियों, झीलों और तालाबों की तली से भी जल का रिसाव भूमि के भीतर होता है। यह जल भूमि के नीचे इकट्ठा होता रहता है और भूमिगत जल कहलाता है।”<sup>2</sup> हैंडपंपों, ट्यूबवेलों और कुओं के द्वारा हम इसी जल को खींचकर ऊपर लाते हैं और विभिन्न कार्यों के लिए इसका इस्तेमाल करते हैं।

वर्षा का जल मानव के लिए अत्यंत उपयोगी होता है लेकिन, 85 प्रतिशत वर्षा, समुद्रों के ऊपर होती है, इसलिए वर्षा जल का थोड़ा अंश ही उपयोग में आता है।

भूजल ही हमारी अधिकांश आबादी के पीने के काम आता है और सिंचाई में भी तीस चालीस प्रतिशत भूजल ही इस्तेमाल होता है। अगर यह पानी खत्म होगा तो गाँव के ग्रामीण लोग प्यास से तड़पेंगे ही, हमारी चालीस प्रतिशत कृषि भी बर्बाद हो जाएँगी। इसका नतीजा भुखमरी

---

1. कुइयॉजान - नासिरा शर्मा - पृ. 110

2. पर्यावरण और जल प्रदूषण - निशांत सिंह - पृ. 46

और अकाल होगा, जिससे निपटना किसी भी सरकार के लिए मुश्किल हो जाएगा। वंदना शिवा के शब्दों में “एक देश में प्रतिवर्ष जल की लभ्यता हजार क्युबिक मीटर से कम हो तो यही मतलब है कि वह देश गंभीर तौर पर पानी का संकट झेल रहा है। पानी की लभ्यता इससे भी कम हो तो देश के स्वास्थ्य एवं आर्थिक विकास खतरे में पड़ जाएगी। प्रतिशीर्ष जल लभ्यता 500 क्युबिक मीटर से भी कम होने पर जनता का जीवन भी खतरे में पड़ सकता है। 1951 में भारत की प्रतिशीर्ष जल लभ्यता 3450 क्युबिक मीटर थी लेकिन 1990 तक आते-आते यह 1250 तक पहुँच गयी और लगभग 2050 तक आते-आते यह 760 क्युबिक मीटर तक गिर जाने का खतरा है।”<sup>1</sup>

देश में करीब 70 फीसदी भुजल खेती में ही उपयोग किया जाता है। इसलिए ज़रूरी है कि किसान अपने इलाके के मिट्टी के अनुसार बीजों की खेती करें। हरितक्रांति के बाद ऐसे बीजों की खेती की गयी जो अत्युत्पादक क्षमता रखती हो। प्रादेशिक फसलों की जगह ऐसे बीजों की खेती की गयी जो ज़्यादा पानी की खपत करती हो। वंदना शिवा की राय में “पानी की ज़्यादा खपत माँगती हरितक्रांति ने जल दौर्लभ्य एवं अभाव रखनेवाले इलाकों को जल खनन की ओर घसीटा।”<sup>2</sup> कुइयाँजान में

---

1. 'Water wars' - Vandana Siva - P. 15

2. 'Water wars' - Vandana Siva - P. 24

नासिरा शर्मा ने इसका चित्रण बखूबी किया है “गन्ने और धान में पानी की आवश्यकता अधिक पड़ती है, मगर कम पानी वाली फसलों के किसान भी पानी-पानी की दुहाई दे रहे हैं। ये सारे किसान खुशहाल है। और ....एक वर्ष में कई-कई फसल उगाकर तिजोरी भरना चाहते हैं।”<sup>1</sup> वंदना शिवा की राय में “एक मुखी खेती पानी के बहाव और मिट्टी के जल इकट्ठा करने की क्षमता को खत्म करती है।”<sup>2</sup>

कल्याण भूषण सहाय के अनुसार “नदी और ताल के प्रदूषित हो जाने एवं सिंचाई की उचित सुविधा उपलब्ध नहीं होने के कारण लोग भूजल का आवश्यकता से अधिक दोहन कर रहे हैं।”<sup>3</sup> इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जहाँ वर्ष 1968 में देश में करीब तीन लाख ट्यूबवेल थे, वहीं तीस वर्षों में इनकी संख्या बढ़कर आज साठ लाख हो गई है इसका नतीजा यह हो रहा है कि भारत में भूजल का स्तर तेज़ी से नीचे होता जा रहा है। विशेषकों का मानना है कि जलस्तर नीचे जाने व ज़मीन के अंदर बह रही जल धाराओं के मार्ग बदलने, उनकी गति रुकने में नलकूप आस-पास के दस कुओं का पानी सोख लेता है। वैज्ञानिकों के अनुसार जब नलकूप नहीं थे, उस समय तक देश के कुओं

---

1. कुइयाँ जान - नासिरा शर्मा - पृ. 85

2. Vandana Siva - Water wars - P. 17

3. पर्यावरण विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 32

में बराबर पानी रहता था।”<sup>1</sup> ब्लूगोल्ड के रचयिता मौद बारलो के अनुसार भूमिगत जल खनन के चलते शुद्ध जल में खारा पीनी के मिलने का खतरा है साथ ही साथ यह मिट्टी के जल भंडारण क्षमता को भी स्थायी रूप से कम करेगी।<sup>2</sup> कुइयाँ जान में लेखिका ने नलकूप से आनेवाले पानी के ज़हरीला होते जाने का ज़िक्र किया है “कई जिलों में पानी की जाँच से पता चला है कि नलकूप से आनेवाला पानी पीने लायक नहीं है। भोजपुर जिले में पानी में आरसेनिक (संखिया) की मात्रा बहुत अधिक पाई गई है। जिसका सेवन स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है। अब सारे नलकूप सील कर दिए गए हैं और उस इलाके में टैंकर की सहायता से जनता को सरकार जल उपलब्ध करवा रही है।”<sup>3</sup>

अगर इसी तरह चलता रहा तो भय है कि कहीं और नीचे जाने से इस भूजल में धरातल के अंदर के लवणीय जल का सम्मिश्रण न हो जाए और हमारा भूजल फिर उपयोग के लायक ही न रहे। ‘कुइयाँ जान’ में हँडपाइप के पानी का चित्रण देखिए “कुछ इलाकों में हैडंपाइप लगे, मगर उसमें से लाल रंग का पानी गिरता है, जो धोने-नहाने तक के लिए बेकार है।”<sup>4</sup>

- 
1. दैनिक ट्रिब्यून, 27 मई 1998
  2. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 83
  3. हरिश्ची 2007 मार्च 24
  4. कुइयाँ जान - नासिरा शर्मा - पृ. 84

दुनिया का कोई देश या राज्य ऐसा नहीं है जो पानी की समस्या से जूझ रहा हो, अपने देश के अधिकांश राज्य भयानक जल संकट की चपेट में है। भूमिगत जलस्तर के नीचे हो जाने की वजह हालात तो यहाँ तक खराब हो गये हैं कि न तो पीने के लिए पानी है और न ही कृषि उपयोग के लिए ही पानी है। राजस्थान के सभी जिले पानी की किल्लत का सामना कर रहे हैं इनमें बीकानेर, श्री गंगानगर, चुरन, पाली, जैसलमेर, नागौर, झुंझनू सीकर, बाडमेर, जालौर और जोधपुर जैसे रेगिस्तानी जिलों की तकरीबन एक करोड़ 40 लाख से अधिक आबादी पानी के लिए तरस रही है। यही वह जगह है जहाँ तीन-चार सौ फुट गहरा पानी मिलता है जो स्वाद में सबसे अधिक खारा है। 'कुइयाँजान' में हम देखते हैं कि राजस्थान के लोग "आज से बीस वर्ष पहले यहाँ का हाल यह था कि खेत जोतते हुए अगर प्यास लगती तो गड्ढे में कीड़ा पड़ा पानी जिसमें जानवर का मूत भी मिला होता, उसमें बूर डालकर हम पी लेते थे। बूर सुगंधित वनस्पति है उस घास से बास मर जाती थी।"<sup>1</sup> जैसलमेर क्षेत्र में प्रचलित कथानुसार एक नवविवाहिता सजावट भली प्रकार कर सके सो होली पर स्नान कर लिया, फिर दीवाली पर दुबारा नहा ली। उसकी सास को जब पता चला तो उसने इन शब्दों में उलाहना दी :

---

1. कुइयाँ जान - नासिरा शर्मा - पृ. 116

“आई होली हिनान, आई दियाली हिनान,  
तू लुगाई है कि जलकूमडी”

अर्थात्

होली में नहाय, दीवाली में नहाय  
बहू लगे है जलमुर्गी।”<sup>2</sup>

राजस्थान में भूमिगत जल स्तर कितने नीचे है इसका जिक्र राजस्थानी लोककाव्य ‘ढोलामारू रा दूहा’ में मारवाड़ निंदा प्रकरण में मिलता है मालवणी अपने पिता से कहती है कि “पहिरण ओढ़या से कंबला साठे पुरिसे नीर”<sup>3</sup> अर्थात् - यहाँ के लोगों के पास पहनने - ओढ़ने के लिए कंबल होते हैं और पानी यहाँ साठ पुरुष नीचे यानी 300 से 400 फुट गहरे मिलता है।

हमारे हाइड्रोलॉजिकल सिस्टम को नज़रअंदाज़ करने से स्थिति विस्फोटक हो सकती है। वर्षा का कुछ पानी नदियों और नालों में जाना चाहिए लेकिन उसका अधिकांश भाग धरती के नीचे पहुँचना चाहिए, क्योंकि भू-जल स्तर को बनाये रखना सबसे ज़रूरी है। हाइड्रोलॉजिकल सिस्टम हमें यही सिखाता है। संक्षेप में हमें अपनी पुरानी परंपराओं की

---

1. कुइयाँ जान - नासिरा शर्मा - पृ. 118

2. वही - पृ. 309

ओर लौटना चाहिए। अगर हम अपनी वर्षा का उचित भंडारण नहीं करेंगे तो पानी बर्बाद होगा और संकट गहरा जाएगा। चेरापूंजी इसका ज्वलंत उदाहरण है। हमने अंग्रेजों की जलनीति को वैसे-का वैसे स्वीकार कर अपनी भारतीय जल-व्यवस्था का बेड़ा गर्क कर दिया और कुएँ - तालाब को आउटडेटेड करार देकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है।

पहले हमारे देश में कुओं, बावडियों, जोहड़ों, तालाबों का बोल-बाला था। 'कुइयाँजान' में नासिरा शर्मा ने हमारी पुरानी जलसंचयन परंपरा का विस्तार से चर्चा की है। कहते हैं "सन् 1800 में दीवान पुणैया मैसूर राज देखते थे। उस समय राज्य भर में उनतालीस हज़ार तालाब थे। कहा जाता था कि वहाँ किसी पहाड़ी की चोटी पर एक कतरा पानी गिरे आधा इधर, आधा उस तरफ बहे; क्योंकि दोनों तरफ इन बूँदों को संभालनेवाले तालाब मौजूद थे।"<sup>1</sup> राजस्थान में भी हम देखते हैं कि 500 वर्ष पुरानी तालाब - निर्माण परंपरा का बोलबाला रहा।

राजस्थान में तो व्यास मिश्रजी कहते हैं "बादल कम ही होंगे, मगर समाज ने इनमें समाए जल को इंच या सेंटीमीटर में न देख अनुमानित बूँदों की तरह ही छिटके टाकों, कुंड-कुंडियों, बोरियों जोहड़ों, नाडियों, तालाबों, बावडियों, कुएँ-कुइयों और पार में भरकर उडनेवाले समुद्र को,

---

1. कुइयाँ जान - नासिरा शर्मा - पृ. 103

अखंड हाकड़ों को खंड-खंड नीचे उतार लिया है। ....हमारे जल संजोने की रीति जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमारे साथ चली आ रही है।”<sup>1</sup>

राजस्थान में कुआँ और कुइयाँ है। कुआँ पुल्लिंग कुई स्त्रीलिंग। कुआँ भूजल तक पहुँचने या पाने के लिए बनता है। ‘कुइयाँजान’ में उल्लेख है - कुई - “बरसी बूंद-बूंद रेत में समाकर नमी में बदल जाती है। जब कुई ऐसी जगह पर बनती है तो उसका पेट, उसकी खाली जगह चारों तरफ रेत में समाई नमी को फिर से बूँदों में बदलती है। बूँद-बूँद रिसती है ओर कुई में पानी जमा होने लगता है... खारे पानी के सागर में अमृत जैसा मीठा पानी।”<sup>2</sup>

इस अमृत को पाने के लिए राजस्थानी समाज ने बड़ा मंथन किया है। एक शास्त्र विकसित किया जिसने पानी को तीन रूपों में बाँटा - पहला ‘पालर’ पानी, जो सीधे बरसात से मिलता है। नदी-तालाब में इसे रोका जाता है। दूसरा रूप ‘पाताल’ पानी जो कुओं से निकाला जाता है और तीसा रूप है ‘रेजाणी’ पानी। धरातल से नीचे उतरा लेकिन पाताल में नहीं मिल पाया पानी।

इसके अलावा इस उपन्यास में आहर-पाइन का ज़िक्र है। बिहार के दक्षिणी भाग में आहर-पाइन का चलन था। यहाँ की ज़मीन में नमी

---

1. कुइयाँ जान - नासिरा शर्मा - पृ. 313

2. वही - पृ. 314



बनाए रखने की क्षमता कम है। यहाँ भूजल का स्तर बहुत कम है। यहाँ कुआँ या नलकूप खोदना असंभव है। यह भू-भाग दक्षिण से उत्तर की ओर तेज़ ढलान वाला है। जिसके कारण धरती पर पानी का टिकना मोहाल है। इस इलाके में ढलान चूँकि प्रति किलोमीटर एक मीटर पड़ती है, सो उसी बनावट को हमारे पूर्वजों ने इस्तेमाल कर एक या दो मीटर ऊँचे बाँधो के ज़रिए पोखर बनाये जिन्हें स्थानीय भाषा में आहर कहते हैं। एक लंबे आहर से बड़े आराम में 400 हेक्टेयर से कुछ अधिक ज़मीन की सिंचाई होती थी। इसी तरह पहाड़ी नदियों से खेतों तक पानी पहुँचाने के लिए पड़नों का प्रयोग किया जाता था। यह पड़न 20-30 किलोमीटर तक लंबे होते थे और प्रशाखों में बंटकर सौ से अधिक ज़्यादा खेतों की सिंचाई करते थे।

राकेशकुमार सिंह के उपन्यास 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' में आहर-पोखर का ज़िक्र है - "भुवनपुर से आगे हैं टांड (बंजर)। कंकडीली पथरीली ज़मीन। ऊँचे-नीचे टीले-टाबर और ऊबड़ खाबड़ धरती। आहर-पोखर हो जाये तो कुछ धान-सावाँ का आसरा हो जाये, पर किसी को फिकर हो तब तो?"<sup>1</sup>

---

1. जहाँ खिले है रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ. 43

मनमोहन पाठक के 'गगन घटा घहरानी' नामक उपन्यास में भी पोखर की अहमियत पर ज़ोर दिया गया है। गाँव का पोखर रायबहादुर ने अपने कब्ज़े में रखा है। गाँव सूख रहे हैं। पोखर की महत्ता का ऐलान करते हुए तपेसर कहते हैं "पोखरा गाँव की संपत्ति है। इस पर सब का हक है।"<sup>1</sup> हम नए से नए विकल्प ढूँढने के स्थान पर अपनी पुरानी प्रणाली की तरफ ध्यान दें, क्योंकि वह हमारे इलाके की भौगोलिक बनावट के अनुकूल थी, वरना आप सब जानते हैं कि इन आहरों-पड़नों से मुख मोडकर हम कहाँ पहुँचे।

भूमिगत जल का जो भंडार हमारे पास है, वह कई अरब वर्षों के इस वर्षा चक्र के बाद बना है। अतः हमारे लिए उचित यही है कि इस भंडार के साथ हम ज़्यादा छेड़-छाड़ न करें - ज़मीन से उतना ही पानी निकालें, जितने की पूर्ति वर्षा द्वारा हो जाती है। इससे ज़्यादा भूमिगत जल निकालेंगे; तो आनेवाली पीढ़ियों के लिए पानी के अकाल की सृष्टि करेंगे।

### **जल-जन्य बीमारियाँ**

पेयजल की किल्लत के चलते हमारे देश के अधिकांश लोग प्रदूषित पानी पीने के लिए मज़बूर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जल

---

1. गगन घटा घहरानी - मनमोहन पाठक - पृ. 103

प्रदूषण की परिभाषा निम्नलिखित यों दी है - “प्राकृतिक या अन्य स्रोतों से उत्पन्न अवांछित बाह्य पदार्थों के कारण जल प्रदूषित हो जाता है तथा वह विषाक्तता एवं सामान्य स्तर से कम ऑक्सीजन के कारण जीवों के लिए घातक हो जाता है तथा संक्रामक रोगों को फैलाने में सहायक होता है।”<sup>1</sup> संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी विश्व जल विकास रिपोर्ट में भारत को सबसे प्रदूषित प्रेयजल की आपूर्तिवाला देश कहा गया है। जल की गुणवत्ता के आधार पर भारत विश्व में 120 स्थान पर है।<sup>2</sup> वाशिंगटन स्थित वर्ल्ड वाच संस्थान का आकलन है कि भारत के केवल 42 प्रतिशत लोगों को ही स्वच्छ पेयजल मयस्सर हो पाता है। देश में शिशु मृत्युदर अधिक होने के लिए दूषित पेयजल बहुत हद तक ज़िम्मेदार है।

उद्योगों से उत्पन्न अथवा उनमें प्रयुक्त रसायन जैसे क्लोरीन, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड, अम्ल, जस्ता, सीसा, तांबा, पारा आदि विषैले पदार्थ जल को विषाक्त बनाते हैं। ऐसा पानी पीने अथवा संपर्क में आने से भी स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ते हैं जिससे त्वचा के रोग, श्वास की बीमारियाँ, आँखों के रोग, रक्तसंचार में गड़बड़ी, लकवा आदि व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। संजीव के ‘पाँव तले की दूब’ उपन्यास में एन.टी.पी.सी. प्लाण्ट के गन्दा पानी आदिवासियों के एकमात्र शुद्धजल

---

1. पर्यावरणीय अध्ययन - डॉ. हरिश्चन्द्र सिंह - पृ. 98

2. राष्ट्रीय सहारा, 3 अप्रैल 2003

स्रोत मनसा नाले में बहा देते हैं जिससे माझी हडाम की बेटी सहित कई लोगों में लकवामार बीमारी दिखाई देता है। “बिजली के कारखाने का सारा गन्दा पानी बहता है इसमें। और उससे भी ज़हरीली है हवा.... यह रोग तो मनसानाले के चलते है।”<sup>1</sup> नासिरा शर्मा के उपन्यास ‘कुइयाँजान’ में बाढ़ के गंदे पानी के इस्तेमाल से आँख की बीमारी का चित्रण है “सभी के मुँह में एक ही वाक्य था कि ‘आँख आ गई है।” डॉक्टर का कहना था कि गंदे पानी के कारण इस बीमारी का फैल जाना मामूली बात है।”<sup>2</sup> हैंडपंप के ज़रिए यही बाढ़ का पानी साफ पानी में मिलकर पेट और त्वचा की बीमारी को फैलाता है।

राकेशकुमार सिंह के ‘जहाँ खिले है रक्तपलाश’ में प्लेग के फैलने एवं नायिका सत्यवति के पति सहित कईयों के मृत्यु का दर्दनाक विवरण मिलता है “सत्यवति के ब्याह को अभी महीना भर ही तो हुआ था कि गाँव में फूट पड़ा था प्लेग...। बाढ़ बरसात चली गई थी। पीछे छोड़ गयी थी महामारी।”<sup>3</sup>

प्रदूषित जल के इस्तेमाल से विभिन्न प्रकार की जल-जनित बीमारियाँ भी हो जाती हैं जैसे - हेजा, टायफाइड, डेगु, वायरल हेपेटाइटिस, डायरिया आदि। नासिरा शर्मा के ‘कुइयाँजान’ में बच्चों की मौत का

---

1. ‘पाँवतले की दूब’ - संजीव - पृ. 79

2. ‘कुइयाँ जान’ - नासिरा शर्मा - पृ. 156

3. ‘जहाँ खिले है रक्तपलाश’ - राकेशकुमार सिंह - पृ. 50

विकराल रूप चित्रित किया गया है - “शहर में डेंगु, वायरल हेपेटाइटिस, इन्सेफालाइटिस, डायरिया जैसी बीमारियाँ फैली देख कमाल परेशान हो उठा था, खासकर मासूम बच्चों को, जो पौष्टिक खान-पान न मिलने के कारण बड़ी संख्या में हेपेटाइटिस के शिकार हो मर रहे थे।”<sup>1</sup>

प्रदूषण की वजह जल में फ्लोराइड की मात्रा बढ़ जाती है। हमारे देश के पंद्रह राज्यों एवं राजस्थान प्रदेश के लगभग आधे से अधिक जिलों में फ्लोरोसिस की समस्या है। नासिरा शर्मा के चर्चित उपन्यास ‘कुइयाँ जान’ में इस खतरनाक बीमारी का जिक्र है - “यह रोग अत्यधिक फ्लोराइडयुक्त जल का सेवन करने से होता है। हवा, भोजन, पानी सभी में फ्लोराइड की मात्रा मिलती है। अब हम अपने को कहाँ तक बचाएं।” तभी तो “रीढ़ की हड्डी, शरीर के जोड़ एवं कुलहे की हड्डियों में दर्द व अकड़न का होना, लचीलापन समाप्त हो जाना, कुबड़ापन आ जाना, संज्ञाशून्य होना एवं उदास रहना, भूख कम लगना, प्यास ज़्यादा लगना, हाथ व पैरों की उँगलियों एवं पंजों का कंपकपाना कम उम्र में दाँतों का गिरना, सफेद की अपेक्षा भूरे काले दाँत हो जाना, जल्दी बूढा हो जाना, डायरिया, सिर व पेट का दर्द इन व्याधियों से पीडित है हमारा इलाका डाक्टर साहब।”<sup>3</sup>

- 
1. कुइयाँ जान - नासिरा शर्मा - पृ. 211
  2. वही - पृ. 308
  3. वही - पृ. 308-309

नेशनल इनवायरमेंटल इंजीनियरिंग एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट (नीरी) के वैज्ञानिकों ने अपने बृहद् सर्वेक्षण के बाद बताया कि भारत में उपलब्ध कुल पानी का लग-भग 70 प्रतिशत प्रदूषित हो चुका है।”<sup>1</sup>

## नदी

भारत में जल का महत्वपूर्ण तथा सर्वाधिक प्रभावशाली जलस्रोत नदी ही है। यही सदियों से जलाशय और विशेष तौर पर जीवनोपयोगी जल का एक सशक्त और शुद्ध साधन रही है। मानव जीवन में नदियों की महत्ता इसी बात से आंकी जा सकती है कि विश्व की सभी प्रमुख सभ्यताएँ नदी किनारे ही बसी थी। पुराणों में भी नदी की महत्ता को स्वीकार करते हुए जल को देवतास्वरूप मानते हुए नदियों को जीवनदायिनी कहा गया है। जल के निर्मल प्रवाह से पूर्ण चिरन्तन नदियों को हिन्दू धर्म में ‘माता’ की हैसियत व आदर दिये गए हैं। हिन्दू धर्म के कर्मकाण्ड में सप्त सिन्धु (सप्त नदियों) पंचनदि (पंचनद्य) में प्रवाहित भारत के अजस्रजल स्रोत की ओर संकेत करते हुए उसके अपार पवित्रता की कामना की गई है।

“गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती  
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन सन्निधिम कुरु।”<sup>2</sup>

- 
1. ‘पर्यावरण की राजनीति’ - लता जोशी - पृ. 64
  2. नित्य कर्म पूजा प्रकाश - गीता-प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2060 तीसवाँ संस्करण - पृ. 121

किंतु आज विश्व के अन्य देशों की भाँति ही हमारे देश भी गंगा, यमुना, कावेरी, कृष्णा, गोमती आदि नदियाँ मृत्यु के कगार पर हैं। इसके प्रमुख कारण जल प्रदूषण, वन कटान उससे उत्पन्न भूक्षरण और बृहद बाँधों का निर्माण है।

### **बृहद बाँधों का निर्माण**

पिछले पचास सालों में सरकार ने बड़ी संख्या में बृहद बाँधों का निर्माण किया है और उनमें बिजली का उत्पादन भी हो रहा है। पर अनुभवों ने साबित किया है कि प्रकृति के साथ इतने पैमाने पर छेड़-छाड़ के कई नुकसानदायक असर होते हैं, जिसका पूर्वानुमान संभव नहीं होता। कारण यह है कि राजनीतिज्ञों तथा इंजीनियरों के मिलीभगत से बनते इन बाँधों के निर्माण में दूरदर्शिता का सर्वथा अभाव है और ये योजनाएं प्राकृतिक सामंजस्य तथा जनहितों से कोसों दूर रहती हैं।

### **बाँधों के निर्माण से उत्पन्न प्राकृतिक प्रकोप**

देश की आज़ादी के बाद बढ़ती जनसंख्या की वृद्धि तथा सामान्य जनो की बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सिंचाई के साधनों एवं बिजली की आपूर्ति हेतु बड़े-बड़े बाँध एवं जल विद्युत, परमाणु शक्ति केन्द्रों की स्थापना हुई। लेकिन वर्तमान काल में पर्यावरणविदों की जागरूकता के कारण सरकार की इन सभी दागी परियोजनाओं पर पर्यावरण की दृष्टि

से पुनः मूल्यांकन हो रहा है। पर्यावरण तथा पारिस्थितिक संतुलन को बिगाडनेवाली इन बाँध परियोजनाओं के कई दुष्परिणाम हमारे समक्ष आने लगे हैं - वनों का विनाश, कृषि क्षेत्र एवं जंगलों का पानी में डूबना, ज़मीन का धंसना, जनसामान्य का विस्थापन, प्राकृतिक असंतुलन के तहत अचानक बाढ़ का आ जाना आदि। पर्यावरण एवं मानव जनहानि को देखते हुए भारतीय एवं पर्यावरण वैज्ञानिक इन परियोजनाओं का ज़ोरदार ढंग से विरोध कर रहे हैं।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में मुख्यरूप से बाँधों के परिप्रेक्ष्य में लिखे गये दो उपन्यास हैं वीरेन्द्रजैन के 'डूब' और 'पार'। 'डूब' उपन्यास को 'टिहरी डैम प्रोजेक्ट' के परिप्रेक्ष्य में पढ़ने पर यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि गाँव के माते और मास्टर साहब दोनों और जो शेष रह जाता है वह रामदुलारे को मिलाकर जो तस्वीर उभरती है वह सुन्दरलाल बहुगुणा की है। इस डूब उपन्यास का दूसरा भाग है - 'पार' उपन्यास।

सिंचाई और बिजली दोनों के लिए बाँध का निर्माण ज़रूरी समझा गया। इन दोनों की आपूर्ति इन बाँधों से कितनी हो सकी और देश के पर्यावरण पर इसका क्या असर पड़ा अब इन पर कितने ही अध्ययन और उनके निष्कर्ष सामने आ गये हैं और उससे सबक लेकर हम अपने भविष्य का मार्ग तय कर सकते हैं। बाँधों का सीधा असर स्थानीय जनों पर पड़ता है। बाँधों के निर्माण से न जाने कितने लोग खानाबदोश बन



जाते हैं। जाने कितने वृक्षों की कटाई होती है। बाँधों के निर्माण में लाखों लोग बेघर हो जाते हैं; उनके खेत और मकान पानी में डूब जाते हैं। जहाँ कहीं भी बाँध बने है लोग बेघर और बेरोज़गार हुए है। पता नहीं इन विस्थापितों को रोज़गार देने की योजनाएँ उनको कितनी राहत दे पायी है। बाँधों के कारण विस्थापित हुए लोगों के पुनर्वास पर जो भी अध्ययन हुए है उनसे पता चलता है कि संकट घटे नहीं, समस्याओं से मुक्ति मिली नहीं। अकेले नर्मदा घाटी परियोजना से जो 300 कि.मी. लंबी है। बाबा आमटे के अनुसार “पुनर्वास योग्य लोगों की कुल संख्या कम से कम ढाई से तीन लाख है।”<sup>1</sup>

“इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के द्वारा किए गए 54 बड़े बाँधों के विस्तृत अध्ययन के अनुसार एक बड़े बाँध से औसतन 44 हज़ार 182 लोग विस्थापित हो जाते हैं। इस हिसाब से यदि 3300 बाँधों की गणना की जाए तो गत 50 वर्षों में करोड़ों लोगों को इन बाँधों के कारण बेघर होना पड़ा है।”<sup>2</sup>

तात्पर्य यह है कि 20 प्रतिशत लोगों की, सुख सुविधा और संपन्नता के लिए अस्सी प्रतिशत लोगों पर अत्याचार किया जाता है। यानी

---

1. 'पर्यावरण : विकास और यथार्थ' - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 148

2. दिलचस्प - आदमी जंगलों को मिटाता जा रहा है, राजभाषा भारती, जनवरी-मार्च 2001 - पृ. 93

बहुसंख्यकों पर इसका विपरीत असर होता है, साथ ही पर्यावरण को क्षति भी पहुँचती है। आज़ाद हिन्दुस्तान की 'राष्ट्रीय' सरकार के महज़ एक आदेश ने उस गाँव को झकझोर कर रख दिया। देश के विकास के लिए की गयी अनेक परियोजनाओं की कड़ी में बेतवा नदी के राजघाट पर बाँध बनाने की योजना बनते ही लडैई डूब क्षेत्र में आ गया। यह आदेश निकलने पर लडैई (गाँव) से स्कूल उठ गया मास्साव वहाँ से गये, गज़ट का आना बंद हुआ और हफ्ते में दो बार चक्कर लगानेवाली मोटर का आना भी बंद हो गया। सरकार की इस क्रूरता के प्रति विद्रोह माते के इन शब्दों में झलकता है “हम से तो तुमने छीना ही छीना है। मदरसा छीना, मोटर छीनी, सड़क छीनी, तेंदु पत्ते का रोज़गार छीना, मास्साव छीने.... शाँति छीनी, मेलजोल छीना।”<sup>1</sup>

शहरीकरण तथा औद्योगिक संस्थानों एवं कंपनियों को बिजली पैदा करने के लिए हरे-भरे खेत खलिहानों को मिटाया जाता है। 'डूब' उपन्यास में भी हम देखते हैं कि मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश सरकारों को और वहाँ के शहरों की बिजली की ज़रूरत पूरी करने के लिए राजघाट बाँध परियोजना तैयार की जाती है। शहरीकरण और औद्योगीकरण के लिए गाँवों को उजाड़ना कहाँ की नीति है। इनके प्रति विद्रोह माते के शब्दों में “उस शहर की दीवारें मज़बूत बन सकें, इसके लिए तो इनके घर की भीठ

---

1. 'डूब' - वीरेन्द्र जैन - पृ. 181

मज़बूत नहीं होने दी सरकार ने। उसकी शोभा बढ़ा सके, इसलिए तो अभाहीन किया इनका टपरा। इनके दरवाज़ों पर पर्दे झूल सके इसलिए तो झपट लिया इनके तन का इकलौता चीथड़ा।”<sup>1</sup>

गाँव टूटते हैं, बिखरते हैं, पिसते हैं, गिरते चले जाते हैं और सरकारी प्रचारतंत्र विकास की जययात्रा का यशोगान गाता फैलाता रहता है। चारों तरफ झूठा सरकारी प्रचार का बोलबाला है। अपनी सरकार के प्रति गहरा विश्वास, आत्मीयता राष्ट्रीयता और धीरजवाले एक सौ पाँच वर्षीय माते के मन में भी मोहभंग और निराशा उत्पन्न हो जाती है वे कहते हैं ये सपनों से खाली, तमन्नाओं से बेखबर, जीवन से ऊबे कांतिहीन, माँस मज्जाहीन हाड के ढाँचे कहाँ जाएँगे अब।”<sup>2</sup>

डूब में हम देखते हैं कि सैकड़ों गाँवों के गरीब किसानों एवं मज़दूरों को बेघर और बेरोज़गार होना पड़ता है। लेकिन इन्हें विस्थापित करने की सारी योजनाएँ परास्त हो जाती हैं। या इस पर अमल नहीं की जाती। इसके फलस्वरूप सैकड़ों गाँवों के हरे-भरे खेत और खलिहान नष्ट किए देते हैं जिससे लोगों को पीने का पानी भी नसीब नहीं होता।

देश में कथित विकास का क्रम जब से शुरू हुआ है उसकी मार सबसे ज़्यादा आदिवासियों ने उठाई है। इन वनवासियों की पुश्तैनी ज़मीन,

---

1. डूब - वीरेन्द्र जैन - पृ. 254

2. वही - पृ. 256

टोला और वन देवता लीलने के बाद विकास का तक्षक इनके वजूद को भी डँस रहा है। बहरहाल आज़ादी के बाद हमारे मुल्क के लगभग दो करोड़ आदिवासी विस्थापित होकर जहालत की ज़िन्दगी जीने को मजबूर है। मेधा पाटकर ने बाँधों के खिलाफ लड़ाई छेड़ने का आह्वान करते हुए कहा, “क्या हम यह सब विनाश देखते, निहारते ही रहेंगे? नहीं हम समय को निकल नहीं जाने देंगे। ....बड़े बाँधों के इस खतरे के खिलाफ, इस विकराल चक्र के शिकार बने, कुचले गए आदिवासी, पहाड़ी तथा अन्यगरीबों के घर चूल्हे तक पहुँचकर हम उनका साथ देंगे।”<sup>1</sup>

वीरेन्द्रजैन के ‘पार’ उपन्यास में आदिवासियों की दुर्दशा का चित्रण किया गया है। आदिवासी अपने जंगल के सहारे ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। लेकिन अब वह जंगल, विकास के दौरान गंजे हो चुके हैं - मुखिया कहता है “अब वे दिन नहीं रहे जब हम डाँग के सहारे जीवन गुज़ार देते थे। अँधियाई के कोनऊँ पार की मुठी से ठाँडे होकर देखो, पता चल जाएगा कि डाँग की क्या दुर्दशा हो चुकी है। दूर-दूर तक रूख (वृक्ष) ही नज़र नहीं आते। जाने सब कहाँ बिला गए। आदमी के पेट में समा गए कि बाँध के, कौन जाने।”<sup>2</sup>

---

1. पर्यावरण : विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 145

2. डूब - वीरेन्द्र जैन - पृ. 51

विकास के चलते उनकी अस्मिता मिटती जा रही है। उनकी ज़िन्दगी पर सवालिया निशान लग रहे हैं - “अब ये शहरवाले नदी बाँध रहे हैं। तब प्रलय आएगी, जो अब तक बचा है। वह सब भी स्वाहा हो जाएगा। तब हम कहाँ जाएँगे? कैसे जिएँगे।”<sup>1</sup>

दूसरा सवाल सांस्कृतिक है। यह एक विशेष जीवन पद्धति को नष्ट कर रही है। बाँधों से पर्वतीय और आदिवासी लोग उजड़ रहे हैं जो प्रकृति के साथ समरस होकर सादगी और संयम का जीवन बिताते हुए जी रहे हैं। इन्हें मजबूरन दुनिया के चाल के अनुसार बदलना पड़ रहा है मुखिया के शब्दों में “ज़माना बदल रहा है। जग बदल रहा है। हमरा मन चाहता है कि हम भी बदले ज़माने के संग-संग। पर सब कायदे एक साथ तोड़े नहीं जा सकते, छोड़े नहीं जा सकते। हमें बदलना होगा। पर सब-कुछ एक साथ बदलने से कुछ न बचेगा। ....पुराना हाथ से छूट जाएगा। कुछ हाथ न लगेगा।”<sup>2</sup>

नहर या बाँधों से सिंचाई और उससे होनेवाले खाद्यान्न उत्पादन तथा पर्यावरण पर पड़नेवाले असर पर भूतपूर्व कृषि आयुक्त डॉ. डी.आर. भुँबला मानते हैं - “बाँधों और नहरों से खेती का लाभ दीर्घकाल तक ले पाना नामुमकिन है। उनका अध्ययन बताता है कि सूखे क्षेत्रों में दस-बीस

---

1. डूब - वीरेन्द्र जैन - पृ. 51

2. वही - पृ. 50

सालों में पानी का रिसाव और मिट्टी में खार बन आने का आदेश रहता है। नमीवाले क्षेत्रों में बड़े या मंझोले बाँध मिट्टी और पर्यावरण के लिए उपयुक्त नहीं है।<sup>1</sup> 'पार' में नायक रामदुलारे बताते हैं "इतना बड़ा बाँध पूरा भर भी पाएगा कि नहीं। खासकर सिल्ट की मात्रा और उसकी सफाई के प्रबंध की ठीक से तैयारी नहीं की गई तो बाँध की उम्र कुल कितनी रह जाएगी? शायद उतनी भी नहीं जितने वर्ष इसके बनने में लगने जा रहे हैं। फिर इसके पूरा होने तक एक बड़े क्षेत्र में जो पानी रुक रहा है। उससे दल-दल बनने की नई समस्या सामने आने लगी है। ...मलेरिया और पेट के रोग बढ़ेंगे। दलदल भूमि की क्षरीयता बढ़ायेगा। ज़मीन खेती योग्य नहीं रह जाएगी। बाँध के पानी के साथ जो रेत खेतों तक आती है, वहीं रुक जाती है, वह खेती को उपजाऊ नहीं रहने देगी।"<sup>2</sup>

इससे चौतरफा खुशहाली के बजाय समृद्ध किसानों और अभिजात्य वर्ग के एक छोटे समूह को लाभ पहुँचा है। देश को सूखे से मुक्त करने के बजाय खासतौर से अत्यधिक पानी के उपयोग पर आधारित कृषि पद्धतियों के कारण देश सूखाग्रस्त बन गया है। बाढ़ों को रोकने के बजाय बाँधों ने कई क्षेत्रों को अधिक बाढ़ग्रस्त बनाया है। 'डूब' उपन्यास में भी बाँध के बनने के दौरान आती बाढ़ का ज़िक्र है। माते का कथन देखिए - "इंदिराजी

---

1. शुभु पटवा - पर्यावरण की संस्कृति - पृ. 86

2. वीरेन्द्र जैन - पार - पृ. 126

एक ईंट रख गई थी कि फेंक गयी थी, राम जाने, मगर उस ईंट से बेतवा में जो उफान आया वह जाने कितने गाँव के गाँव लील गया लडैई में पहली बार, हाँ, पहली बार बाढ़ आई थी उस बरस.... तलैया सी नदी और उसमें बाढ़।”<sup>1</sup> ‘पार’ उपन्यास में भी हम देखते हैं कि इसी बाढ़ के दौरान ‘पार’ (पहाड़) में बसे मूसर खेरे (आदिवासी गोत्र समूह) में बाढ़ आने का ज़िक्र है।

इसके अलावा बाँध भूकंप के दबाव को बढ़ा देता है - “टिहरी बाँध की परियोजना रिपोर्ट में जिसे सर्व सामान्य के लिए लंबे अर्से तक एक गुप्त दस्तावेज़ रखा गया, यह स्वीकार किया गया कि ‘यह बाँध मध्य हिमाचल में स्थित है जो कम आयु का पहाड़ है और जिसके पीछे भूकंप का इतिहास है। इसके अलावा बड़े भूस्खलनों का खतरा तो प्रत्यक्ष देख रहे हैं। हिमालय क्षेत्र में बरसात के दिनों में भूस्खलन एक आम घटना है।

बड़े बाँधों की वजह प्राकृतिक संसाधनों मुख्यतः वनों की विविध वनस्पतियों और वन्य जीवन सहित, पूर्ण तबाही हुई है। प्रायः वन संरक्षण कानून को धता बताकर सरकारी तंत्र परियोजना को स्वीकृति मिलने से पहले ही पेड काटना प्रारंभ कर देता है। इसी के साथ पहाड़ी किसानों एवं आदिवासियों को चारा समस्या का भी सामना करना पड़ता है। ‘पार’ में

---

1. वीरेन्द्र जैन - डूब - पृ. 204-205

इसका ज़िक्र है - “बाँध बनानेवाले लडैई से मील दो मील आगे से राजघाट तक की राह से पेड़-रूख काट ले गए। माटी खोद ले गए। ....अब वहाँ चारागाह नहीं बची। ...सो अब सब दिन लडैई के ढोर (मवेशी) यहीं आयेंगे।”<sup>1</sup> इसी के साथ बड़े बाँधों ने नदियों की परिस्थितियों को नष्ट कर दिया है। और नदी के नीचे के क्षेत्र के हज़ारों किसानों व मछुआरों की आजीविका छीन ली है। दलदल और लवणीकरण के कारण लाखों हेक्टेयर भूमि अनुपजाऊ हो गई है।

निष्कर्षतः अरुंधति रॉय की राय में “बड़े बाँध बीते ज़माने की बात है। ये बाँध पर्यावरण के लिहाज से विध्वंसक आर्थिक रूप से अव्यवहारिक और राजनीतिक रूप से अलोकतांत्रिक है।”<sup>2</sup> सुन्दर लाल बहुगुण ने तीखे लफ़्ज़ों में इसका विरोध किया है “हम बड़े बाँधों पर पूर्ण रोक की माँग करते हैं। जहाँ काम शुरू नहीं हुआ है वे परियोजनाएँ त्याग दी जाएँ और जहाँ काम हो रहा है, वहाँ उन्हें स्थगित किया जाना चाहिए।”<sup>3</sup> मतलब बाँध विकल्प नहीं है। अधिकांश मामलों में लोगों की पानी की आवश्यकता को जहाँ पानी बरसता है, वही छोटे-छोटे बाँध और तालाब बनाकर पूरा किया जा सकता है। कृषि और ऊर्जा के लिए पनबिजली योजनाओं को अपनाने की आवश्यकता है।

---

1. पर्यावरण विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 139

2. पार - वीरेन्द्रजैन - पृ. 36

3. नव साम्राज्यवाद के नये किस्से - अरुंधति रॉय - पृ. 217

4. पर्यावरण विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 144



## नदी जोड़ योजना

निरंतर गहराते जल संकट से निजात पाने के लिए नहरों का जाल बिछाकर नदियों को आपस में जोड़ देने की संकल्पना को कारगर और आखिरी विकल्प के तौर पर आज-कल खूब प्रचारित किया जा रहा है। पिछली सरकार ने सुप्रीम कोर्ट के एक सुझाव पर अचानक देश के सूखे और बाढ़ की समस्याओं से निपटने के लिए नदी जोड़ने की योजना बनाई थी। इस योजना के तहत देश की 12 प्रमुख और 46 उप नदी प्रणालियों में से अधिकांश के वेग को मोड़कर जल की कम उपलब्धता वाले बेसिनों तक लिंक नहरों के ज़रिए पानी पहुँचाया जायेगा। 56000 करोड़ की लागतवाली इस महत्वकांक्षी योजना को 2050 तक पूरा कर लिये जाने की तैयारियाँ शुरू हो चुकी है। इस परियोजना का खाका जल इंजीनीयर डॉ. के एल राव ने 1972 में तैयार किया था, जिनका नाम भारत में बड़े बाँधों की नींव रखनेवालों में प्रमुखता से लिया जाता है। नागार्जुन सागर जैसे बड़े बाँधों के वे वास्तुकार रहे और नेहरू मंत्रिमंडल में केन्द्रीय सिंचाई मंत्री भी।

अंतर्घाटी जल परियोजना के निर्माण की तैयारियों के साथ इससे जुड़े विवाद भी शुरू हो गए हैं। भारत जैसे विशिष्ट इकोतन्त्र, विशाल जन-संख्या और सामाजिक बनावटवाले देश में नदियों का प्राकृतिक बहाव समाप्त कर उनकी निरंतरता नष्ट कर देने से नए संकट पैदा हो

सकते हैं। नासिरा शर्मा के उपन्यास 'कुइयाँ जान' में इस नदी जोड़ योजना के नफा-नुक्सान के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। "जहाँ पानी नहीं है, वहाँ सूखा झेल रहे लोगों के लिए नदी का उनके गाँव - कस्बे आकर अचानक बहने लगना एक रोमांचकारी सपना हो सकता है। और उसी को भुनाने की कोशिश में वे लोग एकजुट हो चुके हैं, जिन्हें न यथार्थ से कुछ लेना-देना है और न ही उन्हें नदी के तंत्र, अंतर बेसिन स्थानांतरण, बड़ी-बड़ी नदीघाटी और अंतर बेसिन परियोजनाओं का कोई ज्ञान है।

हज़ारों कि.मी. लंबी नहरों के निर्माण से कितने लोग विस्थापित होंगे। कितने लाख हेक्टेयर वनों का विनाश होगा। सरकार इस तरह का व्यवहार कर रही है जैसे नदियाँ मात्र वाटर चैनल हो और उनमें बहनेवाले अतिरिक्त पानी को कम पानीवाले नदी बेसिनों तक पहुँचा देने का कोई दुष्परिणाम नहीं होगा - 'कुइयाँजान' में इसकी ओर डॉ. कमाल रोशनी बिखेरते हैं - "हम स्वयं कल्पना कर सकते हैं कि जब एक बाँध बनाने से कई लाख लोग विस्थापित हो जाते हैं तो नदियों के जोड़ने से कितने लाख गाँव उजड़ेंगे। उसके रास्ते में आनेवाले कितने ही जंगल काटे जाएँगे। जिससे परिंद तो बेघर होंगे ही, हमारे मौसमों का क्या हाल होगा? इन्हीं ऋतुओं का आदी हमारा शरीर अधिक गर्मी और कम वर्षा के कारण

किन रोगों से ग्रसित होगा? क्या हमारे फल और सब्जियाँ अपने मौलिक रूप में स्थिर रह पाएँगी? ज़मीन का क्या हाल होगा?”<sup>1</sup>

भारत की विविधता भरी भू-बनावट के चलते देश में उपलब्ध कुल पानी का अधिक से अधिक उपयोग कर पाना असंभव रहा है। कहीं ज़रूरत से ज़्यादा पानी है तो कहीं हर साल सूखा पड़ जाता है। सरकार ने दावा किया है कि मानसून के दौरान हिमालयी नदियों में बहनेवाली अतिरिक्त जलराशी को ही नहरों के द्वारा दूसरी नदियों में पहुँचाने की उसकी योजना है और यह सुनिश्चित किया जायेगा कि नदी का न्यूनतम बहाव बना रहे। लेकिन इस वायदे में कोई दम नहीं है। परिस्थिति की विशेषज्ञ सरकार के इस दावे की यह कहकर आलोचना कर रहे हैं कि नदी में अतिरिक्त जलराशी और न्यूनतम बहाव, जैसी कोई चीज़ नहीं होती। विभिन्न मौसमों के अनुरूप नदी का बहाव कम या ज़्यादा होना उसकी पारिस्थितिकी का अनिवार्य हिस्सा है। नदियों में अतिरिक्त बहनेवाली जलराशी में सरकार को बाढ़ और अतिरिक्त पानी नज़र आता है लेकिन यह कथित अतिरिक्त पानी नदी के तल में साल भर में जमा गाद को साफ करने, भूजल का पुनसंभरण करने और मैदानी क्षेत्र में मिट्टी की नयी और उपजाऊ परत बनाने में मुख्य भूमिका निभाता है। बाढ़ जैसी विभीषिका के लिए मनुष्य की हरकतें ज़िम्मेदार है।

---

1. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 406

नदियों को जोड़ने के खिलाफ कई राज्य खड़े हुए हैं। केरल में पंजा अच्चनकोविल-वैप्पार नदी जोड़ योजना का विरोध है। उधर केन बेतवा नदी जोड़ योजना का विरोध बुंदेलखंड में हो रहा है। केरल के मुख्यमंत्री ने विरोध प्रकट करते हुए कहा है कि इससे ट्रावनकोर क्षेत्र की हज़ारों एकड़ वनभूमि डूब जाएगी। तथा कोट्टयम, आलप्पुष्पा एवं पत्तनंतिट्टा सूखे की चपेट में आयेगी। समुद्री जल के प्रवेश के मद्देनज़र कुट्टनाड़ इलाका बुरी तरह प्रभावित होगा। इसी तरह पारिस्थितिक संकट के शिकार हमारे पड़ोसी देश बंगलादेश एवं नेपाल में भी होगा। इसका भी ज़िक्र 'कुइयाँजान' में है - "नदियों के जुड़ने से बंगलादेश पर बहुत बुरा प्रभाव पड़नेवाला है। जो पानी गंगा से मिलता है वह दक्षिण भारत भेज दिया जाएगा और हमारी खेती सूख जाएगी।"<sup>1</sup> तथा "भारत नदियों को जोड़ता है तो भारत नेपाल की बड़ी नदियाँ, महाकाली, करनाली, कोसी एवं गंडक के जल को इस्तेमाल करेगा। जिसके कारण वर्षा ऋतु में नेपाल के निचले इलाके में बाढ़ की संभावना बढ़ जाएगी।"<sup>2</sup>

संक्षेप में नासिरा शर्मा के शब्दों में "नदियों का जोड़ना वह भी भारत जैसे विराट देश में जहाँ की न भौगोलिक स्थिति एक समान है न टोपोग्राफी उचित है। पानी भी अपने अंदर 'जीवन तरंग' रखता है। हर

---

1. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 402

2. वही - पृ. 402

स्थान पर वह वही व्यवहार नहीं करेगा जैसे अपने पुराने तल पर करता था। और न ही भूमि भी वही सहनशक्ति का प्रदर्शन करेगी जो बरसों से पानी के नीचे दबी या सूखी पड़ी रहने की स्थिति में करती आई है।”<sup>1</sup> राजेन्द्र सिंह के अनुसार “जिस दिन लिंकेज ऑफ द रिवर होगा उस दिन लिंक ऑफ द पाल्यूशन और लिंकेज ऑफ द करप्शन’ भी होगा,... मैं कहता हूँ कि पूरे देश में जगह जगह पर समाज की ज़रूरत के अनुसार समाजोन्मुखी जल प्रबंधन करके नदियों को सदानीरा बनाया जा सकता है। जहाँ बाढ़ है वहाँ बाढ़ से मुक्त हो सकते हैं। और जहाँ सुखाड़ है वहाँ सुखाड़ से मुक्त हो सकता है।”<sup>2</sup> निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि नदियों को मिलाने की ज़रूरत नहीं है। अपनी अपनी नदी का जो प्रबंधन है, उसे ही पुख्ता किया जाना चाहिए।

## वायु

वायु हमारी पल-पल की ज़रूरत है। इसके बिना एक क्षण भी जीवित रहना असंभव है। वायु के अभाव में पृथ्वी की हर प्राणी मृत्यु की गोद में आ जाती है। पर्यावरण के विभिन्न घटकों की भांति ही वायु का भी पर्यावरण की सुरक्षा व विनाश में महत्वपूर्ण भूमिका है।

---

1. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 401

2. नया ज्ञानोदय - पानी विशेषांक, अंक 13 : मार्च 2004

## वायु प्रदूषण

वायु में ऐसे तत्वों का विद्यमान होना, जो मनुष्य एवं पर्यावरण दोनों के लिए घातक तथा हानिकारक होते हैं वायु-प्रदूषण कहलाता है। वायु वस्तुतः कई गैसों आक्सीजन (21 प्रतिशत से कम, नाइट्रोजन (78 प्रतिशत), कार्बन डाइ आक्साइड (.003 प्रतिशत) इत्यादि गैसों का मिश्रण होती है। इनके अनुपात में असंतुलन की स्थिति ही वायुप्रदूषण को जन्म देती है। पकिन्स हेनरी के शब्दों में कहे तो - “वायुमण्डल में गैसें निश्चित मात्रा तथा अनुपात में होती है। जब वायु अवयवों में अवांछित तत्व प्रवेश कर जाते हैं तो उनका मौलिक संगठन बिगड़ जाता है। वायु के दूषित होने की यह प्रक्रिया वायुप्रदूषण कहलाती है।”<sup>1</sup> अर्थात् बाह्य वातावरण में एक या एक से अधिक प्रदूषकों की विद्यमानता जैसे धूल, धूम्र, कुहरा, दुर्गन्ध, बाष्प इत्यादि किसी निश्चित समय तक वर्तमान रहकर इतना हानिकारक हो जाँँ जिससे मानव पशु व पेड पौधों के शान्तिमय और सुखमय जीवन को अशान्त व रोगग्रस्त बना दें, वायु प्रदूषण कहा जाता है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में ज़्यादातर उपन्यासों में वायु प्रदूषण का ज़िक्र है।

भारत जैसे गरीब देशों की झोंपड़ी बस्तियों में जहाँ अंगीठियाँ और कोयले लकड़ी पर भोजन बनाया जाता है, कारखानों में जहाँ धुँँ व हानिकारक गैसों से मज़दूरों की सुरक्षा व्यवस्था बहुत कमज़ोर होती है।

---

1. पर्यावरण : वर्तमान और भविष्य - वीरेन्द्र सिंह यादव - पृ. 11

उन्हें वायुप्रदूषण सबसे अधिक झेलना पड़ता है। प्रायः शहरी निर्धन वर्ग की झोंपड़ी बस्तियाँ अधिक प्रदूषणवाले इलाकों में स्थित है या उनके बहुत पास होती है। संजीव के “पाँव तले की दूब” में एन.टी.पी.सी. के प्लाण्ट से निकलनेवाले धुएँ का चित्रण है - “अंधेरे के उस सागर में दिन के झिलमिलाते मोझिया जैसे इक्के-दुक्के गाँव हिलकोरे लिया करते जिनके नसीब में रोशनी का एक भी कतरा न आया था। उनके नसीब में था सिर्फ ज़हरीला धुआँ जो प्लाण्ट की चिमनियों से छहराया करता।”<sup>1</sup> ‘पाँव तले की दूब’ में हम देखते हैं कि सिन्हा साहब जैसे लोग फोसिल इंधनों के ज़्यादा से ज़्यादा खपत से अपनी कंपनी के लिए मुनाफा कमा रहे हैं - वे कहते हैं - “ज़्यादा कोयला ज़्यादा बिजली, ज़्यादा बिजली ज़्यादा कोयला” चाहे परिस्थिति की कोई भी हानि पहुँचे।”

संजीव के उपन्यास ‘धार’ में भी उद्योग द्वारा बनते वायु प्रदूषण का विकराल रूप दिखाई देता है। ज़हर बनानेवाले कारखाने से उडनेवाले धुएँ से खाँसी फैल रही थी। “आगे बढ़ते ही मंगर को किसी दमघोटू गंध का एहसास हुआ... आगे छावनीनुमा कारखाना था जिससे निकलता भूरा-भूरा धुआँ पूरे गाँव पर उड़ रहा था। जहाँ-तहाँ से खाँसने की आवाज़ें आ रही थी।”<sup>3</sup>

---

1. ‘पाँव तले की दूब’ - संजीव - पृ. 28

2. वही - पृ. 69

3. ‘सावधान नीचे आगे है’ - संजीव - पृ. 12

खनन उद्योग के कारण प्रदूषित पर्यावरण का चित्रण संजीव के 'सावधान नीचे आग है' उपन्यास में देख सकते हैं। यहाँ वायु-प्रदूषण उसकी चरम कोटि पर है "आग की नदी दामोदर और धुआँसे का शहर झरिया। कुहासा नहीं धुआँसा! धूल, धुआँ और कुहासा इनसे मिलकर एक शब्द बनता है धुआँसा।"<sup>1</sup>

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' में भी क्रशर के वजह होनेवाले वायुप्रदूषण का ब्यौरा है - क्रेशरों के कारण गाँवों में धूल ही धूल छायी रहती है। पहले के मुकाबले, दमा, तपेदिक कई गुना अधिक फैल गया है। राकेशकुमार सिंह के उपन्यास 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' में प्लेग के कारण मृत्यु के शिकार अनगिनत लोगों की चिताएँ कोयल पर जलाने पर होनेवाले वायु प्रदूषण का जिक्र है - "शमशान की चिताएँ धुआँती तो नदी के ऊपर धुएँ की मोटी परत तैरने लगती। किनारों पर धुएँ का छाता तन जाता।"<sup>2</sup> नासिरा शर्मा के उपन्यास 'कुइयाँजान' में भी वायुप्रदूषण का चित्रण है - "पर्यावरण की भी हमने ऐसी-तैसी कर दी है। बस अब तो धूल, धुआँ और धूप है।"<sup>3</sup>

---

1. 'धार' - संजीव - पृ. 17

2. 'राकेशकुमार सिंह' - जहाँ खिले हैं रक्तपलाश - पृ. 51

3. 'कुइयाँजान' - नासिरा शर्मा - पृ. 411



संक्षेप में आज पृथ्वी के संपूर्ण मानव जिस हवा में साँस ले रहे हैं, वह पूरी तरह से गैस-चैम्बर का रूप ले चुकी है। दुनिया के तमाम बड़े शहर आज वायुप्रदूषण की मारक क्षमता से ग्रस्त हैं।

### वायु प्रदूषण से उत्पन्न इन्सानि समस्याएँ

आज हवा के प्रदूषण के साथ आंतरिक्ष का तापमान भी लगातार बढ़ रहा है। तापमान का बढ़ना संपूर्ण जीव मंडल के अस्तित्व के लिए एक खतरनाक स्थिति की आहट को गहराता है। वैज्ञानिकों द्वारा की गयी भविष्यवाणी में कहा गया है - “समूचे विश्व को अंधकारमय स्थान बना देगा। जहाँ दलदलों और वर्षावाले वनों का स्थान अनिष्टकारी मरुस्थल ले लेगा। भू-क्षेत्र समाप्त हो जायेगा। ऋतुएँ परिवर्तित हो जाएँगी और एक अत्यंत परिवर्तित जल वायु उत्पन्न हो जाएगी। जाहिर है यह सब यदि होता है तो इसका कारण कोई अचानक में की गई गलती नहीं बल्कि सदियों से विकास की अंधाधुंध प्रगती की वजह होगी।

जहाँ तक इस प्रदूषित वायु की लगातार वृद्धि से उपजे खतरे का सवाल है, तो पूरे देश में कुल 30 से 35 प्रतिशत लोग सिर्फ राजधानी दिल्ली में हैं। आयुविज्ञान संस्थान के क्लीनिकल माइक्रोबायोलजी विभाग के अध्यक्ष डॉ. सरमन सिंह का कहना है “वायु प्रदूषण के कारण एक ओर शहरी क्षेत्र में क्रोनिक ब्रोंकाइटिस, सिलिकोसिस तथा हृदय रोग जैसी बीमारियाँ बढ़ रही हैं, तो ग्रामीण क्षेत्रों में ब्रोंकाइटिस और ट्यूबरकुलोसिस

फैल रही है।”<sup>1</sup> सुभाष पन्त के बहुचर्चित उपन्यास ‘पहाड चोर’ की रामकली का बेटा नत्थी जो खदान का मज़दूर था, तपेदिक का शिकार हो जाता है “हफ्ते भर की दौड़ भाग के बाद उसके रोग का पता चला। उसे तपेदिक था। धूल-गर्द और अफीम की लत से वह असाध्य हो चुका था।”<sup>2</sup>

वातावरण सर्वेक्षण के अनुसार “दिल्ली में प्रत्येक पाँचवे बच्चे को आस्थमा की बीमारी है।”<sup>3</sup> 1993 में यह आँकड़ा प्रत्येक बारहवें बच्चे को था। अध्ययन में पाया गया है कि कुछ ऐसी गैसें हैं जो इस तरह की घातक बीमारी को प्रश्रय देती हैं। इनमें से तीन प्रमुख हैं - “एस.पी.एम. (सस्पेंडेड पार्टिकुलेट मैटर), नाइट्रोजन आक्साइड तथा सल्फर आक्साइड की भूमिका है। इन तीनों के लिए ज़िम्मेदार है वाहन और ‘तापगृह’।”<sup>4</sup> इससे लकवे की बीमारी उत्पन्न होती है - ‘पाँव तले की दूब’ उपन्यास में (लकवे की मार) इस बीमारी का ज़िक्र है। पानी तो प्रदूषित है ही “उससे भी ज़हरीली है हवा, चिमनियों का सारा ज़हर फेंकती रहती है इधर।”<sup>1</sup>

भारत जैसे गरीब देश के कारखानों में जहाँ धुँएँ व हानिकारक गैसों से मज़दूरों की सुरक्षा व्यवस्था बहुत कमज़ोर होती, उन्हें वायु प्रदूषण

- 
1. ‘पर्यावरण विकास और यथार्थ’ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 209
  2. ‘पहाडचोर’ - सुभाषपन्त - पृ. 159
  3. ‘पर्यावरण विकास और यथार्थ’ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 210
  4. वही - पृ. 210
  5. पाँव तले की दूब - संजीव - पृ. 79

सबसे अधिक झेलना पड़ता है। प्रायः शहरी निर्धन वर्ग की झोंपड़ी-बस्तियाँ अधिक प्रदूषणवाले इलाकों में हैं या उनके बहुत पास होती हैं। इसलिए इसका असर भी खतरनाक होता है। संजीव के उपन्यास 'धार' में ज़हरीले वातावरण का नज़ारा देखें - बाँसगडा में ज़हर की फैक्टरी है और हवा घूमने पर "खाँसने की आवाज़ें दूर-दूर से उभर रही थीं। मंगर स्वयं अपनी खाँसी पर काबू नहीं पा रहा था, लेकिन जब उसकी निगाह मामा पर पड़ी तो अपना क्लेश भूल गया। मामा को तो सुरसुरी आयी थी, लगा इसी तरह छटपटाकर दम तोड़ देंगे।"<sup>1</sup> इस ज़हरीले माहौल में साँस लेने से बाँसगडा में मामा जैसे कड़ियों को दमे की बीमारी है।

केशर के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'इदन्नमम' में भी धूल-मिट्टी से होनेवाली पारिस्थितिक समस्या एवं दमे की बीमारी का चित्रण है। केशर में काफी तादाद में पत्थर तोड़ने के कारण वायु मिट्टी-धूल से भर जाती है। ऐसे खतरनाक माहौल में रोज़गार करनेवाले मज़दूरों के लिए यह जानलेवा साबित होता है। इन्हें इन धूल-मिट्टी से बचने के लिए कोई सुविधाजनक उपकरण मुहैया नहीं की जाती। वे केवल मुनाफे के लिए लगाए गए उन निश्चेत उपकरणों के समान ही मापे जाते हैं। वे मरे या जिये इससे मालिक को कोई फिक्र नहीं। मालिकों के इस गैर ज़िम्मेदाराना सलूक के चलते मज़दूर एवं वहाँ के

---

1. 'धार' - संजीव - पृ. 20

बाशिंदे दमे जैसी बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। ऐसे मालिकों के लिए इन्सान की ज़िन्दगी की कोई अहमियत नहीं है वे महज़ एक उपकरण मात्र है जो उनकी पूँजी को नफे में तब्दील कर सकता है। मिसाल के तौर पर लछो राउतिन अपने पति की बदहालत को कुछ इस तरह बयान करती है कि “इनकी साँस नहीं जुट रही जिज्जी! का करें हम भी, एरच के डाक धर को पाँच छः बार दिखा आए है। बीस कलदार धर आते है हर बार। फायदा नहीं परता जिज्जी। कहो तो एक ही बात सुना देगा कि धूरा-धंगर में काम मत करो। डस्ट से फेफरे खराब होते हैं।”<sup>1</sup> इसके अलावा डॉ. इन्द्रनील मन्दा से कहते हैं कि केशर्स के कारण पहाड पर अनहाइजीनिक कंडीशन्स है। दमा खाँसी; टी.बी, पीलिया और टाइफाइड डस्ट और गंदे पानी के कारण जल्दी-जल्दी होता है यहाँ।

संजीव के ‘सावधान नीचे आग है’ में भी उन्होंने ता-उम्र कोयला खदानों में काम करनेवाले मज़दूरों का दर्दनाक जीवन का बयान पेश किया है - यहाँ ज़्यादातर मज़दूर बीमार है ऊधम सोचता है कि “एक महीने में 58 किलो कोल डस्ट यानी साल में सात क्विंटल यहाँ हर आदमी फाँकता है। और उन्हें “सैंडजूमो कोनियोसिस’ की बीमारी है जो उनकी अनिवार्य नियति है।

---

1. ‘इदन्नमम’ - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 227

मौजूदा समय में वायुप्रदूषण खतरनाक शकल अख्तियार करता जा रहा है। भौमताप के चलते पृथ्वी पर प्रलय आने के अंदेशे लगाये जाये रहे हैं। तमाम कोशिशों के बावजूद वायु प्रदूषण की स्थिति में भयानक इज़ाफे के संकेत मिल रहे हैं। अगर अब भी हम नहीं जागें तो इसका परिणाम खतरनाक साबित होगा।

### ध्वनि प्रदूषण

आज मानव जीवन शोर से अछूता नहीं है। सुबह से शाम यहाँ तक सोता भी शोर के माहौल में है। असलियत में शोर ज़हरीले रसायनों के मुकाबले कम प्रदूषण नहीं फैलाता। शोर के बारे में तकरीबन एक शताब्दी पूर्व नोबेल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध जीवाणु वैज्ञानिक रॉबर्ट कॉक की वह भविष्यवाणी आज बिल्कुल सटीक बैठती है। रॉबर्ट कॉक ने कहा था कि “एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब मनुष्य को स्वास्थ्य के सबसे बुरे शत्रु, के रूप में क्रूर शोर के साथ संघर्ष करना पड़ेगा।”<sup>1</sup>

सरोजिनी नायडु मेडिकल कॉलेज, आग्रा के प्रोफेसर डॉ. सुशील चन्द्र शर्मा की राय है कि “किसी मुद्दे पर गंभीरता से विचार करने की बात तो दूर रही इसके चलते सामान्य बातचीत भी कर पाना आसान नहीं।”<sup>2</sup> सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार यदि आदमी लगातार अधिकतर शोर

---

1. 'पर्यावरण विकास और यथार्थ' - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 337

2. वही - पृ. 338

शराबे के बीच ही रहता है या इसका आदी हो जाता है तो कहीं कमोबेश तो कहीं स्थायी रूप से वह बहरा हो जाता है। इससे उपजे तनाव से उच्च रक्तचाप तथा हृदयरोग, मानसिक तनाव, सिरदर्द, स्नायु रोग और नाडि तथा रक्त प्रवाह की गति पर भी दुष्प्रभाव पड़ सकता है। बंबई उच्च न्यायालय द्वारा शोर नियंत्रण एवं परीक्षण हेतु गठित एक समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है “महानगर में औसत शोर प्रदूषण मापक इकाई के अनुसार 57 से 105 डेसीबल तक है जबकि गौरतलब है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन की संस्तुति के तहत रात में शोर 45 डेसीबल तथा दिन में यह 5 डेसीबल तक होना चाहिए।”<sup>1</sup>

सबसे ज़्यादा शोर लाउडस्पीकर, सायरन, फैक्ट्री - कारखाने, सडक, रेल यातायात, हवाई ज़हाज़ और उनमें भी लडाकू विमानों, अतिशबाज़ी के अलावा घर-घर में चल रही छोटी-मोटी इकाइयों से होता है, जो रात-दिन धड़-धड़ करती चलती रहती है और जिनके चलते आदमी दूसरे की बात भी सुन नहीं सकता है।

केशर से होनेवाले शब्द प्रदूषण का जिक्र राकेशकुमार सिंह के ‘जहाँ खिले हैं रक्तपलाश’ नामक उपन्यास में हम देख सकते हैं - “चारों पहर पहाड़ों की देह में बिल करती रहती है मशीनें. छेदती रहती है पहाड़ों की छातियाँ। साँझ के आसमान के नारंगी होने तक इन बिलों में भर दिये

---

1. ‘पर्यावरण विकास और यथार्थ’ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ. 338

जाते हैं बारूदी पाउडर। फिर रात भर भड़ाम... भड़ाम.... भड़ाम...। बाँध के लिए तोड़े जाते हैं पत्थर। पत्थरों को गिट्टियों में बदलनेवाले क्रेशर रात भर चलते रहते हैं.... खिर्... खिर्... खिर्...।”<sup>1</sup> इसी के साथ-साथ इसी उपन्यास में दुर्गा की मूर्ति के विसर्जन के दौरान किये जानेवाले शोर शराबे का भी बयान मिलता है - “हँसी - ठहाके - शोर शराबा... सिमरी गाँव के लडकों का जत्था है। कंधों पर दुर्गा की मूर्ति उठाये भसान (विसर्जन) के लिए नदी की ओर ही आ रहे हैं लोग। गंवई बेंड पर परिचित धुन बज रही है। फिल्मी गाने की धुन... अटरिया पे लोटन कबूतर रे...।’ साथ चलती साइकिल के पीछे दबी है कारबैटरी। हैंडल से बंधा है लाउड स्पीकर का चोंगा।”<sup>2</sup> धार्मिक त्योहारों के साथ-साथ इसप्रकार के लाउडस्पीकर का प्रयोग हमारे समय में ज़्यादा बढ गया है। धार्मिक आचरणों के आड में होनेवाले प्रदूषण पर कोई सवाल दर्ज नहीं करता।

मनमोहन पाठक के उपन्यास ‘गगन घटा घगरानी’ में भी धार्मिक आचरणों की आड़ में हो रहे ध्वनि प्रदूषण का ज़िक्र है - “गढ़ी में नवाह यज्ञ हो रहा है। अहर्निश रामधुन बज रहा है। चार-चार लाउडस्पीकरों से चारों दिशाओं में लगातार अखण्ड पाठ पूरा सोनाहातु रामधुन की आवाज़ों से गूँज रहा है।”<sup>3</sup> ये अपना बड़प्पन दिखाने की कोशिश में कतई नहीं

- 
1. जहाँ खिले है रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ. 97
  2. वही - पृ. 41
  3. गगन घटा घहरानी - मनमोहन पाठक - पृ. 172

सोचते कि दूसरों पर इसका क्या असर पड़ता है। गाड़ियों की वजह होनेवाले ध्वनिप्रदूषण का ज़िक्र भी इस उपन्यास में मिलता है। सोनाराम सोचता है “पीच की काली-काली सड़क, गाड़ियाँ निरंतर पों-पों, भों-भों की आवाज़ के साथ डीज़ल पेट्रोल का धुआँ उगलती घुस रही है। मुरहू गाँव में।”<sup>1</sup>

‘पहाड़ चोर’ उपन्यास में लिखा गया है - “झाण्डूखाल के लोग धमाकों से हिलती ज़मीन, घर की दीवारें और टिनों के काँपने के आदि हो गये थे।”<sup>2</sup>

मतलब देर के बिना ध्वनि प्रदूषण पर रोक नहीं लगायी गयी तो आनेवाले समय में देश में बहरों की तादाद में बढ़ोत्तरी होगी। वह हमारे लिए एक और समस्या होगी, इसे नकारा नहीं जा सकता। आवश्यकता शोर से होनेवाले खतरों के खिलाफ जन - जागृति की है। हमारा स्वास्थ्य तभी ठीक रहेगा जब हमें शोर से निजात मिल सकेगी।

## भूमि

पृथ्वी समस्त वनस्पति एवं जीव-जन्तु जगत का आवास स्थल है। पृथ्वी पर ही वनस्पतियों के जन्म हुए। जल का अधिकांश आधार भी

---

1. ‘गगन घटा घहरानी’ - मनमोहन पाठक - पृ. 51

2. ‘पहाड़ चोर’ - सुभाष पन्त - पृ. 299



पृथ्वी ही है। जल और वनस्पतियों के बाद पृथ्वी पर जीव-जन्तु अस्तित्व में आ गए। यानी पृथ्वी सभी जीवों एवं वनस्पतियों का आधार है, माँ है। यही वजह रही है कि धरती को माता, मैया जैसे संबोधन से पुकारा जाता है। वत्सला धरती की विशेषताओं की ओर इंगित करते हुए डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने हिन्दू धर्म में धरती के प्रति आदर भाव का जिक्र निम्न लिखित पंक्तियाँ उद्धृत करके किया है।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।

विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शम में।

इस पर डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने हिमालय की चर्चा के क्रम में लिखा है - “धरती की वन्दना का श्लोक याद आ रहा था, है धरती! समुद्र को कमर में लपेटे हुए हो, पर्वतों के स्तनों से पोषण कर रही हो, तुम्हारे ऊपर पैर रखने को विवश हूँ क्षमा करना। तुम क्षमाशील भगवान विष्णु की पत्नि हो तुम उन्हीं का काम संपन्न करती हो।” पृथ्वी की जीवन और समृद्धिशाली प्राकृतिक संपदा पर रीझते वैदिक ऋषियों ने बड़े आदर से और सगर्व कहा - माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। सन्त कबीर ने पृथ्वी की अद्भुत सहिष्णुता की प्रशंसा करते हुए लिखा है -

खोद खाद धरती सहै काटकूट बनराय।  
सन्त सहै दुर्जन वचन औस सहा न जाए।

इसके अलावा अथर्ववेद के भूमि सूक्त में ऋचाएँ पूर्णरूपेण पृथ्वी से ही संयुक्त है।

### भूक्षरण

पेड़ों के कटने से मिट्टी की ऊपरी परत बहती रहती है। मिट्टी की महत्वपूर्ण ऊपरी परत के लगातार खोने का चक्र 'भूक्षरण' कहलाता है। हम मिट्टी की इस ऊपरी सतह को पैदा नहीं कर सकते। क्योंकि यह परत सूखी पत्तियों और अनगिनत वानस्पतिक तत्वों से तैयार होती है, जो सड़कर मिट्टी में मिल जाती है। विशेषज्ञ यह मानते हैं कि "इस ऊपरी मिट्टी की एक इंच को बनने में लग-भग 500 से एक हज़ार साल लग जाते हैं।"<sup>1</sup> ज़ाहिर है कि लाखों, करोड़ों या अरबों रुपयों से भी हमें यह मिट्टी की उपजाऊ परत नहीं मिल सकती। हमें वही परत बार-बार इस्तेमाल करनी होगी जो हमारे पास मौजूद है। हमें इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि इस मिट्टी का एक कण भी बरबाद न होने पाए। जिन क्षेत्रों में मिट्टी की ऊपरी परत नहीं होती वहाँ वनस्पति भी नहीं होती। आज के ज़्यादातर रेगिस्तान इसी वजह बने हैं, क्योंकि आंधी उनकी

---

1. 'हमारा पर्यावरण' - लार्डक फतेह अली - पृ. 12

ऊपरी उपजाऊ मिट्टी की परत उड़ा ले गई, जिससे वहाँ पेड़ों का उगना बंद हो गया। वहाँ मिट्टी की नई ऊपरी सतह बनाने का इकलौता तरीका किसी अच्छी जगह से ऊपरी मिट्टी को ले जाकर जमाना हो सकता है।

मिट्टी कभी ऊँचाई की तरफ नहीं बढ़ती, वह महज़ नीचे की ओर बहती है और तब तक बहती है जब तक उसे सबसे नीची सतह नहीं मिल जाती। जो कि वाकई में नदी की गहराई होती है। जब तक ये नदी-नाले तेज़ गति से बहते हैं, तब तक यह मिट्टी उनके साथ बहती रहती है। पर जैसे ही यह नदी नाले समतली ज़मीन पर पहुँचते हैं इनकी धारा का वेग कम हो जाता है। इसी के साथ उनके साथ बहती मिट्टी भी नदी की गहराई में जाकर जम जाती है, नतीजतन नदी की सतह थोड़ी ऊपर की ओर उठ जाती है। यों ऊँचे उठने को 'गाद भराई कहलाता है' यह गाद भराई बाढ़ का प्रमुख कारण होता है। संजीव के उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में इसका ज़िक्र है। नदी में बाढ़ आने पर इलाके के किसी गरीब किसान की भूमि उसमें समा जाती है फिर कम होने पर दूसरी तरफ भूमि निकल आती है। "यह नदी भी कम फसाद नहीं पैदा करती है इन दिनों नदी के पेट से... ज़मीन निकलती है।"<sup>1</sup> इस बाढ़ का अहम वजह भूक्षरण से होनेवाली गादभराई है।

---

1. 'जंगल जहाँ शुरू होता है' - संजीव - पृ. 23

भूक्षरण के दो प्रकार साफ दिखाई देते हैं - बीहड़ और पहाड़ी दर्रों का क्षरण। धरती पर वनस्पति की परत जब मज़बूत नहीं रह पाती तब बारिश का पानी वहाँ की मिट्टी को अपने साथ बहा ले जाता है। धरती की ऊपरी सतह बह जाती है, ज़मीन समतल न होने के कारण, जहाँ भी जगह मिली वहाँ पानी तेज़ी से बहने लगता है। नाली-सी बन जाती है, उसी से दर्रें बनते हैं, जो आगे चलकर बड़े-बड़े बीहड़ों में बदल जाते हैं।

देश में पहाड़ या तो खतरे में है या मृतप्राय है। वहाँ की परिस्थितियाँ आज काफी नाजुक हो चुकी हैं। पहाड़ियाँ वनों से आच्छादित रहें तो वर्षा होने पर पत्तियों के पानी के मिट्टी में सोखने में मददगार होते हैं। पेड़ काटने से मिट्टी की ऊपरी सतह बह जाती है। अधिकांशतः चट्टाने ही रह जाती है जिन पर कुछ भी नहीं उग पा रहा है। वर्षा का पानी जमा न होने के कारण पहाड़ी गाँव गर्मियों में पेयजल संकट से भी ग्रस्त है। मिसाल के तौर पर राकेशकुमार सिंह के 'जहाँ खिले है रक्त पलाश' में पहाड़ क्षरण का चित्र यों उकेरा गया है - "मुख्य सड़क और हेहेगड़ा के बीच की कच्ची सड़क की बगल में एक पहाड़ी पड़ती है। पहाड़ी नंगी है... वनस्पति विहीन। तमाम वृक्ष काटे जा चुके हैं। बारिश के दिनों में जब पहाड़ का पानी तेज़ी से धाराओं में नीचे बहता है तो ढेर सारी मिट्टी कट कर बह जाती है।"<sup>1</sup>

---

1. 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' - राकेशकुमार सिंह - पृ. 197

‘काला पहाड’ में भगवानदास मोरवाल लिखते हैं - पहाड के पेड के कटने से पहाड रेतीला बन गया है। पानी का नाम और निशान नहीं। पहाड एवं तलहटी के गाँव रेगिस्तान बनने के कगार पर है। “अब तो दूर-दूर तक जंगल में जहाँ भी नज़र जाती है वहाँ भूरे रंग की चादर ही बिछी दिखाई देती है। ऐसा लगता है जैसे दूर तक रेतीला प्रांतर पसरा हुआ है।”<sup>1</sup>

दरअसल प्रकृति एक उलझा हुआ पर नाज़ुक ढाँचा है, जिसमें हर चीज़ एक दूसरे पर निर्भर है। अगर सिर्फ एक छोटा सा पत्थर भी अपनी जगह से हटता है तो पूरे के पूरे प्रकृति रूपी इमारत का संतुलन बिगड सकता है। घने जंगलों से भरे पहाड जैसा कि हमें पता चला है, कि हमें भरपूर जलापूर्ति, फिर चाहे वह झरनों के रूप में हो या फिर नदियों के साफ जल के रूप में देने का वादा दिये जाते हैं। पेड़ों को काटने से झरने तथा भूमिगत जल खत्म हो जाएँगे, नदियाँ गंदली तथा बाढ़ की ओर अग्रसर होंगी, बंदरगाह गाद से भर जाएँगे। और इससे भी बुरा यह कि हमारे लाख चाहने और किशिशों के बावजूद हम पेड़ों का पुनरोपण नहीं कर सकते क्योंकि हम मिट्टी की ऊपरी परत को वापस नहीं ला सकते। अतः मानव से यही अपेक्षा है कि प्रकृति के अंधाधुंध दोहन से बेहतर है उसका संतुलन बनाए रखना।

---

1. ‘कालापहाड’ - भगवानदास मोरवाल - पृ. 283

## भूकंप

धरती की परत में उत्पन्न होनेवाले कंपन ही भूकंप कहलाते हैं। यह कंपन हल्का हो सकता है; प्रलयकारी तबाही मचानेवाला भी हो सकता है। भूकंप दुनिया के प्रथम परमाणु बम द्वारा छोड़ी गई ऊर्जा की तुलना में हजार गुना ज़्यादा ऊर्जा छोड़ता है। “भूकंप प्राकृतिक आपदाओं में सबसे अधिक विध्वंसक श्रेणी में आते हैं। प्रतिवर्ष भूकंपों से लग-भग 10000 व्यक्तियों की मृत्यु होती है। अनुमान लगाया गया है कि 150 लाख प्राणियों की जाने भूकंप द्वारा ली जा चुकी है।”<sup>1</sup> यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि साढ़े चार परिमाण तक के भूकंप भारत में कहीं भी हो सकते हैं जिनसे इमारतों की मामूली क्षति हो सकती है।

“धरती के भीतर वह बिन्दु जो फटनेवाली भूवैज्ञानिक त्रुटि के पास होता है, जहाँ से भूकंप पैदा होता है, उसे फोकस (Focus) अथवा अवकेन्द्र (Hypocentre) कहते हैं। फोकस के बिल्कुल ऊपर धरती की सतह पर जो बिन्दु होता है, वह अधिकेन्द्र कहलाता है। भूकंप का प्रभाव अधिकेन्द्र के समीप अधिकतम होता है।”<sup>2</sup> मनुष्य भी विभिन्न प्रकार के क्रिया कलापों द्वारा भूकंप पैदा कर देते हैं जैसे कि नए जलाशयों को

---

1. ‘प्राकृतिक आपदाएँ और बचाव’ - हरिनारायण श्रीवास्तव, राजेन्द्र प्रसाद - पृ. 9

2. ‘पर्यावरणीय अध्ययन’ - डॉ. हरिश्चन्द्र सिंह - पृ. 184

भरना, परमाणु विस्फोटकों का भूमिगत परीक्षण या कुओं द्वारा धरती में गहराई तक तरल चीज़ों को पंपों से निकालना।

आलोच्य उपन्यासों में सीधे भूकंप का ज़िक्र नहीं किया गया है। बहरहाल बाँध पर आधारित वीरेन्द्र जैन के 'डूब' और 'पार' उपन्यास निकले हैं। यद्यपि इन उपन्यासों में भूकंप का चित्रण नहीं है मगर वैज्ञानिकों ने अपने खोज द्वारा यह साबित किया है कि बड़े बाँध परियोजनाओं से भूकंप की संभावना सर्वोपरी है। दरअसल ये उपन्यास टिहरी-बाँध परियोजना पर आधारित है। जो कि हिमालय के तलहटियों में निर्माणाधीन है। टिहरी बाँध परियोजना रिपोर्ट के अनुसार "यह बाँध मध्य हिमाचल में स्थित है जो कमआयु का पहाड है और जिसके पीछे भूकंप का इतिहास है।"<sup>1</sup>

सुभाष पन्त के उपन्यास 'पहाड चोर' में भी धरती डोलने का ज़िक्र मिलता है यह उपन्यास पहाड खनन पर आधारित है। खनन से पहाड को पारिस्थितिक क्षति पहुँचती है। जिसका खतरनाक परिणाम आखिर गाँववालों को भुगतना पडता है। उपन्यास में जिक्र है - "झाण्डूखाल जीवन की आशा के संदेश में सुबह के सूरज की प्रतीक्षा कर रहा था... और अचानक धरती डोलने लगी.... उसी के साथ पहाड का सीना टूटकर बिखरने लगा।

---

1. 'पर्यावरण - विकास और यथार्थ' - पृ. 139

2. 'पहाडचोर' - सुभाष पंत - पृ. 354

## भूस्खलन

अधिक वर्षा होने पर पर्वतीय क्षेत्रों में विद्यमान दरारों, छिद्रों आदि के कारण जल चट्टानों के अन्दर प्रवेश कर जाता है जिससे चट्टानों का वह विशेष भाग ढीला हो जाता है तथा अपने स्थान से गुरुत्वाकर्षण आदि कारणों से हट जाता है या नीचे गिर जाता है - “पहाड़ की ढलान से गिरते हुए मिट्टी के ढेर तथा पत्थरों को भूस्खलन कहते हैं।”<sup>1</sup>

भूस्खलन जो तीव्रता के साथ पहाड़ की ढलान से एक विस्तृत निवास्य भूमि पर गिरता है, उससे भयंकर तबाही होती है तथा यदि यह किसी जलाशय में गिरकर जल को रोक देता है, तब बाढ़ आ जाती है सुभाष पन्त के उपन्यास ‘पहाड़चोर’ में चूना पत्थर के खनन के लिए पहाड़ का सीना चीरने के फलस्वरूप हुए इस विनाशलीला का चित्रण बखूबी किया है - “विनाश का तांडव मचा था। जल-थल। पत्थरों का सैलाब। क्रुद्ध सर्पों की तरह फैलता जल। टूटते पेड़। घरों की बैठती दीवारें, कटती धरती। उफनते और कगारों को काटते गधेरे। धारासार बरसता आसमान। बादलों की गरज। बिजली की कडक। हवा की चिंघाड बिखरते हुए कुल - देवताओं के डांडे और गलता हुआ पहाड़। सब कुछ टूट रहा था झाण्डूखाल में।”<sup>2</sup>

---

1. ‘पर्यावरणीय अध्ययन’ - डॉ. हरिश्चन्द्र सिंह - पृ. 187

2. ‘पहाड़चोर’ - सुभाष पन्त - पृ. 354



राकेशकुमार सिंह के 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' में भूस्खलन का चित्रण मिलता है। इस उपन्यास का केन्द्र पलामू है। पलामू एक ज़माने में समृद्ध जंगल था। फिलहाल तमाम जंगल कट चुके हैं और पहाड़ियाँ गंजे हो चुके हैं ऐसे में वर्षा के मौसम में भूस्खलन हो रहा है। उपन्यास में चित्रण है - "मुख्य सड़क और हेहेगडा के बीच की कच्ची सड़क की बगल में एक पहाड़ी पड़ती है। पहाड़ी नंगी है.... वनस्पति विहीन। तमाम वृक्ष काटे जा चुके हैं। बारिश के दिनों में जब पहाड़ का पानी तेज़ी से धाराओं में नीचे बहता है तो ढेर सारी मिट्टी काट कर बहा देता है। छोटी-बड़ी चट्टानें खलित होकर नीचे लुढ़क आती हैं।"<sup>1</sup>

संजीव के 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में भी क्वैरीज़ के चलते पहाड़ों के खतरनाक माहौल का ब्यौरा मिलता है। इसमें खुली खदानों का बयान मिलता है। पांडुई नदी के, इस पार भारत है, उस पार नेपाल। यहाँ पहाड़ धसक रहे हैं 12 से 15 वर्ग किलोमीटर में पत्थरों की क्वैरीज़ है। पत्थर तोड़ने के लिए बारूद का इस्तेमाल किया जाता है। इससे ज्वालामुखी की तरह फव्वारों की शक्ल में काफी तादात में पत्थर और गिट्टियाँ उछलते हैं। इससे पहाड़ धसक रहे हैं। इसी तरह मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' में भी पहाड़ टूटने का वर्णन है।

---

1. 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' - राकेशकुमार सिंह - पृ. 197

## भौमताप

भौमताप यानी पृथ्वी के तापमान में वृद्धि और मौसम में अनचाहे परिवर्तन को कहा जाता है। आज सब कुछ उल्टा-सीधा हो रहा है। मानसून कब आया एवं कब गया कुछ निश्चित नहीं है। इन सब कारकों के पीछे मानव द्वारा प्रकृति का अत्यंत दोहन, पेड़ों का काटा जाना, पहाड़ों का नष्ट होना आदि है जिनके कारण कार्बन डाई आक्साइड गैस की मात्रा बढ़ रही है। फलस्वरूप पृथ्वी पर तापमान की अधिकता हो गयी है।

पृथ्वी पर इस लगातार बढ़ रहे तापमान के लिए मुख्य रूप से ग्रीन हाउस प्रभाव ही उत्तरदायी है। एन्थ्रोपोजेनिक हरितगृह सिद्धांत के अनुसार अगली सदी के माध्य तक धरती के औसत तापमान में '2' से '5' डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि आंकी गई है। तापमान में इस बढ़ोत्तरी का कारण कार्बन डाइ ऑक्साइड का दुगना होना तथा अन्य ग्रीन हाउस गैसों जैसे मिथेन, नाइट्रस आक्साइड, कार्बन डाइ आक्साइड व क्लोरो-फ्लोरो कार्बन्स आदि का वातावरण में शामिल होना है।

“अमरीका के नैशनल सेंटर फॉर एटमॉस्फेरिक रिसर्च के एक अध्ययन के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग यदि ऐसे ही जारी रही तो सन् 2040 तक ध्रुवीय समुद्र में बर्फ के दर्शन दुर्लभ हो सकते हैं।”<sup>1</sup> विश्वव्यापी तापन

---

1. पर्यावरण संजीवनी - जून 2008 - पृ. 40

के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्रसंघ की अंतर्राष्ट्रीय समिति ने अपने कुछ निष्कर्ष दिए हैं वह यह है कि “आगामी वर्षों में विश्व के औसत तापमान में प्रतिदशक 0.3 प्रतिशत की वृद्धि होगी और इस दर से सन् 2100 तक पृथ्वी का तापमान 3.6 डिग्री सेल्सियस और बढ़ जाएगा।”<sup>1</sup> तापमान बढ़ने से ध्रुवों की बर्फ पिघलेगी, परिणामस्वरूप समुद्र की सतह उठेगी और निचले क्षेत्र डूब जायेंगे। मौसम में तेज़ी से परिवर्तन होगा। आनेवाले कुछ वर्षों में समुद्र में भयंकर तूफान और चक्रवात आयेंगे। ऋतुओं का क्रम बदलेगा। समुद्र स्तर बढ़ने के साथ कहीं-कहीं सूखा भी पड़ेगा। मलेरिया, डेगू और हैजा जैसी संक्रामक बीमारियाँ फैलेंगी। मरुस्थलीय क्षेत्रों का विस्तार होगा।

असमय आते सूखा और बाढ़ का चित्रण ‘कुइयाँ जान’ में हम देख सकते हैं। मौसम के इस परिवर्तन से परेशान करैशी कहता है - “पता नहीं क्या हिसाब है - गरमी में सूखा, बरसात में बाढ़।”<sup>2</sup>

विश्व का 75% मीठा जल पर्वतीय ग्लेशियरों में जमा है। इन हिमनदों के पिघलने से नदियों में पानी की आपूर्ति भी धीरे-धीरे कम होती जाएगी व एक समय ऐसा आयेगा जब बारहमासी नदियाँ बरसाती नदियों

---

1. ‘पर्यावरण वर्तमान और भविष्य’ - डॉ. वीरेन्द्रसिंह यादव - पृ. 115

2. ‘कुइयाँजान’ - नासिरा शर्मा - पृ. 84

में परिवर्तित हो जाएगी तथा टैंकर तेल की जगह पानी की ढुलाई करते नज़र आयेंगे।

कुइयाँजान में पानीवाले मास्टरजी इस प्रकरण को सपने में देख रहे हैं “ग्लेशियर सिकुड़ रहे थे। बर्फीली चोटियाँ बर्फ रहित हो रही थीं। समुद्र का गर्भ मचलती मछलियों और तरह-तरह के जीवों से खाली हो चुका था। नदियों का जाल पानी से वीरान मैदानों में फैलता जा रहा था। फिर एकाएक नदियों का फैलाव सिमटने लगा और वे लकीरों में बदल गई, फिर वे बारीक लकीरें भी धरती पर से मिट गई और मरुस्थल फैल गए। यहाँ से वहाँ तक बालू ही बालू टीले ही टीले पानी की कमी और गरमी से उनके हलक में कांटे चुभने लगे और वे लू के थपेड़ों में बंजर धरती पर पानी प्यास... पानी.... पानी कहते घूम रहे थे।”<sup>1</sup>

इसीप्रकार संजीव के ‘सावधान नीचे आग है’ में भी जलप्लावन का जिक्र है - उपन्यास का नायक ऊधमसिंह खान में पानी भरने से मृत्यु के कगार पर खड़ा है। ऐसे में वह सोचता है “खान का पानी खान को ही नहीं पूरी दुनिया को प्लावित कर गया। उसे लगता है, जिस महाप्रलय की आशंका वैज्ञानिक करते आये थे, यही था वह। उत्तर-दक्षिण ध्रुव की बर्फ पिघल गयी। समुद्र फैलकर निगल गया धरती को, इस काले पानी के ताबूत में म्रियमाण आखिरी आदमी है वह दुनिया का।”<sup>2</sup>

---

1. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 92

2. सावधान नीचे आग है - संजीव - पृ. 11

हरित गृह प्रभाव के लिए इंसान खुद ज़िम्मेदार है। इसके लिए मनुष्य की ऊर्जा आवश्यकताएँ और वनों की अंधाधुंध कटाई उत्तरदाई है जिससे वायुमण्डल में कार्बनडाई आक्साइड की मात्रा बढ़ती जा रही है। अतः वनों के विनाश को रोकना और नये वनों का निर्माण आवश्यक है।

### आणव हत्यारों का प्रयोग

संसार की साम्राज्यवादी देशों के आपसी प्रतियोगिता एवं द्वेष की वजह परमाणु युद्ध का खतरा बरकरार है। तनाव और भय की स्थिति मौजूद है। लेकिन यदि नाभिकीय युद्ध हुआ तो निश्चय तौर पर हम कह सकते हैं कि पृथ्वी का कोई भी हिस्सा इस प्रलयकारी दुर्घटना से बचा नहीं रहेगा। सारे वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आणव हत्यारों से उत्पन्न विकिरण के प्रभाव से नष्ट हो जायेंगे और व्यापक पैमाने पर जान माल का नुक्सान होगा। बचे लोग अपंग हो जाएँगे। दो महायुद्ध तो हो ही चुके हैं। यदि तीसरा महायुद्ध होगा तो निश्चित है कि तबाही के बाद पर्यावरण अवश्य मानव के प्रतिकूल बन जाएगा।

महान वैज्ञानिक आलबर्ट आइन्स्टाइन ने परमाणु बम की विनाश लीला का अनुमान कर लिया था और इसकी कल्पना से ही उनकी आत्मा कांप उठी थी। वे जानते थे कि इसका उपयोग संहार के लिए होगा।

बहरहाल वे ता-उम्र परमाणु महाशक्ति की विनाश लीला से दुनिया को अवगत कराते रहे। व निरंतर परमाणु परीक्षणों पर पाबंदी लगाने के कायल थे। वे जानते थे कि वैज्ञानिकों का फायदा उठाकर राजनेता अवश्य अपनी अहं तुष्टि और शक्ति प्रदर्शन के लिए इनका इस्तेमाल करेंगे। तभी तो उन्होंने कहा था - “तृतीय महायुद्ध में परमाणु आयुधों से मानव सभ्यता अधिकांश रूप से नष्ट हो जाएगी और चतुर्थ महायुद्ध तक मानव सभ्यता पाषाण काल में होगी।”<sup>1</sup>

1927 में मूलर नामक जीवविज्ञानी ने घोषणा की थी कि उन ‘ट्रोसोफिला’ या फलमक्खियों में, जिनके पूर्वज विकिरण में रखे गये, आनुवंशिक (पैतृक) असामान्यताएँ पाई गईं और इस घोषणा के बाद अनेक प्रकार के पौधों व प्राणियों में मूलर की खोज की पुष्टि की गयी। अध्ययन के बाद पाया गया कि सभी प्रकार के अधिक ऊर्जा वाले विकिरण अवश्य ही शरीरक्रियात्मक परिवर्तन, गुणसूत्र - परिवर्तन और विशेष परिवर्तन या उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) करते हैं, यदि वे गुणसूत्रों (क्रॉमसॉम) व जीनों तक पहुँचते हैं।”<sup>2</sup> इन्हें बाद में इस अलब्धि के लिए नॉबेल पुरस्कार से नवाज़ा गया।

---

1. ‘प्रदूषण पृथ्वी का ग्रहण’ - प्रेमानन्द चन्दोला - पृ. 74

2. 'Silent Spring' - Rachel Carson - P.

कटे गये जंगल व रासायनिक कारखानों और अणु आयुधों से बिगड़े पर्यावरण पर रोशनी डालते हुए 'गगन घटा घहरानी' में लेखक मनमोहन पाठक कहते हैं "वन तेज़ी से कट रहे हैं। किसिम-किसिम के रासायनिक कारखानों, अणुआयुधों से विश्व का पर्यावरण असन्तुलित होता जा रहा है।"<sup>1</sup> नासिरा शर्मा के उपन्यास - 'कुइयाँ जान' में लेखिका ने जनता की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के स्थान पर परमाणु परीक्षण चलानेवाले राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य किया है। लेखिका कहती है "जन मानस से जुड़ी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जगह परमाणु बम निर्माण और परीक्षण पर धन खर्च करना उसे ज़्यादा तर्क संगत लगाता है।"<sup>2</sup>

### रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग

अधिक से अधिक पैदावार बढ़ाने के लिए खेतों में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग आम बात है और फसलों की सुरक्षा में कीटनाशकों का छिडकाव भी साधारण है। वैज्ञानिकों का दावा है कि इन कीटनाशकों का प्रभाव भूमि पर 10 से 15 वर्ष तक बना रहता है।

मिट्टी एक अतिदुर्लभ संसाधन है। निवास एवं खाद्य पदार्थों की समुचित उपलब्धि के लिए इस सीमित संसाधन को प्रदूषण से बचाना

---

1. गगन घटा घहरानी - मनमोहन पाठक - पृ. 39

2. कुइयाँ जान - नासिरा शर्मा - पृ. 89

आज की महती आवश्यकता हो गयी है। परन्तु आज जिस गति से विश्व एवं भारत की जनसंख्या बढ़ रही है, भूमि को सबके गुज़ारा के लिए ज़रूरत से ज़्यादा शोषण किया जा रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप भूमि की उर्वरता कम होती जा रही है। उर्वरता बढ़ाने के लिए मानव रासायनिक उर्वरकों को एवं कीटनाशकों का जमकर इस्तेमाल कर रहा है। इसके साथ ही पौधों को रोगों व कीटाणुओं तथा पशुपक्षियों से बचाव के लिए छिड़के जानेवाले हानिकारक कीटनाशक तत्व प्राकृतिक उर्वरता को नष्ट करते हैं। इसके प्रयोग से खाद्यपदार्थ विषाक्त होते हैं और यही विषाक्त पदार्थ मानव शरीर में घुसकर बीमारी के कारण बनते हैं। डी.डी.टी. जैसे कीटनाशकों के अंधाधुंध इस्तेमाल से मानव में होनेवाले खतरनाक बदलावों के बारे में रेचल कार्सन ने अपनी मशहूर किताब सैलेंट स्प्रिंग में यो रोशनी डाली है - “पिछले कुछ दशकों से पुरुषों में शुक्लाणुओं की गिनती कम होती जा रही है। हॉर्मोन संबन्धित कान्सर से पीडित महिलाओं की संख्या में नाटकीय वृद्धि दर्ज की गयी है और वे एन्डोमेट्रियोसिस और अन्य शारीरिक गड़बड़ियों की शिकार हो रही है।”<sup>1</sup>

नासिरा शर्मा के मशहूर उपन्यास कुइयाँजान में लेखिका ने इसकी ओर इशारा किया है। लेखिका कहती है कि किसान फर्टिलाइजर इस्तेमाल

---

1. Silent Spring - Rachi Carson - P. xiii



करते हैं बिना सोचे समझे। इशतहार दिखा-दिखाकर इस तरह का बलात्कार करने की प्रेरणा किसानों को दी जा रही है। वह भूमि और मिट्टी के लिए बहुत हानिकारक है। उपन्यास में कुरेशी कहते हैं “अब तरकारियों और फलों में पहलेवाला मज़ा नहीं मिलता। एक दिन की रखी सब्जी दूसरे दिन मुरझा जाती है।”<sup>1</sup>

बगैर इसके लेखिका ने रासायनिक खादों के अंधाधुंध प्रयोग से पानी तक को ज़हरीला बनाये जाने के खिलाफ विरोध दर्ज किया है कि रासायनिक खादों के अत्यधिक इस्तेमाल से ये तत्व धरती के अंदर के पानी में घुल-मिल जाते हैं और पानी को ज़हरीला बना दिया है। भोजपुर जिले में पानी में आर्सेनिक (सांखिया) की मात्रा बहुत ज़्यादा पाई गई है।

भगवानदास मोरवाल के ‘कालापहाड़’ में भी हेलिकोप्टर द्वारा बागों में कीटनाशक डालने का ज़िक्र मिलता है।

अतः ऐसे खतरनाक रसायनों के इस्तेमाल पर रोक लगाने की सख्त ज़रूरत है। नहीं तो यह मानवराशी को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा करेगा।




---

1. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 85

## तीसरा अध्याय

# वनों और जीवजालों के शोषण का प्रतिरोध

## वनों पर मानव के हस्तक्षेप के विविध आयाम

### वन

वन हमारी अमूल्य निधि है। वन संसाधन न सिर्फ पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि इससे तमाम मानवीय अस्तित्व व सरोकार गहरे रूप से जुड़े हुए हैं। वन विश्व में जैव वैविध्य बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा 'जीन बैंक' की तरह कार्य करता है। आदर्श पर्यावरण के लिए यह आवश्यक है कि देश के एक तिहाई हिस्से यानी 33 प्रतिशत भाग पर जंगल हो - "एक बड़ा जंगल अपने आप में परिपूर्ण और समर्थ तभी कहा जाएगा, जब वह खुद को अंतहीन बनाए रहे और नवीनीकरण करता रहे।"<sup>1</sup>

प्रकृति प्रदत्त संसाधनों में वनों ने मानव सभ्यता की रचना में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है इसके साथ सभ्यता के विकास का वर्तमान और भविष्य इन्हीं के इर्द-गिर्द केन्द्रित भी रहा है। भारतीय संस्कृति में वनों की अहमियत को नज़र-अंदाज़ नहीं किया जा सकता।

---

1. नवभारत टाइम्स - 7 अप्रैल 2000

वैदिक काल में वेदों की रचना वनों में रहनेवाले ऋषि मुनियों ने की थी। रामायण काल में स्वयं श्रीराम ने अपने जीवन के बहुमूल्य चौदह वर्ष वन में बिताए थे। श्री. कृष्ण ने वृन्दावन में गायों को चराकर वनवारी और गोविन्द का अद्भुत यश प्राप्त किया और उपनिषद् काल में वनवासी मनीषियों ने संसार की अनेक समस्याओं पर आध्यात्मिक रूप से विचार किया। भारतीय संस्कृति वस्तुतः ग्रामीण संस्कृति और वन संस्कृति रही है। वैदिक काल में वनों को कितना महत्व दिया गया था इसका पता इसी से लगता है कि वैदिक काल की अरण्य संस्कृति को स्वर्णकाल के रूप में निरूपित किया जाता है। उन दिनों वनों की देवी 'आरण्यानी' की आराधना करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य था। भारतीय आर्य परंपरा में अरण्य, तपोवन और कुंज, कई ऋषियों के लिए तपस्थली व कर्मस्थली रहे हैं। वस्तुतः भारतीय संस्कृति वनों, तपोवनों में ही फली-फूली है।

वनों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव महज़ आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। पर्यावरण के क्षेत्र में वनों का काफी दूरगामी प्रभाव पड़ता है। क्योंकि सभी जीवधारियों के लिए वायुमंडल में उचित अनुपात में आक्सीजन की उपलब्धी अत्यंत आवश्यक है। मनुष्य अपनी तमाम क्रियाओं और हरकतों से वायुमंडल के इस संतुलन को हमेशा

तोड़ता रहता है। परंतु वन पुनः उसे संतुलित कर देता है। तमाम कोशिशों के बावजूद विज्ञान अब तक इस क्षेत्र में वनों का विकल्प नहीं खोज पाया है।

पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के अलावा वन जल संपदा को भी संरक्षित रखता हैं। पेड़-पौधे अपनी जड़ों में वर्षा जल को अवशोषित कर प्राकृतिक जल संग्राहक का काम करते हैं। वनों की मिट्टी द्वारा अवशोषित जल भूमिगत जलस्रोतों के स्तर को बनाये रखने में मदद करता है जिससे मैदानी भागों में कुओं का जल स्तर नीचे नहीं जाने पाता। वंदना शिवा के शब्दों में “वनों का हरा-भरा आवरण बारिश और पाला पड़ने (बर्फ गिरना) को रोकता है। यह मिट्टी का संरक्षण करता है तथा मिट्टी के पानी सोखने की क्षमता बढ़ाने में सहायता देता है।”<sup>1</sup>

भारत के सूखा प्रभावित क्षेत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि सूखे से सबसे ज़्यादा प्रभावित क्षेत्र वृक्षरहित क्षेत्र है। इंटरनेशनल यूनियन ऑफ कंज़र्वेशन ऑफ नेचर के सलाहकार डी.एन. मैकवीन ने भारत सरकार को दी गयी अपनी रिपोर्ट में दर्ज किया है कि “अगर इन वनों का आवरण हट गया तो आज मिल रहे पानी का बहुत बड़ा हिस्सा कम हो जाएगा। साल में चार महीने ही पानी मिला करेगा। बाकी दिनों में सूखे की स्थिति हो जाएगी।”<sup>2</sup>

---

1. Water wars - Vandana Siva - P. 17

2. हमारा पर्यावरण - लाईफ फतेह अली - पृ. 60

वृक्षों और जल-थल के अंतर संबन्धों का दूसरा पहलू बाढ़ के बढ़ते प्रकोप से जुड़ा है। नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र में वनों का समुचित आवरण नहीं होने से वर्षा का जल बेरोक टोक नदियों तक पहुँचता है, जो कुछ क्षेत्रों में बाढ़ की स्थिति पैदा कर देता है। थोड़ी-सी वर्षा भी नदियों के जल स्तर को प्रभावित करती है। उत्तर भारत में हर वर्ष बाढ़ आने का एक मात्र कारण नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र का वृक्षहीन होना है। हिमालय की तराईयों में भी हम यह देख सकते हैं। गाँधिजी की शागिर्द मीरा बेन ने एक बार लिखा था - “प्रत्येक साल गुज़र जाने पर भारत के उत्तरी भागों पर बाढ़ से होनेवाली आपदाएँ भी बढ़ती जा रही है। इसका मतलब है कि हिमालय के साथ कुछ गलत घट रहा है। बेशक हम कह सकते हैं कि यह वनों से जुड़ी हुई समस्या है।”<sup>1</sup> आज भी इस चेतावनी को हम नज़र अंदाज़ कर रहे हैं।

वन का संरक्षी आवरण मिट्टी की अपरदन प्रक्रिया को रोकता और नियंत्रित रखता है। इससे नदियों के मैदानों में तथा पर्वतीय क्षेत्रों के तराईवाले इलाके में अपरदित पदार्थों का संचयन (सिल्टेशन) कम होता है। आंधी तथा हवा के तेज़ प्रवाह को रोककर वन इनके द्वारा होनेवाली मिट्टी के अपरदन को भी नियंत्रित रखता है। मलयालम की महान कवि एवं पारिस्थितिक कार्यकर्ता सुगतकुमारी के मुताबिक (सुगतकुमारी मलयालम

---

1. Water wars - Vandana Siva - P. 18

की मशहूर कवयित्री एवं परिस्थितिवादियों में शुमार है।) “अगर बरसाती जंगल नहीं रहे तो भूस्खलन, भूक्षारण एवं सूखा केरल के लिए आनेवाले वक्त में श्राप बन जाएगी।”<sup>1</sup> यह लफ़्ज़ महज़ केरल के लिए ही नहीं पूरे देश के संदर्भ में भी समीचीन है।

खेती के लिए भी दूर-दूर तक घने जंगलों की उपस्थिति ज़रूरी है। मिट्टी और पानी से लेकर खेती के औजारों तक सब कुछ वनों से मिलता है, तिस पर वन न हो तो मिट्टी के पोषक तत्व घटते-घटते बेकार हो जाती है। इसके अलावा यह कीटकों के लिए अवरोधक का काम करता है। एक अच्छे घने जंगल के आसपास होने का मतलब होता है कि प्राकृतिक दुश्मन की निकटता। इस कारण कीटों की संख्या काबू में लाई जा सकती है, क्योंकि जंगल हर प्रकार के पक्षियों, पशुओं, कीट-पतंगों, सरीसृपों और वनस्पतियों से भरा होता है जो एक दूसरे के आसरे से जीते हैं। जंगल आंधी को भी रोकता है।

जलवायु को प्रभावित करने में भी वनों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वन आच्छादित प्रदेशों को न तो अत्यधिक वर्षा से हानी उठानी पड़ती है और न सूखे की मार झेलने पड़ती है। यहाँ ज़मीन की नमी की अत्यधिक बष्पीकरण की प्रक्रिया काफी हद तक नियंत्रित रहती है। इसलिए जलवायु संतुलित रहती है।

---

1. कावु तींडल्ले - सुगतकुमारी - पृ. 31

पिछले कुछ सालों से विश्व के विभिन्न भागों में विकास के नाम पर तेज़ी से वन विनाश हो रहा है। संक्षेप में जंगलों के आकार और गुणवत्ता में कमी होने से हम न सिर्फ अपने देश को दरिद्र ही नहीं बल्कि अपनी पूरी धरती को भी बंजर बना रहे हैं। हमें जंगल से मिली संपत्ति को सिर्फ मुनाफरवारों की तरह नहीं बल्कि संरक्षणकर्ताओं की तरह संभालना चाहिए जिसे हमें आनेवाली पीढ़ी को सौंपना चाहिए।

### **वनों का नाश**

मानव समाज के विकास में जंगलों की महत्ता की इतनी अहमियत है कि इसे संक्षेप में अभिव्यक्त करना नामुमकिन है, यह बिलकुल अतिशय कथन नहीं है कि जंगलों और वनस्पतियों के बिना पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व असंभव है, जंगल की अनंत विशालता एवं वैविध्य बयान करना अत्यंत कठिन है। 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में संजीव ने कुछ इस तरह बयान किया है "कितने-कितने रंगों का अनंत खजाना है यह प्रकृति। धारीदार बाघ, चित्तीदार चीते और हिरण, काले भैंसे, रंग बदलते गिरगीट, रंग-रंग के परिंदे, बाज और गिद्ध। कुछ अपने यौन सहचर को रिझाने के लिए, कुछ शत्रु से आत्मरक्षार्थ। फूलों की रक्षा के लिए प्रकृति काँटों के पहरे बिठाती है। मेंढक को देती है लसदार जीभ। छछुंदर को देती है दुर्गंध युक्त गैस खुद अराजकता पैदा करते हैं अराजकता के बीच बचे रहने के



नुक्ससे भी। इसका अपना आदिम विधान और अपना ही आदिम राग। राग घृणा, हिंसा पर पल-पल बदलते रंग।”<sup>1</sup>

परंतु आज ये मात्र अपनी विनाश गाथा सुनाने लायक शेष बचे हैं। जॉन एवं डर्कनवाल्ड जैसे भूगर्भवेत्ताओं का मानना है कि “पहले पृथ्वी का लगभग 40 प्रतिशत भूभाग वनों से अच्छादित था।”<sup>2</sup> परन्तु वनों के उपभोग में मनुष्य इतना विनाशकारी रहा कि आज वे घटकर 27 प्रतिशत से भी कम भूभाग में शेष बचे हैं। संसार के वे सभी प्रदेश, जहाँ समुचित तापमान है एवं पर्याप्त वर्षा होती है अथवा जिन क्षेत्रों में बर्फ पिघलकर वहाँ की मिट्टी को यथेष्ट नमी प्रदान करती है, सदैव वनों से आच्छादित रहे हैं। परंतु अपने विकास क्रम में मनुष्य 33 प्रतिशत वन क्षेत्रों का निर्ममतापूर्वक विनाश कर चुका है। भूमध्य सागरीय, पूर्व एशियाई तथा मध्यपूर्व के देशों के मानसूनी एवं शीतोष्ण प्रदेशों में वनों की अनियोजित कटाई की गयी है। अनुमान है कि “विश्व का मात्र 42485 लाख हेक्टेयर भूभाग आज वन से आच्छादित रह गया है।”<sup>3</sup>

वनों का सबसे ज़्यादा दोहन तना के लिए किया गया है आनेवाले वर्षों में भी वनों से प्राप्त होनेवाली प्रमुख सामग्री यही होगा। आज भी

---

1. जंगल जहाँ शुरू होता है - संजीव - पृ. 178

2. नवभारत टाइम्स - 7 अप्रैल 2000

3. पर्यावरण विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्र रावत - पृ.सं. 76

भवन निर्माण उद्योग में तने का व्यापक इस्तेमाल होता है। राकेशकुमार सिंह के उपन्यास 'जहाँ खिले है रक्तपलाश में' तना के लिए जंगल कटान की ओर उन्होंने रोशनी डाली है। "पलामू का आधे से अधिक भाग बंजर पठार है। कभी यहाँ भी जंगल था। ....यहाँ के जंगल अब शहरों में जा बसे हैं दरवाज़ों, खिडकियों, शहतीरों, केबिनटों, सोफासेटों और डाइनिंग टेबलों की शकल में।"<sup>1</sup> मनमोहन पाठक के उपन्यास 'गगन घटा घहरानी' में भी भवन निर्माण के लिए जंगल कटान का ज़िक्र है। अफसर लोगों के मकान बनते हैं तो उसके लिए भी उम्दा लकड़ी सोनाहातु के घने जंगल से काटकर ले जाते हैं। उसकी रखवाली करनेवाले अफसर ही उसे चोरी से काटकर ले जाते हैं।

विकास के नाम पर भी जंगल की अंधाधुंध कटाई होती है। केन्द्र सरकार ने पूरी ज़मीन के 33 प्रतिशत क्षेत्र में वन लगाने की बात की है। अब जबकि वन राज्य के विशेष क्षेत्र में आता है राज्य अपने यहाँ इसे किस तरह लागू करते हैं यह उस राज्य के ऊपर निर्भर करता है। खुले तौर पर कई राज्य पुराने घने जंगलों से ज़्यादा-ज़्यादा मुनाफा, कम समय में देनेवाले उद्योग जैसे खनन, पत्थर तोड़नेवाली मशीने तथा जल-बिजली परियोजनाओं को लगाना चाहती है। इन तथाकथित विकास गतिविधियों के फायदे, खासतौर पर नौकरी और पैसे के लिहाज से आम आदमी को

---

1. जहाँ खिले है रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ. 65

बड़े आकर्षक दिखाई देते हैं और स्वाभाविक तौर पर वोटर को प्रोत्साहित करने में ज़्यादा काम आते हैं, जबकि घने जंगलों को बचाने के फायदे सिर्फ ज्ञानवान और दूरदर्शी लोगों की ही समझ में आता है।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में विकास के लिए जंगल के अंधाधुंध दोहन के कई मिसाल देखे जा सकते हैं। 'धार' उपन्यास में संजीव ने नायिका मैना के द्वारा दिखाया है कि खनन उद्योग के चलते जंगल से दाहसंस्कार के लिए भी लकड़ी मिलना नामुमकिन हो जाती है। पंडित द्वारा स्लीपर दिलवाने की बात पर मैना आगबबूला होकर कहती है "कआँ-कआँ दिलवायेगा आप चोरी का स्लीपर, सौतालों का सब जंगल चर कर तो चिक्कन कर दिए? अब है कआँ लकड़ी कि धरम बचे? जिस सौताल परगना में जंगल ई जंगल था हुआ अब लाश फूँकने को लकड़ी नई? सब सौताल को कबर दिया जा रहा है तो हमारा बाप का भी कबर होगा।"<sup>1</sup> 'सावधान नीचे आग है' में संजीव ने दिखाया है कि किस कदर कोयला खनन के लिए जंगलों की तबाही मची हुई है यहाँ तक कि बेजुबान निरीह जानवरों के चरने तक के लिए जंगल शेष नहीं रह गया है। देखिए - "पहिले चरे के जंगल रहल, अब कहाँ रहि गइल? अब तो जे-बा-से कोइला और कंकरीट के जंगल फैलते चला जाता।"<sup>2</sup>

---

1. 'धार' - संजीव - पृ. 73

2. 'सावधान नीचे आग है' - संजीव - पृ. 13-14

संजीव ने अपने उपन्यास 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में दर्शाया है कि झारखण्ड के डोकरी जैसे आदिवासी बहुल इलाके में नेशनल थर्मल पाँवर कॉरपोरेशन के कदम रखने पर वहाँ के प्राकृतिक जंगल को किस कदर बेरहमी से बरबाद किया जा रहा है। उन्होंने वनों के पेड़ों के आतंक का वर्णन कुछ इस तरह से किया है कि “बजरी के वन विभाग की सड़क घने जंगल तक चली गई थी, जहाँ शाल ही शाल खड़े थे पत्तों के कान खड़े किए हुए कि पता नहीं “आगन्तुक की कुल्हाड़ी किस पर गिरनेवाली हो।”<sup>1</sup>

देश में बाँधों की झड़ी लगा दी गयी है। प्रस्तावित जल-बिजली परियोजनाओं के अपूरणीय नुकसान के खिलाफ कई उपन्यासकारों ने आवाज़ बुलंद की है। यह बाँध पूरा होने तक हमारी वन संपदा, वनस्पति और अन्य प्राणियों की जो हानी हो चुकेगी उसकी पूर्ति कब, कैसे, किससे हो सकेगी। प्राकृतिक वनों की संरचना एक जटिल प्रक्रिया है। हज़ारों वर्ष का विकास उन्हें वनस्पति वैविध्य देता है। यह बहुमूल्य वन और जैविक संपदा होती है। कृत्रिम रूप से रोपित वनों में यह बात आ नहीं सकती है। कम समय के फायदे के लिए कुदरत के खूबसूरत और अद्वितीय तोहफे को नुकसान पहुँचाने के विरुद्ध उपन्यासकार की नाराज़गी के उद्गार हम 'पार' उपन्यास में देख सकते हैं। इसमें राजघाट बाँध के निर्माण के लिए

---

1. पाँव तले की दूब - संजीव - पृ. 111

वनों को निर्ममतापूर्ण विनाश किया जा रहा है। देखें “हम नए वन लगाएँगे। पुराने वनों और वनस्पतियों की जिसे कोई फिक्र नहीं, वह नए वनों का डंका पीटते नहीं थकती।”<sup>1</sup> राकेशकुमार सिंह के ‘जहाँ खिले हैं रक्तपलाश’ में भी उपन्यासकार ने बाँध के लिए जंगल कटान का जिक्र किया है कि जहाँ दिन में भी सियार और भेड़िये घूमते थे। वहाँ बाँध के काम शुरू होने के बाद रेडियो झनझनाने लगे हैं।

जंगल सरकारी माना जाता है। पुराने ज़माने में कूप के कूप ठेकेदारों को नीलाम कर दिए जाते थे - खास-खास पकी हुई लकड़ियों को काटकर उसका व्यापार करने के लिए। सरकार को भी एक मुश्त आय हो जाती थी पर ठेकेदार अपने लाभ और कटाई की सुविधा के लिए एक तरफ से जंगल काट-काटकर साफ कर देते थे। कौन देखने जाता रेंजर, फॉरेस्टर, डी.एफ.ओ, कंज़रवेटर की मुट्ठियाँ गरम रहती और वे कान में तेल डालकर सोए रहते। मनमोहन पाठक के उपन्यास ‘गगन घटा घहरानी’ में सरकार एवं अधिकारियों की छत्रछाया में होनेवाली जंगल की लूट का चित्रण किया गया है - “जंगल खुल रहा था। हर साल कट-कट कर जंगल छोटा हुआ जा रहा था।”<sup>2</sup>

---

1. पार - वीरेन्द्र जैन - पृ. 131

2. गगन घटा घहरानी - मनमोहन पाठक - पृ. 126

चारे व इंधन के लिहाज़ से भी जंगल-जंगल लूट मची है। बाँध के कथित विकास के चलते अवाम को अनगिनत आफतों का सामना करना पड़ रहा है। 'पार' में उपन्यासकार वीरेन्द्रजैन ने बाँध के चलते उभर आती चारा समस्या का भी चित्रण किया है। बाँध की वजह लडैई के चारा गाह तबाह हुआ तो लडैई के मवेशी 'पार' के मूसल खेरे (आदिवासी गोत्र समाज) में आ गये। मुखिया की चिंता के अभिव्यक्ति कुछ इस तरह से हुई है "बाँध बनानेवाले लडैई से... राजघाट तक की राह से पेड़ रूख (वृक्ष) काट ले गए। माटी खोद ले गए। ...जब वहाँ हरियाली बची ही नहीं तब सब दिन लडैई के द्वार यही आएँगे, हमरी डाँग में, हमरे खेरे में।"<sup>1</sup> यहाँ हम देखते हैं कि चारे के लिए हरा-भरा जंगल विनाश के कगार पर है।

इसके अलावा चोरी एवं आग लगने तथा झूम की खेती (जगह बदलकर खेती) आदि से जंगल को तबाह किए जा रहे हैं। आग लगाकर जंगल को तबाह करने का ज़िक्र 'पहाड चोर' उपन्यास में मिलता है। उपन्यास का पात्र धीरे साबरा को मारने के लिए होटल पर आग लगाता है। इससे पहाड के जंगल में भी आग लग जाती है। इससे काफी नुकसान होता है। राकेशकुमार सिंह के 'जहाँखिले है रक्तपलाश' में पलामु में आज भी कुछ जगहों पर झूम की खेती जारी रहने का ज़िक्र किया गया है।

---

1. पार - वीरेन्द्रजैन - पृ. 36

मौजूदा समय में वन-विनाश के विकल्प के रूप में सामाजिक वानिकी को सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया जा रहा है। हालही में केन्द्र सरकार के द्वारा ऐलान किया गया कि “वे छः वर्षों के अन्तर्गत छः अरब हेक्टेयर अपचयन के शिकार वनों का पुनरुत्पादन करेंगे। श्री. जयराम रमेश के (केन्द्र पर्यावरण मंत्री) अनुसार “हमारा उद्देश्य बागों (plantation) के माध्यम से वनों का पुनःस्थापन नहीं बल्कि वनों का पुनरुत्पादन है।”<sup>1</sup> लेकिन विदेशी पेड़ों को लगाकर कृत्रिम रूप से रोपित वनों में प्राकृतिक वनों की जैव विविधता नहीं आ सकती। सरकार जब भी किसी परियोजना के लिए वन विनाश करते हैं तो वनों का पुनः रोपण करके पर्यावरण के सुधार की बात करती है। इसका मज़ाक उडाते हुए ‘पार’ में लेखक वीरेन्द्र जैन पूछते हैं कि “जब बाँध के लिए ही पैसा नहीं है तो पर्यावरण सुधार क्या हवा से करेंगे।”<sup>2</sup>

संक्षेप में बढ़ती हुई व्यावसायिक व सामाजिक ज़रूरतों को देखते हुए लगता है कि वन संपदा पर लगातार दबाव बढ़ रहा है। सूखे और बाढ़ की बढ़ती घटती घटनाओं से पर्यावरण असंतुलन के खतरे स्पष्ट होने लगे हैं। ऐसे में विश्व सभ्यता को स्थायी बनाये रखने तथा प्राकृतिक संपदा के विशाल भंडार के हिफाज़त के लिए वनों की सुरक्षा तथा खाली क्षेत्रों में वृक्षारोपण की प्रक्रिया को तेज़ करने की सख्त ज़रूरत है।

---

1. The Hindu - Thursday, July 16, 2009

2. पार - वीरेन्द्रजैन - पृ. 125

## वृक्ष

समूचे विश्व का हलाहल अपने कंठ में धारण कर भगवान शंकर 'नीलकंठ' बने। वृक्ष उसी भाँति मानवजन्य विषों को पीकर शुद्ध प्राणवायु का वरदान देकर भी मृत्युंजयी बन खड़े हैं। वृक्ष जब पृथ्वी को अपने आप से ढक लेते हैं तो वे पर्यावरण के सजग प्रहरी के रूप में प्रदूषण को दूर भगा देते हैं।

वैदिक काल से भारत में वृक्षों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। गीता के विभूति योग में स्वयं भगवान कृष्ण ने कहा है कि - अश्वत्थः सर्व वृक्षाणाम्<sup>1</sup> (वृक्षों में मैं अश्वत्थ हूँ)। "महाभारत में कहा गया है कि वृक्षदान देनेवाले की कई पीढ़ि तर जाती है।"<sup>2</sup> श्वेतश्वरोपनिषद में - वृक्षों को साक्षात् ब्रह्म मानते हुए कहा गया है कि "10 कुंजों के बराबर एक बावड़ी है 10 बावड़ियों के बराबर एक तालाब, 10 तालाबों के बराबर एक पुत्र, एवं 10 पुत्रों के बराबर एक वृक्ष।"<sup>3</sup> स्कन्दपुराण और कठोपनिषद के अनुसार पीपल के पेड़ की जड़ में ब्रह्मा, तने में विष्णु एवं टहनियों में शिव का वास माना गया है। पुराणों में पीपल के वृक्ष को इतना ऊँचाई इसलिए दी गई है कि वह दिन - रात, चौबीसों घंटे ऑक्सीजन का

- 
1. भगवद्गीता - 10.25
  2. धर्म और पर्यावरण - पृ. 65
  3. वही



उत्सर्जन करता रहता है। हमारे ऋषि मुनियों ने शायद पर्यावरण संरक्षण के लिहाज़ से ही उनकी पूजा अर्चना का विधान बनाया होगा।

### वृक्षों का नाश

भौतिकवादी सुखों की लालसा ने प्रकृति के दोहन को प्रगति का पर्याय बना दिया। उसका फल यह निकला कि वनाच्छादित क्षेत्र कम होता गया और जो बचा है, वह भी निम्न श्रेणी का है। वनों की कटाई, शहरीकरण, उपभोगी जीवन शैली व गलत प्राथमिकताएँ ऐसे घटक हैं, जिनके कारण विश्व विषैली व हानिकारक गैसों का जमावड़ा हो गया है। इन्हीं के कारण 'ग्रीन हाउस प्रभाव' व अल्बिडो प्रभाव जैसी समस्याएँ मुँह बाएँ खड़ी हो गई हैं।

अल्बिडो प्रभाव : वृक्ष सूर्य विकिरण से प्राप्त ऊर्जा को इस तरह बदल देता है कि अन्य प्राणी उसका उपयोग कर सकें। यही कारण है कि वृक्षों व वनस्पतियों को प्राथमिक उपभोक्ता कहा जाता है। वनाच्छादित क्षेत्रों के अभाव में सूर्य विकिरण से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग नहीं हो पाता तथा अधिकतर विकिरण का परावर्तन हो जाता है। हिम क्षेत्रों से यह परावर्तन लगभग 85 प्रतिशत, मरुक्षेत्रों से 30 प्रतिशत तथा कृषि भूमि से 20 प्रतिशत होता है। जबकि वनाच्छादित क्षेत्रों से यह परावर्तन महज़ 7-8 प्रतिशत होता है। जिन क्षेत्रों में अधिकतम सूर्य विकिरण का उपयोग

वृक्ष कर लेते हैं, वहाँ पैदा हुआ ऊष्मीय सन्नयन वर्षा को बढ़ावा देता है। चूँकि ज़्यादातर गहन वनक्षेत्र भूमध्य रेखा के दोनों ओर एक चौड़ी पट्टी के रूप में है, इन के क्षेत्रों के उष्ण कटिबन्धीय सदापर्णी वनों की बेतहाशा कटाई सारे विश्व की वर्षा प्रणाली को प्रभावित करती रही है।

ग्रीन हाउस प्रभाव - कार्बन-डाई-आक्साईड गैस पृथ्वी के वायुमण्डल का मात्र 0.03 प्रतिशत भाग है। यह गैस सूर्य विकिरण से प्राप्त ऊर्जा के अवशोषण में मदद करती है। सूर्य जनित ऊर्जा को कार्बन-डाई आक्साईड जिस प्रकार अवशोषित कर पृथ्वी के वायुमण्डल को गरमाती है उसे ही 'ग्रीनहाउस प्रभाव' कहते हैं। कार्बन परमाणु सूर्य की पराबैंगनी किरणों को सोख कर पृथ्वी के तापमान में ऊष्मा बढ़ाती है। औद्योगिक विकास से पूर्व यह क्रिया पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 15 डिग्री सेंटीग्रेड बनाए रखती थी परन्तु अब वायुमण्डल में कार्बन-डाई-आक्साईड की अधिकता पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि कर रही है। "इस वृद्धि की गति को देखते हुए सन् 2030 तक यह मात्रा दुगुनी हो जाएगी। इस प्रक्रिया के होते 'ग्रीन हाउस' प्रभाव बढ़ेगा जिससे पृथ्वी का औसत तापमान 7 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ने की संभावना है। इससे बड़े पैमाने पर ध्रुवीय हिम पिघलने से समुद्री तट में बसे कई द्वीपों के डूब जाने की संभावना है।

कई कारणों से हमारे देश में वृक्षों का नाश हो रहा है। हिन्दी के समकालीन उपन्यासकारों ने इसकी गहरी चर्चा अपने उपन्यासों में की है। सबसे पहले हम खनन से होनेवाले पेडकटान पर गौर करेंगे। खुदाई का पहला काम उस जगह के पेड़ पौधों को काटना और ऊपर की मिट्टी को हटाना है। यह उनके लिए महज़ फालतू का बोझ है। सुभाष पन्त के उपन्यास 'पहाड चोर' में दिखाया है कि पहाडी इलाके का छोटा सा गाँव झाण्डूखाल में चूना पत्थर की खुदाई शुरू होने से वहाँ पर्यावरण की कितनी तबाही हुई है। केसर अपनी माँ परसनिया से पूछती है कि "खदान के धमाकों से पहाड की छाती टूटती है, पेड़ों के तने काँपते हैं, उनकी जड़ें उखडती हैं। ....फिर भी तू कहती है कि गाँम खुसाल होरा।"<sup>1</sup> संजीव के 'धार' उपन्यास में भी खनन के फलस्वरूप होनेवाले वृक्षों के नाश एवं नंगी पहाडियों का ज़िक्र मिलता है।

तथाकथित विकास परियोजनाओं के तहत होनेवाले वृक्षों के नाश का चित्रण संजीव के 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में है। डोकरी के नेशनल थर्मल पवर कॉरपरेशन के वजह वहाँ की वृक्ष संपत्ति की निर्ममतापूर्ण तबाही हुई है - "ऊँची नीची लाल पठारी ज़मीन पर दूर दूर छितराए शाल महुआ, करिन्द और सिहारे के हरे-भरे पेड़, कुछ किशोर, कुछ पौधों की शकल में ज़मीन से निकलते हुए पर करीब आने पर पता चलता है कि

---

1. पहाडचोर - सुभाष पन्त - पृ. 180

इनसे कहीं ज़्यादा संख्या उनकी है जिनकी जड़ों के चिकने अवशेष अभी भी उनके अतीत के अस्तित्व की गवाही दे रहे थे।”<sup>1</sup>

बड़ी बिजली परियोजनाओं के तहत भी हज़ारों हेक्टेयर के पेड़ कटते-लुटते हैं। हम बड़े बाँधों से होनेवाले फायदे पर बहस करते हैं पर नुकसान को नज़र अंदाज़ कर देते हैं। बाँध में पानी भरने से पहले पूरी संभावना रहती है कि पेड़ों की लकड़ियों को काट लिया जाय पर अगर ये सदाबहार जंगल रहते तो लगातार बड़ी मात्रा में लकड़ियों और अन्य जंगली उत्पादों का उत्पादन होते रहते। संजीव के ‘पार’ उपन्यास में पहाड़ में बसे आदिवासी राउतों की ज़िन्दगी का बयान मिलता है। उनकी ज़िन्दगी ही इन जंगलों व पेड़ों के सहारे चलती है। उन हरे-भरे पेड़ों के खतम हो जाने का दर्द मुखिया के लफ़्जों में मुखर है - “दूर-दूर तक रूख ही नजर नहीं आते। जाने सब कहाँ बिला गए। आदमी के पेट में समा गए कि बाँध के, कौन जाने ऐसे में हमारी जैसी जातियाँ न बदलें तो भूखों मरेंगी। दर-दर भटकेंगी, कहीं एक कौर न मिलेगा, कहीं कोई ठौर न मिलेगा।”<sup>2</sup> इसी तरह जलावन और चारे के लिए भी कोई भी वैकल्पिक व्यवस्था न होने की दशा में वे पेड़ों को ही काटते हैं। जंगल का नाश करते हैं। इसका ज़िक्र - ‘पार’ (वीरेन्द्रजैन) व जहाँ खिले है रक्तपलाश उपन्यासों में मिलते हैं।

---

1. पाँव तले की दूब - संजीव - पृ. 111

2. ‘पार’ - वीरेन्द्रजैन - पृ. 51

प्राकृतिक आपदाओं आँधी, भूस्खलन, आग आदि से भी वृक्षों का नाश होता है। सुभाष पन्त के उपन्यास 'पहाड़ चोर' में आँधी से होने वाले वृक्षों के नाश का दर्दनाक चित्रण किया गया है - "आँधी विनाश पर उतारू हो गई थी। पेड़ों की शाखाएँ क्रन्दन करते हुए टूट रही थी। लेकिन आँधी इतने से ही संतुष्ट न होकर वृक्षों को जड़ से उखाड़ने को आमदा थी।"<sup>1</sup> धीरी द्वारा लगायी गयी आग परसन्निया अपनी आँखों से देख रही है "भीत चकित जंगले से बाहर झाँका तो उसे आग का पहाड़ दिखाई दिया। जिसकी लपटें कुद्ध सर्पों की तरह लपलपा रही थी। ...झाण्डुखाल के पेड़-पौधे, घर और पहाड़ भी आग की विकराल, लपटों में नंगे दिखाई दे रहे थे।"<sup>2</sup> इसी तरह भूस्खलन से होनेवाली वृक्षनाश का चित्रण भी प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। इसके अलावा लकड़ी चोरी का ज़िक्र भी मनमोहन पाठक के 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' व संजीव के 'धार' में मिलता है।

वायुमण्डलीय कार्बन-डाई-ऑक्साइड प्रतिवर्ष 25 अरब टन की औसत से बढ़ रही है, वृक्ष इस कार्बन-डाई-आक्साइड को प्राण वायु आक्सीजन में बदल सकते हैं किन्तु प्राकृतिक वन क्षेत्रों की कमी से यह स्थिति विकट हो गई है। संक्षेप में इसका एक मात्र हल है बचे हुए वनों की देखभाल तथा बड़े पैमाने पर मानव रोपित वनों का विकास इसके लिए

---

1. पहाड़चोर - सुभाषपन्त - पृ. 349

2. वही - पृ. 129

वृक्षों का चुनाव अत्यंत महत्वपूर्ण है। शीघ्र बढ़नेवाले वृक्षों के साथ, अधिक पर्णपुष्प व आच्छादित क्षेत्रवाले स्वदेशी वृक्षों का रोपण वैज्ञानिक दृष्टि से इस स्थिति के सुधार में अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

### जानवरों और पक्षियों का नाश

आज वन विनाश के चलते हमारे बेशकीमती जैववैविध्य का ह्रास हो रहा है। जैव विविधता के विशेषज्ञ हारवर्ड के प्रोफेसर एडवर्ड विल्सन ने हाल में लिखा था कि “जिस तेज़ी से आज जैव विविधता की तबाही हो रही है उसकी मिसाल पृथ्वी के पिछले 6 करोड़ वर्षों के इतिहास में नहीं मिलेगी।”<sup>1</sup> विश्व संसाधन रिपोर्ट के अनुसार “पिछले 400 वर्षों में 58 स्तनधारी जीवों की प्रजातियों व 115 पक्षियों की प्रजातियों के लुप्त होने के रिकार्ड उपलब्ध हैं। स्तनधारी जीवों की 12 प्रतिशत प्रजातियों व पक्षियों की 11 प्रतिशत प्रजातियाँ वर्ष 1990 में संकटग्रस्त पायी गयी।”<sup>2</sup>

वन विनाश के चलते आज देश व विदेश में कई वन्य जीव लुप्त होने के कगार पर हैं। आऊरोक्स डोडो, स्टेल्स सी कारू, ग्रेट ऑक, टारपेन, क्वेग्गा, पिलोरी मस्कैट एवं पैसेंजर पिन जैसे पशु-पक्षी अब नई

---

1. राष्ट्रीय सहारा, 6 जून, 1998

2. वही

पीढ़ी को देखने के लिए नहीं मिल सकेंगे। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई से देश के विभिन्न इलाकों के साथ-साथ हिमालय क्षेत्र के भी वन्य जीव बड़ी तादाद में लुप्त होने के कगार पर है। वन्यजीव विशेषज्ञों की नज़र में “हिमालय माउंटेन कोयल लुप्त हो गई है। हिमालयी क्षेत्र में हिम तेंदुआ और कस्तूरी मृग पर लुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है।” आंध्रप्रदेश की गोदावरी घाटी का जर्डन कोरसर तथा महाराष्ट्र के पश्चिमी घाट का पक्षी जंगल आउलेट सन् 1918 में आखिरी बार देखा गया था।<sup>1</sup> इन पक्षियों को खोजने के लिए सभी राज्यों में अभियान चलाए गए मगर निकामियाब सिद्ध हुए।

भारतीय संस्कृति में भी जैववैविध्य को अत्यधिक महत्व दिया गया है। जीव-जन्तुओं के विनाश (हिंसा) को हमारे यहाँ अक्षम्य कहा गया है और सूर्यास्त होने के बाद पेड़-पौधों को छूने तक की मनाही है। तैत्तरीयोपनिषद् में कहा गया है कि “ईश्वरीय आत्मा से आकाश की, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी ने पेड़-पौधों को जन्म दिया, अन्न उपजाया और सभी जीव-जन्तुओं को जीवन दिया। इसप्रकार इस सृष्टि में प्रत्येक जीव-जन्तु की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है।”<sup>2</sup> इसप्रकार भारतीय

---

1. पर्यावरण विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्ररावत - पृ. 86

2. पर्यावरण और जलप्रदूषण - निशांतसिंह - पृ. 179

संस्कृति व दर्शन में ईश्वर, प्रकृति तथा सभी जीव-जन्तुओं में आपसी संबंध स्थापित किया गया है।

सन् 1994 के एक अध्ययन के अनुसार जिस रफ्तार से पृथ्वी की प्रजातियाँ आज लुप्त हो रही हैं, उस हिसाब से तो अगले 25 वर्षों में ही पृथ्वी की 15 प्रतिशत प्रजातियाँ लुप्त हो जाएँगी।”<sup>1</sup> अनेक प्रजातियों के लुप्त होने या संकट ग्रस्त होने का एक प्रमुख कारण है बड़े पैमाने पर वन विनाश। इससे होनेवाले पशुपक्षियों के नाश का चित्रण कई उपन्यासों में मिल जाता है। राकेशकुमार सिंह की एक बहुचर्चित उपन्यास है - ‘जहाँ खिले है रक्तपलाश’ - प्रस्तुत उपन्यास ‘पलामू’ पर आधारित है। पलामू नोमैन्सलैंड, डार्क डिस्ट्रिक्ट.... मृत्यु की उपत्यका आदि वैकल्पिक नामों से जाने जाते हैं। पहले यहाँ जंगल ही जंगल था अब कटते-लुटते विलुप्त होने के कगार पर है। जंगल के मिटते नाम-ओ-निशान के साथ-साथ वन्य जीव भी अपनी आखिरी साँस गिन रहे हैं - “मृत्यु की इस उपत्यका पर विलुप्त होते चौपाये हैं। कटते वन हैं, घटते वन्य जीव। कल-कारखानों के कचरे से संकट में है जलचर।”<sup>2</sup> इसी तरह मनमोहन पाठक के ‘गगन घटा घहरानी’ में भी वनों के तेज़ी से लुप्त हो जाने एवं वन्य जीवों के वंशनाश का ज़िक्र है - “वन तेज़ी से कट रहे हैं। ...वन्य

---

1. जहाँ खिले है रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ. 96



प्राणियों की संख्या में हास हुआ है। कई नस्लें तो बिल्कुल समाप्त हो गई है।”<sup>1</sup>

फिलहाल चंद जानवर ऐसे भी है जिनके शरीर के अंगों की वजह इन बेजुबानों को मौत के घाट उतार दिए जाते हैं। वजह है उनके शारीरिक अंग बाज़ार में बेशकीमती है। जंगली इलाकों पर इनकी चोरी आम बात है। ‘जहाँ खिले है रक्तपलाश’ में बाँध की पृष्ठभूमि में होनेवाले इस वंश हत्या का चित्रण है “बाँध के काम के बहाने कई लोग ऐसे भी आए है इनके सामान का जाँच करोगे तो इनके बेग-बकसिया में से क्या निकलेगा पता है.... कत्या, हाथी का दाँत, बाघ का हाड... हरिण चीता की छाल।”<sup>2</sup>

शिकार द्वारा भी वन्य जीवों का खात्मा किया जाता है। मनमोहन पाठक के उपन्यास ‘गगन घटा घहरानी’ में चीते को अपने रौब बढ़ाने के लिए पालने का ज़िक्र है। रायबहादुर जगधारी राय सोनाहातु के ज़मीन्दार है। वे चीते को पालते थे। उनके चंगुल से चीता बच जाता है। तो राय बहादुर, चीफ कंसरवेटर और एस पी साहब मिलकर उसका शिकार कर लेते हैं। यहाँ हम देखते हैं कि अपने रौब दिखाने के लिए जानवर को पाल लेते हैं और जब बच जाते है तो उनके मनोरंजन का शिकार हो जाता है।

---

1. गगन घटा घहरानी - मनमोहन पाठक - पृ. 38

2. जहाँ खिले है रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ. 88

इसके अलावा संजीव के 'धार' और सुभाष पन्त के उपन्यास 'पहाड चोर' में खनन से होनेवाले पारिस्थितिक विनाश और उसके शिकार जंगली जीवों व पक्षियों का चित्रण मिलता है।

### अनावृष्टि

लंबे समय तक होनेवाली घनघोर वर्षा या मूसलधार वर्षा को ही अनावृष्टि या अतिवृष्टि कहा जाता है। भारत में साधारण तौर पर माणसूण में ही अनावृष्टि या अतिवृष्टि होती है। इसके अलावा चक्रवात से भी अनावृष्टि या अतिवृष्टि होती है। ग्रीनहाउस प्रभाव द्वारा भी दुनिया के गर्म क्षेत्रों में अनावृष्टि होने की संभावना जतायी जा रही है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि की ओर इशारा किया गया है।

राकेशकुमार सिंह के उपन्यास जहाँ खिले हैं रक्तपलाश में अनावृष्टि का विकराल रूप दिखाई देता है - "रात भर गरज गरज कर बरखा हुई थी मानो छलनी हो गया था आसमान। रामजी के धनुष की तरह आकाश के पूरबारी छोर से पश्चिम कोण तक भक्क-भक्क मलक रही थी बिजली।"<sup>1</sup> नासिरा शर्मा का उपन्यास 'कुइयाँजान' में भी अतिवृष्टि के विकराल रूप पर रोशनी डाली गयी है जो शहर (इलाहाबाद) को अपने कब्जे में

---

1. जहाँ खिले हैं रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ. 12

दबोचती है - “हफ्ते-भर बरसे पानी ने शहर को तहस-नहस करके रख दिया था। कई इलाके पानी से घिरकर टापू बन चुके थे। रोज़ खाने-कमानेवालों का फाका शुरू हो गया था।”<sup>1</sup>

सुभाष पन्त के उपन्यास ‘पहाड चोर’ में आंधी के नतीजतन अतिवृष्टि व खतरनाक मंसर का चित्रण मिलता है “आंधी के साथ काले बादल आए और वे पगलाए हाथियों की तरह चिंघाडते हुए आसमान की छाती पर दौड़ने लगे। बिजली कडकने लगी फिर पानी बरसने लगा जिसकी बूँदें ज़मीन पर गिरकर आतिशबाजी के अनार की तरह फूलों में बदल रही थीं। फिर धरती पर लोहे के छरों की तरह बजते और चोट करती मोटी-मोटी बूँदों में फिर तेज़ और फिर मूसलधार, मानो सारा समुद्र ही झाण्डुखाल के आसमान में फैलकर बरस रहा हो।”<sup>2</sup>

कभी-कभी थोड़े समय तक होनेवाली घनघोर वर्षा के कारण भी बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

## बाढ़

अन्य प्राकृतिक अपदाओं की भाँति बाढ़ ने भी अनादिकाल से मानवजाति को भयभीत किया है तथा जानमाल की अपार क्षति पहुँचाई

- 
1. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 148
  2. पहाडचोर - सुभाष पन्त - पृ. 350

है। बाढ़ एक जटिल परिघटना है क्योंकि यह विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न होती है तथा अनेक रूपों में लोगों को प्रभावित करती है। रोस्ट वेट के अनुसार (1968) “बाढ़ एक ऐसा उच्च जलप्रवाह है जो कि किसी नदी के प्राकृतिक अथवा कृत्रिम तटों को पार कर जाता है।”<sup>1</sup> “बाढ़ एक ऐसी विशाल जलराशी है जिसमें ऐसे स्थान डूब जाते हैं जो कि सामान्य परिस्थितियों में जलमग्न नहीं होते।”<sup>2</sup>

हमारे देश में हर साल बाढ़ आती है। आसाम एवं मेघालय तथा अन्य उत्तर-पूर्वी राज्यों में सबसे पहले और सबसे ज़्यादा वर्षा होती है। इसलिए ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे के अनेक इलाके सबसे पहले बाढ़ पीड़ित हो जाते हैं अनेक घर बह जाते हैं। खेतों के ऊपर की मिट्टी बह जाती है, जो कि उपजाऊ मिट्टी होती है और बहकर नदी की तली में जमा होती जाती है, जिसके फलस्वरूप नदी की तली ऊपर उठ जाती है और नदी जितना पानी अपने भीतर ले सकती है, नहीं ले पाती। ज़्यादा पानी किनारों को तोड़कर उनके ऊपर से बहता हुआ बाढ़ की स्थिति पैदा कर देते हैं। बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बंगाल के कुछ भाग गंगा और उसकी सहायक नदियों की बाढ़ से अक्सर पीड़ित हो जाते हैं।

धर्मेन्द्र शाही के अनुसार “नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र में वनों का समुचित आवरण नहीं होने से वर्षा का जल बेरोक-टोक नदियों तक

---

1. प्राकृतिक आपदाएँ और बचाव - हरिनारायण श्रीवास्तव राजेन्द्रप्रसाद - पृ. 120

2. वही

पहुँचता है। जो कुछ क्षेत्रों में बाढ़ की स्थिति पैदा कर देता है। थोड़ी सी वर्षा भी नदियों के जल-स्तर को प्रभावित कर देती है। उत्तर भारत में हर वर्ष बाढ़ आने का एक मात्र कारण नदियों के जलग्रहण क्षेत्र का वृक्षहीन होना है।”<sup>1</sup> बाढ़ का ज़िक्र चंद समकालीन उपन्यासों में मिलता है। आगे उस पर चर्चा करेंगे। ‘जहाँ खिले है रक्तपलाश’ में राकेशकुमार सिंह ने ‘जलगाँव’ में बाढ़जन्य आपदा का चित्रण किया है। हर दूसरे-तीसरे साल अनावृष्टि-अतिवृष्टि की मार झेलते हैं पलामु के पठार। कोठिलवा पहाड़ से कोयल नदी तक लगातार ढालान है। सबसे नीचा गाँव जलगाँव। ज़रा भी बढ़ियाती है नदी, तो बाढ़ का पहला शिकार होता है जलगाँव। कोयल जो गंगा की सहायक नदी है उसमें हुई बाढ़ का नज़ारा देखिए - “कोयल की बाढ़ भी आती है तो तडपती उछलती आती है। घंटों वर्षा के बाद गाँव तक पहुँचती है बाढ़। जब जंगल-पहाड़ों का पानी रेलता है कटने लगते है आर-किनार। डूब जाती है दोनों तरफ की तमाम चट्टानें। दोनों किनारे छूने के बाद लबालब भरी नदी एकदम शाँत दिखने लगती है, पर ज़रा सी उंगली डालो तो पूरे आदमी को खींच ले बाढ़....।”<sup>2</sup>

नासिरा शर्मा के चर्चित उपन्यास ‘कुइयाँजान’ में भी बाढ़ की दहशत भरे माहौल का चित्रण मिलता है। ट्रांज़िस्टर से खबरें आ रही है

---

1. हस्तक्षेप - 5 जून 1994

2. जहाँ खिले है रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ. 20

कि “नदियाँ अपने खतरे के निशान को पार कर रही है। सडकें पानी में डूबी है और कई जगहों पर पेड़ों के भारी मात्रा में गिरने से यातायात की गति अवरुद्ध हो चुकी है। कई स्थानों पर बसें उलटने की भी खबरें थीं।”<sup>1</sup> आँधी एवं भूस्खलन से होनेवाली बाढ़ का चित्रण सुभाष पन्त के उपन्यास ‘पहाड चोर’ में मिलता है। ‘धार’ जिसमें झाण्डुखाल की आत्मा बसती थी। जो पहाड खनन के दौरान हुए पारिस्थितिक तबाही से विलुप्त हो गई थी। फिर से लौट आई थी। मगर इस आँधी से उसका “सौम्य चेहरा टूट गया वह खदान से बने गड्ढों विवरों में बिलबिलाते जल दबाव से प्रचंड - उच्छृंखल बरसाती नाले में बदल गई और उसका विद्रोही पानी तटबंध को तोड़कर क्रुद्ध सर्पों की तरह फुफकारते हुए गाँव में घुस गया।”<sup>2</sup>

वैज्ञानिकों के अनुसार “2040 तक अन्तरीक्ष में हरितगृहवातकों की तादाद दुगुनी हो जाएगी और इस सदी के आखिर तक आते-आते तिगुनी हो जाएगी। इस सदी में हम जलवायु में होनेवाले खतरनाक परिवर्तन जैसे, असहनीय गर्मी एवं मण्सून में अतिवृद्धि, चक्रवात, खतरनाक बाढ एवं सूखा, हिमनदों का सिकुडन आदि के गवाह बनने जा रहे हैं।”<sup>3</sup> नासिरा शर्मा के उपन्यास ‘कुइयाँ जान’ में इस जलवायु परिवर्तन और

- 
1. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 145
  2. पहाडचोर - सुभाष पन्त - पृ. 354
  3. [www.mainaksworld.co](http://www.mainaksworld.co)

उससे होनेवाले बाढ़ और सूखे का ज़िक्र किया गया है - “पता नहीं क्या हिसाब है - “गरमी में सूखा, बरसात में बाढ़।”<sup>1</sup>

संक्षेप में WWF के विश्व जलवायु परिवर्तन कार्यक्रम के निदेशक जेन्निफर मोरमन के अनुसार “द्रुतगति से होनेवाले हिमालयी हिमनदों का सिकुडन पहले नदियों के पानी में बढ़ोत्तरी करेगी जिससे बाढ़ का दहशत बढ़ेगा।”<sup>2</sup> संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार “भौमताप के मद्देनज़र मुंबई, चेन्नै जैसे समुद्री तटों पर बसे भारत के महानगर जलमग्न होने की संभावना है।”<sup>3</sup> निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अगर वक्त रहते नहीं चेते तो हमें बहुत बड़ी तबाही का सामना करना पड़ेगा।

## सूखा

सूखा एक प्राकृतिक विनाशकारी परिघटना है। सूखे का अर्थ है, दीर्घ समय तक बहुत कम वर्षा अथवा वर्षा बिल्कुल न होने की हालत सूखे की प्रचंडता को नमी की कमी की डिग्री से, समय तथा प्रभावित क्षेत्र के विस्तार द्वारा मापा जाता है। यदि सूखा कुछ समय के लिए पड़ा है तो इसे सूखा काल या आंशिक सूखा कहते हैं।

- 
1. कुइयॉजान - नासिरा शर्मा - पृ. 84
  2. [www.mainaksworld.com](http://www.mainaksworld.com)
  3. ”

जनसाधारण के लिए सूखे की स्थिति वर्षा की असामान्य कमी के कारण उत्पन्न होती है। कृषक के लिए सूखा का अर्थ है जलाभाव के कारण फसल में कमी होना। एक जल विज्ञानी के लिए सूखे की स्थिति उस समय दृष्टिगोचर होती है जब जलागारों का जलस्तर सामान्य से नीचे गिर जाता है। योजनाकारों एवं प्रशासकों को सूखा का आभास तब होता है जब अर्थव्यवस्था पर वर्षाभाव का असर पड़ता है। कई क्षेत्रों में सूखा दूसरे क्षेत्रों की तुलना में ज़्यादा प्रचंड होता है। प्रलयकारी सूखा 15<sup>0</sup>-28<sup>0</sup> अक्षांश पर उन क्षेत्रों पर पड़ता है जो दुनिया के स्थायी शुष्क मरुस्थल क्षेत्रों की सीमा पर स्थित हैं।

अमर्त्य सेन की प्रसिद्ध स्थापना है कि “जहाँ लोकतंत्र होता है, वहाँ अकाल नहीं पड़ते।”<sup>1</sup> शायद अकाल न पड़े मगर सूखा तो पड़ ही सकता है। तीन साल तक लगातार सूखा पड़े तो अकाल जैसी स्थिति पैदा हो जाएगी। राजस्थान का हाल यही है। इस बदहालत का ब्यौरा कुइयाँजान उपन्यास में नासिराशर्मा ने हू-ब-हू किया है। “राजस्थान के कुल सत्ताईस जिलों के चार हज़ार आठ सौ देहातों में से चार हज़ार दो सौ गाँवों के लगभग तीन करोड़ से ज़्यादा लोग सूखे की चपेट में आ चुके हैं। राज्य के बत्तीस जिलों में से चौबीस में भू-जल स्तर गिरा है। नागौर जिले की गिरावट 6.16 मीटर है।”<sup>2</sup>

---

1. पर्यावरण विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्ररावत - पृ. 21

2. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 104



निर्वनीकरण भी सूखे के लिए उत्तरदायी है। वनों में प्रायः वर्षा अधिक होती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पेड़-पौधे शीघ्रता से उगते हैं और बढ़ते हैं। जहाँ पेड़-पौधे कम होते हैं या वन नहीं होते, वहाँ की मिट्टी भी अधिक सूखी ही जाती है और माहौल में भी नमी कम हो जाती है। बरसात में थोड़ी कमी होने पर ये क्षेत्र भयंकर सूखे के शिकार हो जाते हैं। फसले बढ़ नहीं पाती और पीने के पानी की, जानवरों के लिए चारे की और आदमियों के लिए खाने की कमी हो जाती है। जंगलों के कटान से महाराष्ट्र के पूणे और औरंगाबाद संभागों के सूखे की चपेट में आने का बयान नासिरा शर्मा अपने उपन्यास कुइयाँजान में बखूबी करती है। इन भागों में सूखे का “असली कारण सह्याद्रि को बंजर बनाया जाना है। ..कालाहांडी में कभी एक हज़ार तीन सौ मि.मी. वर्षा हुआ करती थी। यह सपना नहीं पुस्तकों में दर्ज सच है; मगर जैसे ही वन काटे जाने लगे, सूखे के दैत्य सिरों पर मंडराने लगे। यही हाल दक्षिण भारत में तमिलनाडु के रामानाथपुरम, बुनियादीपुरम और मुतुरामलिंगम के ताल-पोखरों का हो गया है। सूख गए हैं, मगर इंसान को तो पानी चाहिए सो ‘वाइगड़’ नदी के किनारे पानी के लिए रेत में गड्ढे बना पीने का पानी जमा कर रहे हैं।”<sup>1</sup>

भगवानदास मोरवाल के चर्चित उपन्यास ‘काला पहाड़’ में उपन्यासकार ने काला पहाड़ की तलहटी में बसे मेवात की जनता के दिल

---

1. कुइयाँजान - नासिरा शर्मा - पृ. 104

दहलानेवाली तस्वीर उतारी है। कभी 'काला पहाड' से उतरा चौमासे का पानी अपनी तलहटी में बसे गाँवों को भिगो जाती थी। “अब तो दूर-दूर तक जंगलों में जहाँ भी नज़र जाती है वहाँ भूरे रंग की चादर ही बिछी दिखाई देती है। ऐसा लगता है जैसे दूर तक रेतीला प्रांतर पसरा हुआ है।”<sup>1</sup>

संक्षेप में सूखे से सबसे ज़्यादा प्रभावित गाँव के गरीब होते हैं। जो अमीर है, वह ट्यूबवेल या अन्य साधनों से काम चला लेते हैं। जब कुएँ सूखते हैं, तालाब और गड्ढों का पानी सूखता है तो गरीब और उसके पशु मरते हैं। वर्षा के पानी को सुरक्षित रखने का इंतज़ाम न होने की वजह सिर्फ उसी इलाके में पानी का संकट नहीं होता; जहाँ उपेक्षाकृत कम वर्षा होती है। बल्कि उस क्षेत्र में भी यह संकट है जहाँ सर्वाधिक वर्षा होती है। इसकी वजह है जल प्रबंधन का अभाव, जो सरकारी नीतियों एवं अवाम की सोच के कारण पैदा हुआ है। इसलिए निष्कर्षतः अनिल अग्रवाल के शब्दों में “सूखे को जो लोग प्राकृतिक आपदा कहते हैं, वह झूठ बोलते हैं। दरअसल यह प्राकृतिक नहीं सरकार और इंसान द्वारा निर्मित 'कृत्रिम आपदा' है। इस आपदा का मुकाबला सरकारी नीतियों और इंसानी सोच में बदलाव लाकर ही किया जा सकता है।”<sup>2</sup>

---

1. काला पहाड - भगवानदास मोरवाल - पृ. 283

2. पर्यावरण - विकास और यथार्थ - ज्ञानेन्द्ररावत - पृ. 36

## पहाड़

जीवन की शुरुआत से इंसान, हमेशा से पहाड़ों के आस-पास और उसके साथ रहा है। इस बात का तो विस्तार से बयान किया ही जाता रहा है कि हमारी संस्कृति में किस प्रकार पहाड़ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है। यह उक्ति सुप्रसिद्ध हैं - “उपहरे गिरीणां संगमे च नदीनाम। धिया विप्रो अजायत।”<sup>1</sup> हमारे बुद्धिजीवियों की प्रतिभा का विकास पहाड़ों की तलहटियों में और नदियों के संगमों में हुआ है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है कि-

“गिरयस्ते पर्वता हिमवंतः।

अरण्य ते पृथिविस्योनमस्तु।

अर्थात् वे पर्वत जिनके हिमनदों से हमें जल देते हैं

व जंगल जो प्राणदायक है, हमारे कल्याणकारक हों।”<sup>2</sup>

भारतीय पर्वत श्रृंखलाओं ने अपने विशिष्ट स्थान निर्धारण, भौतिक स्वरूप और ऊँचाइयों में विभिन्नता के माध्यम से भारत को असाधारण जैव-विविधता प्रदान किया है। इन्हीं का प्रताप है कि विश्व में पहचाने गए 14 बायोम्स (एक समान जलवायु विषयक क्षेत्र) में से 10 भारत में पाए जाते हैं। पश्चिमी व पूर्वी घाट; हिमालय क्षेत्र व सभी उत्तर - पूर्वी भारतीय

---

1. धर्म और पर्यावरण - किशनराम बिश्नोई, नरसीराम बिश्नोई - पृ. 167

2. वही

प्रदेशों की गिनती विश्व के कुछ एक बचे 'अति समृद्ध जैव संपदा भरे क्षेत्रों में की जाती है। इसलिए विश्व स्तर पर भारत की गिनती "12 स्पष्ट जैव विविधता से भरपूर देशों में होती है।" यही नहीं विश्व में पहचाने गए 25 "महा जैव विविधता तप्त प्रदेशों (मेगा डाइवर्सिटी हॉट स्पॉट्स) में से दो (2) भारत में पाए जाते हैं - पश्चिमी घाट और पूर्वी हिमालय क्षेत्र।" ये पर्वतमालाएँ भारत के जलवायु को संतुलित रखते हैं, मानसून को नियंत्रित और निर्देशित करते हैं।

एक स्वस्थ पर्वत को नीचे से ऊपर तक उपजाऊ मिट्टी से ढंका होना चाहिए। भूमि की सबसे ऊपरी सतह की कुछ सेंटीमीटर मोटी मिट्टी को उर्वर मिट्टी कहते हैं। इसी मिट्टी में बीज उग सकते हैं और पौधों को पोषण मिलता है। हलकी ढलानों पर हरी घास की मोटी परत होती है और यह घास, मिट्टी को अपनी जड़ों में मजबूती के साथ बाँधे रखती है। पर जैसे-जैसे ढलाने सीधी होती जाती है, उन पर जमी मिट्टी की परत को पकड़कर रखने के लिए किसी ऐसी चीज़ की ज़रूरत होती है जो कि मजबूत पंजों की तरह कार्य करे। मिट्टी रोकनेवाले इन पेड़ों को न केवल भिन्न जातियों का होना चाहिए, बल्कि उन्हें एक-दूसरे के बहुत पास-पास भी होना चाहिए। इन पेड़ों की पत्तियाँ इतनी घनी और विस्तृत होती है कि

ये छतरी की तरह काम कर बारिश के पानी को सीधे ज़मीन पर गिरने से रोक लेती है और भूगर्भ जलस्तर को बढ़ाने में मददगार भी साबित होते हैं।

पानी को ज़मीन में रिसने और भूगर्भीय झरनों को बनने देने के लिए पानी का ज़मीन पर देर तक रुके रहना ज़रूरी है। संभवतः यही वजह है कि प्रकृति ने इन ढलानों पर पानी रोकने की व्यवस्था खुद ही की हुई है। इन पेड़ों के बाद, ढलानों से बहते पानी की तेज रफतार को ऊँची-नीची ज़मीन और चट्टानें रोकती हैं। ताकि ज़मीन को पानी सोखने का भरपूर समय मिल जाए। पेड़ों एवं चट्टानों के ऊपरी आवरण के मिट जाने पर ये झरने सूख जाते हैं।

पिछले कुछ दशकों में पहाड़ों पर पर्यटकों की संख्या में अति वृद्धि हुई है। इनसे भी पहाड़ों पर काफी पारिस्थितिकीय समस्याएँ पैदा हो गई हैं। पर्यटन पर मज़ाक कसते हुए 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' उपन्यास में राकेशकुमार सिंह कहते हैं "वेल्कम टू पालमाऊ'। पर्यटन विभाग की वातानुकूलित कारों पर जंगल का नज़ारा कीजिए देखिए जंगल का नैसर्गिक, अनपढ़, स्वयंभु सौन्दर्य। नंगे आदिवासी.... खपड़ी पेट बच्चे, अधनंगी आदिवासिनें... वीरान बस्तियों जैसे बूढ़े... खंडहरों जैसी बुढ़िया... और वापस महानगरों में लौटकर लिखिए सनसनाते रिपोर्ताज़.... पुरस्कार जिताऊ उपन्यास...."<sup>1</sup>

---

1. 'जहाँ खिले हैं रक्तपलाश' - राकेशकुमार सिंह - पृ. 96

देश में पहाड़ या तो मर चुके हैं या मृतप्राय है। वहाँ की परिस्थितियाँ आज काफी नाजुक हो चुकी है। जिन पहाड़ी क्षेत्रों में मिट्टी की ऊपरी परत नहीं होती वहाँ वनस्पति भी नहीं होती। आज के ज़्यादातर रेगिस्तान इसी वजह बने हैं। क्योंकि आंधी उनकी उपजाऊ मिट्टी की परत उडा ले गई, जिसकी वजह वहाँ पेड़ों का उगना बंद हो गया। मनमोहन पाठक के उपन्यास 'काला पहाड़' में रेत उडाते पहाड़ का दर्दनाक चित्रण मिलता है, पहले 'काला पहाड़' की साँवली देह से उतरा चौमासे का पानी अपनी तलहरी में बसे गाँवों को भिगो जाता था।

विकास परियोजनाओं के लिए भी पहाड़ों का विनाश किया जाता है जैसे-सड़क, खनन एवं बाँध। सबसे शानदार पेड़-पौधे और जंगल आमतौर पर पहाड़ी घाटियों की सुरक्षित परतों में पाए जाते हैं। इसलिए अगर किसी नदी पर बाँध बनाने का निर्णय लिया जाता है तो इसका मतलब हुआ पहाड़ के नज़दीकी सारे शानदार जंगलों का जलमग्न हो जाना।

इन सब कारणामों से कटते-लुटते ये पहाड़ अंततः भूक्षरण एवं पहाड़ स्खलन का केन्द्र बन जाते हैं। इनकी मिट्टी से नदियों में गाद भर जाती है और बाढ़ आ जाती है। पहाड़ी झरने सूख जाते हैं। पहाड़ी इलाके प्राकृतिक आपदाओं का केन्द्र बन जाते हैं। इसलिए हमें इन पर्वतों को बीमार नहीं होने देना चाहिए।

## पहाड़ स्खलन

पहाड़ की ढलान से गिरते हुए मिट्टी के ढेर एवं पत्थरों को भूस्खलन कहते हैं। पहाड़ तोड़कर सुरंगें बनाने, खनन व क्रेशर के प्रयोग से आस-पास की शिलायें कमज़ोर पड़ जाती हैं, क्योंकि अनेक बार बारूद के धमाकों से उनमें दहल पहुँचती है और कुछ दिनों के बाद वे बह जाती हैं। इससे भयंकर तबाही होती है और जान माल का नुकसान होता है।

संजीव के बहुचर्चित अन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में भी पहाड़ धसकने की ओर इशारा किया गया है। पांडुई नदी के इस पार भारत है, उस पार नेपाल। यहाँ 12 से 15 वर्ग किलोमीटर में पत्थरों की क्वैरीज़ हैं। पत्थर तोड़ने के लिए बारूद का इस्तेमाल किया जाता है। इससे पहाड़ धसक रहे हैं। धसकते इन पहाड़ों पर संजीव की कविता देखिए-

“ठोकर न लगाना हम खुद है

गिरती हुई दीवारों की तरह।”<sup>1</sup>

राकेशकुमार सिंह के उपन्यास 'जहाँ खिले हैं रक्तपलाश' में पहाड़ स्खलन का चित्रण मिलता है। मुख्य सड़क और हेहेगडा के बीच की कच्ची सड़क की बगल में एक पहाड़ी पड़ती है। पहाड़ी नंगी है

---

1. जंगल जहाँ शुरू होता है - संजीव - पृ. 278

वनस्पति विहीन। तमाम वृक्ष काटे जा चुके हैं। बारिश के दिनों में जब पहाड़ का पानी तेज़ी से धाराओं में नीचे बहता है तो ढेर सारी मिट्टी काट कर बहा देता है। छोटी-बड़ी चट्टानें स्खलित होकर नीचे लुढ़क आती है। सावधानी वश वन-विभाग ने पहाड़ी के पास सडक पर एक सूचना पट्ट लगा दिया है “...बीवेयर ऑफ लूज़.... रॉक्स... गो स्लो... (ढीले पत्तर के लुढ़कने से सावधान)।”<sup>1</sup>

सुभाष पन्त के प्रसिद्ध उपन्यास ‘पहाडचोर’ में भी पहाड स्खलन के विकराल रूप का चित्रण मिलता है। झाण्डुखाल पहाड की तलहटी में बसा मोचियों का गाँव था। चूना पत्थर खनन करनेवालों ने वहाँ खनन कार्य शुरू कर दिया। इसके लिए पहाड में बारूद लगाकर तोड लिया जाता है, पेडों को काट डाला जाता है, जड़ों की खुली और टूटी-फूटी हालत में अपने घावों को खुद ही भरने के लिए छोड दिया जाता है। ऐसे में एक दिन अचानक आंधी आती है और पहाड स्खलन हो जाता है। “अचानक उनके विश्वास के अंतिम धागे को तोड़ते हुए धरती डोलने लगी.... उसी के साथ पहाड का सीना फूटकर बिखरने लगा और उसी के साथ चीख-पुकार और भागदड मच गई। सभी गाँव से भाग रहे थे उसके पीछे खण्ड-खण्ड टूटता, तिल-तिल गलता, आर्तनाद, विलाप, चीत्कार

---

1. जहाँ खिले है रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ. 197



करता पहाड़ टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर रहा था। धड़कते हुए झाण्डूखाल के पन्ने पर काली स्याही फेरता हुआ।”<sup>1</sup>

आज हमारे पहाड़ खनन माफिया के खतरनाक पंजों में सिकुडकर कराह रहे हैं। मगर हमारे आला अधिकारी एवं हुकमरान इस पारिस्थितिक तबाही को नज़र अंदाज़ कर रहे हैं।

### **खनन**

आधुनिक विज्ञान ने इंसान को खनिज द्रव्यों को खोदकर निकालने की अपार शक्ति प्रदान की है। आज़ादी के बाद देश के खनिज उत्पादन में ज़बरदस्त बढ़ोत्तरी हुई है। 1950 में महज़ 70 करोड़ रुपये का उत्पादन होता था, 1981 में वह बढ़कर 3400 करोड़ रुपये का हो गया। देश का सबसे बड़ा खनिज द्रव्य भूमिगत इंधन है। दूसरे सभी प्रकार के इंधनों से और खनिजों से कोयले का उत्पादन सबसे ज़्यादा है। धातुओं में कच्चे लोहे का और गैर-धातुओं में चूने का नंबर पहला है। छठी पंचवर्षीय योजना के मसविदे के अनुसार, “इसी रफ्तार से खनन जारी रहा तो कोयला, कच्चा लोहा, चूना पत्थर और बॉक्साइट के सिवा बाकी सभी प्रमुख खनिजों और इंधनों का भंडार अगली शताब्दी के पूर्वार्ध तक खाली है जाएगा।”<sup>2</sup>

---

1. पहाड़ चोर - सुभाष पन्त - पृ. 355

2. हमारा पर्यावरण - पृ. 25

योजना तैयार करने में और उसको अमल में लाने में पूरी सावधानी नहीं बरती गयी तो हर एक खान पास की ज़मीन को बंजर बना सकती है। उसके साथ-साथ पानी को ज़हरीला कर सकती है, जंगलों का सफाया कर सकती है, हवा को गंदा कर सकती है और इसके आस-पास रहनेवाले और उसमें कामगारों का जीवन जहन्नम में तब्दील कर सकती है।

देश के भीतर खनिज इंधन और धातुओं के भंडार की मात्रा सब जगह समान नहीं है। “पूरे देश के कुल खनिज उत्पादन का आधे से ज़्यादा हिस्सा मध्य और पूर्व के एक साथ लगे 190 जिलों में पैदा होता है। सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण खनिज भंडार इन्हीं जिलों में है। अगर अभी से भूसंरक्षण और भूसुधार की ओर पूरा ध्यान न दिया गया तो उत्पादन के साथ-साथ ये जिले बंजर बनते जाएँगे।”<sup>2</sup>

खुदाई का प्रभाव पर्यावरण पर किसप्रकार पड़ता है, यह खनिज द्रव्यों को निकालने के तरीके पर आश्रित है। खुदाई के दो तरीके हैं - खुली खुदाई और भूमिगत खुदाई। खुली खुदाई से कच्चा माल 80-90 प्रतिशत तक प्राप्त किया जाता है। भूमिगत खुदाई से खनिज का 50-60 प्रतिशत ही बाहर निकल पाता है।

---

1. भूमि, जल और हमारा पर्यावरण - संपादन अनुपम मिश्र - पृ. 42

## पर्यावरण पर दुष्प्रभाव

खानों के कारण भूमि, जल, जंगल और हवा चारों ही दूषित होते हैं। मशहूर पर्यावरणविज्ञ वंदना शिवा के अनुसार (डूण वाली के चूना पत्थर के खनन के संदर्भ में) - “सीधे ढलानवाले पहाड़ों पर होनेवाले खनन कार्य से जलसंसाधनों की तबाही के साथ-साथ भूक्षरण एवं भूस्खलन होने की संभावना है। यही नहीं इनके मलबे से नदियाँ और झरने भर जाएँगे।”<sup>1</sup> फिर इन प्राकृतिक संसाधनों के हास से या दूषित होने से उन क्षेत्रों में रहनेवाले लोगों का जीवन बर्बाद होता है। खनिज आधारित उद्योग जैसे कोयले से चलनेवाले बिजलीघर इस्पात के संयंत्र और सीमेंट कारखाने सब ज़्यादातर खदानों के पास ही बनते हैं। बगैर इसके आल्युमिनियम, तांबा और सीमेंट कारखानों, इंजीनियरिंग इकाइयाँ, रेल और उत्पादन क्षेत्रों में जुड़ती जाते हैं जिनका कुल मिलाकर पर्यावरण पर बेहद घातक प्रभाव पड़ता है।

## उपजाऊ ज़मीन की बर्बादी

खदानों के कारण खेती की कितनी ज़मीन हाथ से निकल गई, आज इसका कोई ठीक अंदाज़ा नहीं है। एक खान खोदने का अर्थ है कि खानों के लिए आवश्यक अनेक सुविधाओं के लिए ज़मीन का उपयोग करना। खान खुदाई का पहला काम उस जगह के पेड़ पौधों को काटना

---

1. Water wars - Vandana Siva - P. 20

और ऊपर की मिट्टी हटाना है। चूँकि खदान खोद लेने के बाद उसके फिर से ठीक करने का काम नहीं होता, इसलिए वहाँ की सारी धरती बंजर हो जाती है।

खदान में से निकली 'बेकार' चीज़ों को फेंकने के लिए उतनी ही ज़मीन और लगती है जिससे वह सारी जगह अनुपजाऊ हो जाती है। योजना आयोग के लिए तैयार की गयी गोवा के पर्यावरण संबन्धी एक रिपोर्ट में कहा गया है कि 'बिक्री योग्य एक टन कच्चे लोहे के साथ औसतन दो टन फालतू चीज़ें (मलबा) निकालकर फेंकनी पड़ती है।'<sup>1</sup> कचरे के उन ढेरों में से बहुत सारा भाग बारिश के पानी के साथ बहकर आसपास के खेतों और नदियों में फैलता है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में खनन से जुड़े पारिस्थितिक समस्याओं की चर्चा काफी शोरो-ज़ोरों से हुई है। आगे उन पर नज़र डालें। सुभाष पन्त के उपन्यास 'पहाड चोर' में उन्होंने इस ओर इशारा किया है। बरेली, झाण्डूखाल का एक साधारण किसान है। झाण्डूखाल के पहाड पर चूना पत्थरवालों ने खनन शुरू किया तो उसकी खेत बर्बाद हुई। दरअसल वह अपने एक सीढ़ी के खेत में जो खदान क्षेत्र के ऐन नीचे और खाई के ठीक ऊपर था बरसात शुरू होने से पहले अपना काम आरंभ करता था। "इस बार गया तो उसे खेत ही नहीं मिला। उसकी जगह पत्थरों का पहाड था।"<sup>1</sup>

---

1. भूमि, जल और हमारा पर्यावरण - संपादन - अनुपम मिश्र - पृ. 44

2. पहाडचोर - सुभाषपन्त - पृ. 334

भूमिगत खदानों में एक बड़ा खतरा ज़मीन के धंसने का रहता है। भूमिगत खदान की छत को लट्ठों और खंभों के सहारे थामकर रखा जाता है। जब ऐसी भूमिगत खदानों को बंद करने का वक्त आता है तो उसमें से ज़्यादा से ज़्यादा जितना भी कच्चा माल लिया जा सके, ले लेने की कोशिश की जाती है। ऐसे में खंभों और लट्ठों को भी हटाया जाने लगता है तब ज़मीन धंसने लगती है। जान माल की भी हानि होती है और खान का वह स्थान एक बड़ा गड्ढा बना जाता है। संजीव के 'धार' उपन्यास में नायिका मैना का पति फोकल इस तरह के एक खदान के धँसने पर मर जाता है। फोकल समेत 48 मज़दूर उसमें दबकर मर गये। अवैध खदान के मालिक महेन्द्रबाबु नमक डालकर गड्ढे को भर देता है - "रात ही रात मास्टर प्लान बना। नमक चाहिए नमक! नमक गलाता है लाश को।"<sup>1</sup>

कोयला खदानोंवाले कई जिलों के अनेक हिस्सों में, दूर-दूर तक ज़मीन के धंसने का खतरा होने के कारण वहाँ लोगों को बसने या खेती बाड़ी करने की या पशुओं के चराने तक की मनाही है। ऐसे कई जगहें सरकारी तौर पर परित्यक्त घोषित की जा चुकी है। संजीव के 'सावधान नीचे आग है' उपन्यास में ऐसे एक जगह का ब्यौरा देखिए - "अन्दर के

---

1. 'धार' - संजीव - पृ. 183

कोयले के निकल जाने से दूर-दूर तक धँस गयी है पोली ज़मीन। कुछ दब गया है, कुछ उभर गया है - भूगोल भी, इतिहास भी....।”<sup>1</sup>

कोयला खदान क्षेत्रों में भंडारघरों को और सुरंगों को आग से कभी भी भारी खतरा पैदा हो सकता है। कोयले में मिथैन गैस होती है। कोयले को तोड़ते और चूरा करते वक्त वह गैस बाहर आती है। एक बार आग लग जाए तो बुझाना मुश्किल होता है। संजीव का उपन्यास ‘सावधान नीचे आग है’ झरिया कोयला खदानों पर आधारित है। झरिया कोयला खानों में एक बार ऐसी आग 56 साल तक जलती रही। यह 1832 हेक्टेयर क्षेत्र में फैली थी और बताया जाता है कि उसमें 3 करोड़ 70 लाख टन कोयला भस्म हो गया था। उपन्यास में विष्टू दा बोलते हैं - “यह आग सन् 1916 के पहले से लगी हुई है। 1938 की कोल माइन्स कमीटी, 1954 की मेहता-मूर्ति कमीटी सबने चेतवनी दी। मगर 480 वर्ग किलोमीटर का बीस अरब टन कोयला...।”<sup>2</sup>

### जंगल का कटान

ज़्यादातर खदानें वन क्षेत्रों में हैं। इसका अनिवार्य परिणाम यह है कि वहाँ के जंगल कटते हैं और भूक्षरण होता है। खुदाई में ऊपरी मिट्टी,

---

1. सावधान नीचे आग है - संजीव - पृ. 12

2. वही - पृ. 42

पत्थर, वन और दूसरा जो कुछ भी होता है वह सब फालतू का बोझ माना जाता है। सुरंगवाली खानों के लिए भी काफी जंगल कटते हैं क्योंकि सुरंगों की छतों को लट्ठों से सहारा दिया जाता है। गोवा में खानों के लिए पट्टे पर दी गई ज़मीन कुल जंगल का 43 प्रतिशत है - “खान के लिए ज़मीन देते समय पट्टे में कोई शर्त नहीं होती कि खान के मालिकों को भूक्षरण रोकने या खुदाई पूरी हो जाने के बाद उन खड्डों को भरना होगा इसलिए छोड़ी हुई खानों का हाल काफी बुरा है।”<sup>1</sup>

मध्य पूर्वी इलाके के जिन हिस्सों में घनी मात्रा में खान खुदाई हुई है वह सारा क्षेत्र पारिस्थितिक दृष्टि से बेहद नाज़ुक हो गया है। इस क्षेत्र में छोटा नागपुर पठार और मेकल पर्वत श्रृंखला से पांच प्रमुख नदियों को पानी मिलता है। वे हैं - नर्मदा, सोन, रिहंद, महानदी और दामोदर। वहाँ खान के इलाके में एकदम उजाड़ नंगे पहाड़ हैं। संजीव के ‘धार’ उपन्यास में भी खान के चलते नंगे पहाड़ और सूखे जलश्रोतों का ज़िक्र मिलता है - “नंगी-अधनंगी पहाड़ियाँ जहाँ-तहाँ खड़े शाल, महुए, खजूर और ताड़ के पेड़, ढेरे की झाड़ियाँ, बलुई बंजर धरती, सूखती नदियाँ, सूखते कुएँ - तालाब, भयंकर पोखरिया खादें, जहाँ-तहाँ सोये पड़े मुर्दे से लोग। मन्त्र कीलित पूरा इलाका।”<sup>2</sup>

---

1. भूमि, जल, वन और हमारा पर्यावरण - संपादन अनुपम मिश्र - पृ. 45

2. धार - संजीव - पृ. 41

चूना पत्थर से मध्य हिमालयी तलहटी, जहाँ गंगा और यमुना का जलागम क्षेत्र है, खनन की खरोचों से भरा पड़ा है। कई-हरे-भरे घने जंगल आज भी पत्थरों के ढेर भर रह गए हैं। 'पहाड़ चोर' में सुभाष पन्त ने जंगल के साथ-साथ लोगों की संपूर्ण तबाही का चित्र उकेरा है। राजेसुरी सोचती है कि "खनन से लोगों की ज़मीने कट रही हैं। मकान ध्वस्त हो गए हैं। जंगल विनाश के कगार की ओर खिसक रहे हैं। लकड़ी और चारे का अभाव हो गया है, लोगों के सामने अस्तित्व का संकट खड़ा है।" सूखे और अधसूखे इलाकों में जहाँ, हरियाली बहुत मुश्किल से पनपती है, वहाँ खुदाई से रेगिस्तान के फैलाव को एक और मौका मिल जाता है।

## पानी

खदानों के मलबे से झरनों और नदियों का पानी दूषित होता है। बारिश के पानी के साथ लोहे के कण और दूसरे ज़हरीले तत्व पास के जलाशयों में पहुँचते हैं। पानी का गुण बिगड़ता है और वह उपयोग के लायक नहीं रह जाता। 'सावधान नीचे आग है' में संजीव रामप्रसाद ओझा के माध्यम से कहलवाते हैं "पहले कम-से-कम परब त्योहार में दामोदर नहा आते थे, अब उहो सपना हो गया। पैखाना करके पानी छूने भर का पानी तो रहियो नहीं गया.... अलकतरा जइसन करिया भुजंग पानी भूले भटके पी लो तो सीधे सुधाम।"<sup>1</sup>

---

1. सावधान नीचे आग है - संजीव - पृ. 49



खुदाई के काम में हर एक टन के उत्पादन के पीछे एक टन पानी खर्च होता है। खान के पास के गाँववाले बहुत परेशान हैं उन्हें खान का लाभ तो नहीं, बस नुकसान ही नुकसान मिला है। खान के कारण आसपास के कुओं में पानी का स्तर दिन-ब-दिन नीचे आ रहा है। खेती-किसानी और फसलें भी हाथों से जा रही है। सावधान नीचे आग है में खदानों के कारण कुओं तालाबों में पानी नीचे जाने तथा फसलों की बरबादी का चित्रण है - “आज हालत ई कि नीचे कोइलॉरी के चलते ऊपर पानी ही नहीं टिकता। सिरिफ एक पानी के बगैर पिछलका धान मर गया।”<sup>1</sup> संजीव के ‘धार’ उपन्यास में भी खदानों से जल अपव्यय एवं सूखते तालाबों और कुओं का जिक्र है - “नंगी अधनंगी पहाडियाँ... बलुई बंजर धरती, सूखती नदियाँ, सूखते कुएँ-तालाब, भयंकर पोखरिया खादें, जहाँ-तहाँ सोये पेड मुर्दे से लोग।”<sup>2</sup>

भूमिगत खदानों में नीचे से पानी खाली करने का काम भी लगातार चलता रहता है। इसका भी असर जलसंसाधनों पर पड़ता है। खान के भीतर सुरंगों को सूखा रखने के लिए इन खानों से सालाना लाखों-लाख लिटर पानी पंपों से खाली किया जाता है। इससे गाँववालों को होनेवाली परेशानी का ब्यौरा ‘सावधान नीचे आग है में कालिन्दी’

---

1. सावधान नीचे आग है - संजीव - पृ. 49

2. ‘धार’ - संजीव - पृ. 41

करती हुई नज़र आती है - “दामोदर में पानी तो चंदनपुर की खान का ही आ रहा है न। पशु-पाखी तक मर रहे हैं। कुएँ पहले ही सूख जाते हैं यहाँ। पानी लाने चंदनपुर तक जाना पड़ता है, जहाँ टैंकर आता है। देखिए कुछ कीजिए....।”<sup>1</sup>

खदानों के अनुपचारित कीचड़ और कूड़ा-कटकट सब सीधे पास के जलाशयों में या झरनों में गिरा दिया जाता है। इससे इनके गायब होने का संकट पैदा हो रहा है। सुभाष-पन्त के उपन्यास पहाड़ चोर में चूना पत्थर के खदान के फलस्वरूप झाण्डुखालियों के मीठे पानी का ‘धार’ के खतम होने की नौबत आ जाती है। सबरे गाँव की औरतें धार पर पानी लेने के लिए आए तो हैरानी में उनकी होश फाख्ती हो गयी। “धार में पानी नहीं था सिर्फ पत्थरों पर अंकित पानी का इतिहास था कोई और नमी थी पर पानी की एक बूँद नहीं।”<sup>2</sup> आसपास के लोगों के लिए पीने का पानी का वही एक मात्र स्रोत है। यह सारा मलबा जल स्रोतों को उथला भी बना देता है और भारी वर्षा वाले इलाकों में इससे बाढ़ भयंकर रूप अख्तियार कर लेती है। चूना पत्थर खदानों की वजह वहाँ की धरती की उर्वरता मिट जाती है। ‘पहाड़ चोर’ उपन्यास में इस तबाही का आखों देखा बयान मिलता है - “पहाड़ फूट रहा है, उसके मलबे से खेत बाँझ हो

---

1. सावधान नीचे आग है - संजीव - पृ. 243

2. पहाड़ चोर - सुभाष पन्त - पृ. 177

रहे हैं। गाद भरने से विडालना का तल ऊपर उठ रहा है और संयमित नदी उर्छंखल होकर अपने किनारे के खेतों को काटने के लिए मचल रही है।”<sup>1</sup>

### वायुप्रदूषण

खदान कोई भी हो, उसके खनिज की धूल चारों ओर फैलती ही है। पूरे इलाके में धूल की घनी परत के कारण धुंध-सी छाई रहती है, दिखाई बहुत कम देता है और साँस लेना भी मुश्किल हो जाता है। मज़दूर और उनके परिवारवाले हर साँस के साथ धूल को फाँकते हैं, पानी के हर घूँट के साथ उसे पीते हैं हर कौर के साथ उसे निगलते हैं। ‘सावधान नीचे आग है’ उपन्यास में झरिया खदान क्षेत्र का चित्रण संजीव ने यों किया है “आग की नदी दामोदर और धुआँसे का शहर झरिया। कुहासा नहीं, धुआँसा। धूल, धुआँ और कुहासा - इनसे मिलकर एक शब्द बनता है धुआँसा।”

खदान क्षेत्रों में वायुप्रदूषण के कारण लोगों को साँस की और आंख की न जाने कितनी तरह की बीमारियाँ होती हैं। ‘सावधान नीचे आग है’ में मज़दूरों की दर्दनाक हालत का बयान मिलता है “सैंडजुमो कोनियोसिस.. एक महीने में 58 किलो कोल डस्ट यानी साल में सात

---

1. ‘पहाड चोर - सुभाष पन्त’ - पृ. 200

2. ‘सावधान नीचे आग है’ - संजीव - पृ. 12

क्विंटल यहाँ हर आदमी फाँकता है।”<sup>1</sup> इसके अलावा ‘पहाडचोर’ उपन्यास में भी खदान के प्रदूषण की वजह रामकली के बेटे नत्थी की बीमारी का ज़िक्र मिलता है।

वर्तमान खनन कानूनों में बस यही ध्यान में रखा गया है कि खनिज भंडारों का पूरा-पूरा दोहन हो जाय। इस बात पर ध्यान नहीं गया कि खनन समाप्त होने के बाद ज़मीन की उत्पादकता पर क्या-क्या बुरा असर पड़ता है। केन्द्रीय मृदा (मिट्टी) व जल संरक्षण शोध व प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून के श्री आर.के. गुप्ता के शब्दों में “वर्तमान कानूनों में खान खुदाई के साथ भूमि की और पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण की कोई बात है ही नहीं।”<sup>2</sup> पेड़-पौधों का सफाया करने से और खनन के मलबे से कई इलाकों में भूक्षरण की संभावनाएँ बढ़ रही है। ऐसे इलाकों से ही रेगिस्तान का फैलाव शुरू होता है। बहरहाल खुदाई में समाज के बलशाली लोगों का ही डंका बज रहा है। वे देश को खोदते जा रहे हैं।

### क़ेशर

आम तौर पर क़ेशर्स में बड़े-बड़े पत्थरों को तोड़कर छोटे-छोटे टुकड़ों में तब्दील किया जाता है। इन का इस्तेमाल ज़्यादातर निर्माण कार्यों

---

1. ‘सावधान नीचे आग है’ - संजीव - पृ. 24

2. ‘भूमि, जल, वन और हमारा पर्यावरण’ - संपादन अनुपमिश्र - पृ. 51

में होता है। पुराने ज़माने में क्रेशर्स में मानव संसाधन का इस्तेमाल होता था। अब मशीनों का इस्तेमाल ज़्यादा होता है।

क्रेशर के धूल-मिट्टी से बहुत बड़ी पारिस्थितिक समस्या उठ खड़ी होती है। काफी तादाद में पत्थर तोड़ने के कारण वायु धूल से भर जाता है। ऐसे खतरनाक माहौल में रोज़गार करनेवाले मज़दूरों के लिए यह जानलेवा साबित हो जाता है। इन्हें इन धूल मिट्टी से बचने के लिए कोई सुविधाजनक सामग्री मुहैया नहीं की जाती। ये निरीह भोले-भाले इंसान महज़ मुनाफे के लिए लगाए गए निश्चेत उपकरणों के समान ही आंके जाते हैं।

क्रेशर्स में तोड़े जानेवाले पत्थर में 65 प्रतिशत सिलिका धूल होती है। यह धूल लगातार फेफड़े में पहुँचती है तो सिलिकोसिस रोग हो सकता है। उसके लक्षण हैं - जलन के साथ खाँसी, लंबी सांस न ले पाना और सीने में दर्द। यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ मेडिकल साइंसेस नई दिल्ली के डॉ. नीरज सेठी ने बदरपुर क्रेशर्स के संदर्भ में मज़दूरों के स्वास्थ्य का अध्ययन किया था। उनके अनुसार - “क्रेशर्स में काम करनेवाले मज़दूरों के 17 प्रतिशत की सेहत इतनी खराब को गई है कि सुधरने की कोई गुंजाइश नहीं है।”<sup>1</sup> मैत्रेयी पुष्पा के चर्चित उपन्यास ‘इदन्नमम’ में क्रेशर्स के

---

1. भूमि जल, वन और हमारा पर्यावरण - संपादन - अनुपम मिश्र - पृ. 41

दमघोट्टु माहौल में मज़दूरों की बदहालत का ज़िक्र किया गया है - लछो राउतिन पति के बारे में मन्दा से कहती है - “इनकी साँस नहीं जुट रही जिज्जी! का करें हम भी, एरच के डाकधर को पाँच छः बेर दिखा आये हैं। बीस कलदार धर आते हैं हर बार। फायदा नहीं पड़ता जिज्जी। कहो तो एक ही बात सुना देगा कि धूरा-धंगर में काम मत करो। डस्ट से फेफड़े खराब होते हैं।”<sup>1</sup>

क़ेशरों के कारण पूरे गाँव का माहौल एवं पर्यावरण ही नहीं बिगडता बल्कि वहाँ के तमाम लोगों की ज़िन्दगी ही तहस-नहस हो जाती है। क़ेशर पहाड़ तोडकर उसके पत्थर ही नहीं पीसते बल्कि वहाँ के अवाम का जीवन भी पीस डालते हैं। ‘इदन्नमम’ में मैत्रेयी पुष्पा ने इसकी ओर इशारा किया है - “क़ेशरों ने पहाड़ काटकर उसके पत्थर ही नहीं पीसे, यहाँ के लोगों का जीवन पीस डाला। राई-रेत कर दी साँसे।”<sup>2</sup> इससे कई प्रकार की बीमारियाँ भी लोगों में फैल रही है। इसकी ओर भी इस उपन्यास में संकेत मिलता है - “क़ेशरों के कारण गाँवों में धूल ही धूल छापी रहती है। पहले के मुकाबले, दमा, तपेदिक कई गुना अधिक फैल गये हैं। मज़दूरों के ही नहीं, किसानों के शरीर भी हो गये हैं इन बीमारियों के घर।”<sup>3</sup>

---

1. इदन्नमम - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 227

2. वही - पृ. 307

3. वही - पृ. 307

केशरों के कारण बड़े पैमाने पर शब्द प्रदूषण भी होता है। राकेशकुमार सिंह के उपन्यास 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' में बाँध के लिए पत्थर तोड़नेवाले केशर उससे होनेवाले ध्वनिप्रदूषण का भी जिक्र मिलता है। - "चारों पहर पहाड़ों की देह में बिल करती रहती है। साँझ के आसमान के नारंगी होने तक इन बिलों में भर दिए जाते हैं बारूदी पाउडर। फिर रात भर भडाम.... भडाम... भडाम... भडाम....। बाँध के लिए तोड़े जाते हैं पत्थर। पत्थरों को गिट्टियों में बदलनेवाले केशर रात भर चलते रहते हैं... खिर्... खिर्... खिर्...।"<sup>1</sup>

संक्षेप में इन केशरों के खिलाफ जिन्हें एहतियात बरतनी चाहिए वे सरकार और नौकरशाह आँख बंद किए हुए हैं। इसके मालिक इन हुकमरानों की मुनाफे का हिस्सा पहुँचाने से चूकते नहीं। मुट्ठी गरम होने के कारण वे इनके खिलाफ आवाज़ नहीं उठाते। जनता को इसप्रकार पर्यावरण विनाश के खिलाफ एक जुट होकर आवाज़ बुलंद करनी चाहिए। तभी बचाव की कोई गुंजाइश है।

## आदिवासी जीवन-यथार्थ

### आदिवासी

आदिवासी शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में ज़िन्दगी बितानेवाले विशिष्ट भाषा बोलनेवाले, खास जीवन पद्धति एवं परंपराओं से सजे और

---

1. जहाँ खिले है रक्तपलाश - राकेशकुमार सिंह - पृ.

सदियों से जंगलों-पहाड़ों पर जीवनयापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखनेवाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बड़े पैमाने पर उनके सामाजिक दुख-दर्दों एवं बर्बाद होती हुई सांस्कृतिक विरासत पर गम दर्ज किया जाता है। अधनंगे रहने की वजह से या लंगोटी पहने शिकार के लिए जंगल-जंगल भटकने से भी उन्हें वनवासी या 'वन्य जनजाति' के तौर पर अभिहित किया जाता है। चंद लोग 'भूमिपुत्र' या 'वनपुत्र' कहना भी समीचीन समझते हैं। कोई-कोई तो उन्हें उपहास के तौर पर 'जंगली' या 'लंगोटिया' कहकर उनकी खिल्ली उड़ाते हैं। भारतमाता की 'आदि सन्तान' के रूप में भी वे पहचाने जाते हैं। गौरतलब है कि आज कल 'आदिपुत्र' जैसे नामों का प्रयोग भी उनके लिए किया जा रहा है। जंगल में 'अनाभिषिक्त राजा' के रूप में भी उनका गौरवपूर्ण उल्लेख किया जाता है।

अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य समाज वैज्ञानिकों और विचारकों ने 'आदिवासी कौन' इस विषय पर सविस्तार चर्चा करने के उपरान्त अपने ग्रन्थों में कुछ परिभाषाओं को उद्धृत किया है। "एक विशेष पर्यावरण में रहनेवाला, एक सी बोली बोलनेवाला, समान जीवन शैली से सजा, एक-से देवी-देवताओं को माननेवाला परन्तु अक्षरज्ञान रहित मानवसमूह यानी आदिवासी।"<sup>1</sup> इसप्राकर का अर्थ विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर लिया जा सकता है।

---

1. आदिवासी कौन - रमणिका गुप्ता - पृ. 27



दरअसल आदिवासी आर्यों से पूर्व का मानव समूह है। वह इस धरती का मूल मालिक है। सही मायने में यह ही क्षेत्राधिपति है। वनराई के बच्चे ही इस भूमि की आदिम सन्तान है। गोंड, भील, करेली आदि आदिवासी जनजातियों के आर्यपूर्व निवास के बारे में महात्मा जोतिबा फूले जी ने मार्मिक वचन कहे हैं। वे लिखते हैं-

“गोंड भील क्षेत्री ये पूर्व स्वामी  
पीछे आए वहीं इरानी  
शूर, भील मछुआरे मारे गए रारों से  
ये गए हकाले जंगलों गिरिवनों में।”<sup>1</sup>

महात्मा फूले की उपर्युक्त उक्ति से, आदिवासी पहले कौन थे और उन्हें वनवास कैसे मिला, इसका उत्तर मिलता है। सचमुच यह यथार्थ बहुत ही डरावना, पीडादायक और अन्तर्मुख है कि जिन आदिम जनसमूहों ने इस देश का सांस्कृतिक क्षेत्र समृद्ध किया, उन्हीं आदिम जनजातियों को अपने पेट की खातिर जंगल-जंगल मारे-मारे भटकना पड़ता है।

भारत की कुल आबादी के करीब 8.08 प्रतिशत<sup>2</sup> हिस्से को अनुसूचित जनजातियों के (शेड्यूल ट्राइब्स या एस.टी) रूप में वर्गीकृत किया गया है। यह शब्द उन जन समुदायों के लिए प्रयुक्त किया जाता है

---

1. महात्मा फूले वाङ्मय, संपादक धनंजय कीट - पृ. 416  
2. भारतीय जनगणना 1991

जिन्हें भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 342 के अधीन अनुसूचित जनजातियों के तौर पर निर्दिष्ट किया है। दरअसल यह एक प्रशासनिक शब्द है - जिससे किसी विशेष क्षेत्रीयता का संकेत मिलता है। इसका लक्ष्य किसी जन समुदाय की विशिष्ट वांशिक स्थिति से बढ़कर उसके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का परिचय देना है। “किसी समुदाय को जनजाति के तौर पर परिभाषित करते समय उसके भौगोलिक अलगाव, उसकी विशिष्ट संस्कृति आदिम विशेषताओं, आम सामाजिक समुदायों से घुलने मिलने में संकोच और आर्थिक पिछड़ेपन जैसी बातों का ध्यान रखा जाता है।”<sup>1</sup>

भारत के लोग अधिकतर अनुसूचित जनजातियों (एस.टी.) को आदिवासी कहते हैं। संस्कृत में आदिवासी शब्द का अर्थ है, किसी क्षेत्र के मूल निवासी जो आदिकाल से किसी स्थान विशेष में रहते चले आ रहे हैं। माना जाता है कि आदिवासी भारतीय प्रायद्वीप के सबसे प्राचीन बाशिन्दे या मूल निवासी है।”<sup>2</sup>

- 
1. सारिणी (सं), इंडीजनस पीपलस इन इंडिया, सारिणी ऑकेजलन पेपर्स, क्र. 1, भुवनेश्वर, सी.इ.डी.इसी 1997 - पृ. 31
  2. जनकल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, इंडियन ट्राइब्स थ्रू द एजेज, जनवरी, 1990 जिसप्रकार भारतीय मूलनिवासी एवं जनजातीय परिषद् द्वारा यू.एन. डब्ल्यू. जी.आई.पी. के नौवें सत्र में उद्धृत किया गया, 22 जुलाई 2, अगस्त 1991

यह भी मान्यता है कि “आर्यों के अतिक्रमण के समय आदिवासी पहले से ही भारतीय उपमहाद्वीप में रह रहे थे।”<sup>1</sup> आर्यों ने कुछ आदिवासियों को युद्ध में परास्त कर दास बना लिया। अलबत्ता भारत के उत्तरपूर्वी भाग उनकी पहुँच से बाहर ही रहा। अन्य आदिवासी जंगलों या पहाड़ी प्रदेशों में पलायन कर गए। इसप्रकार जो भी आदिवासी समुदाय आर्यों के आक्रमण से बच निकले, वे अपनी अलग संस्कृति और पहचान कायम रखने में कामयाब रहे तथापि कट्टरपंथी हिंदू इतिहास को अपने ढंग से लिखने की कोशिश कर रहे हैं। उनका मन्तव्य है कि आर्य बाहर से नहीं आए बल्कि वे भारत के मूल निवासी ही हैं। वे उन्हें आदिवासी नहीं बल्कि वनवासी कहना पसन्द करते हैं।

प्रभु पी. के अनुसार आदिवासियों को अन्य समाजों से अलग करनेवाली सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं - “अपने क्षेत्र से उनके खास जुड़ाव और उनके समुदाय का प्रकृति से अन्तरंग संबन्ध। उनके लिए अपने साधन स्रोतों के प्रबन्ध का अर्थ यह नहीं है कि अलग-अलग परिवारों के बीच भूमि का बँटवारा कर दिया जाए।”<sup>2</sup> आदिवासियों की दृष्टि में कोई व्यक्ति या समुदाय तभी भूमि से जुड़ता है, जब वह अपने पूर्वजों से लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी उस ज़मीन पर बसा हुआ हो। आदिवासी का क्षेत्र उसकी

---

1. थापर, आर, ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग-1, नई दिल्ली पेंग्विन

2. आदिवासी कौन - रमणिका गुप्ता - पृ. 30

सामूहिक चेतना का विस्तार होता है, जिसकी अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक महत्व है। इसी के बूते पर कबीले की ज्येष्ठ व्यक्ति समुदाय का संचालन करते हैं। आदिवासियों का ज्ञान, आध्यात्म और धर्म व्यवस्था भी प्रकृति से उसके गहरे संबन्धों पर ही आधारित है। उनकी दूसरी विशेषताएँ हैं - “समुदाय की सभी आवश्यकताओं को समुदाय के भीतर ही पूरा करना और अपनी ज़रूरतों के लिए बाज़ार पर कम से कम निर्भर रहना। समुदाय का अपने क्षेत्र पर जितना राजनैतिक प्रभुत्व होगा उसी अनुपात में ये विशेषताएँ उस समुदाय में दृष्टिगोचर हो सकती हैं।”<sup>1</sup>

“1991 की जनगणना के अनुसार संसार के 30 करोड़ मूल निवासियों में से छह करोड़ सतहत्तर लाख साठ हज़ार मूल निवासी भारत में रहते हैं। वे भारत के 26 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में फैले हुए हैं।”<sup>2</sup> इधर कुछ अर्से से आदिवासियों की हालत चिन्ता का विषय बनती जा रही है।

लगभग 90 प्रतिशत आदिवासी अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर करते हैं। इसके अलावा शिकार और वनोपज जमा करना भी उनके जीवन का आधार है। लेकिन जैसे-जैसे आदिवासियों को उनकी

---

1. आदिवासी कौन - रमणिका गुप्ता - पृ. 30

2. वही - पृ. 35

जीविका के साधन-स्रोतों से दूर किया जा रहा है। वैसे-वैसे उनके वनों और उनके पूर्वजों की आवास भूमि छीनी जा रही है।

“भारत की 90 प्रतिशत कोयला खानें, 72 प्रतिशत वन और अन्य प्राकृतिक संसाधन और 80 प्रतिशत अन्य खनिज प्रदार्थ आदिवासी भूमि पर पाए जाते हैं। 3000 से भी ज़्यादा जल विद्युत बाँध भी इन्हीं के क्षेत्रों में बनाए गए हैं।”<sup>1</sup> इसलिए स्पष्ट है कि भारतीय औद्योगीकरण और शहरीकरण के मूल संसाधन मुख्यतया आदिवासी क्षेत्रों से ही आते हैं। अपनी नदियों तथा ज़मीनों पर उनके अविच्छिन्न अधिकार भी दूसरों के हाथों सौंप दिए गए इसप्रकार वे स्वामी से दास बनने पर मजबूर हो गए। नतीजतन 85 प्रतिशत आदिवासी सरकारी गरीबी रेखा से नीचे रह रहे हैं। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग ने पाया कि देश के तमाम बंधुआ मज़दूरों में से 83 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों के हैं। बगैर इसके वनक्षेत्र घटते चले जा रहे हैं क्योंकि कुछ सर्वोत्तम वनों को वन्य जीवन क्षेत्र और राष्ट्रीय उद्यान अर्थात् संरक्षित प्रदेश घोषित कर दिया गया है।

फिलहाल आदिवासियों की बदहालत यह है कि एक ओर आदिवासियों की जीविका के लिए वनों पर निर्भरता और दूसरी ओर वनों

---

1. आदिवासी कौन - सं. रमणिका गुप्ता - पृ. 35

से अधिकाधिक आय प्राप्त करने की सरकारी नीति के चलते आदिवासी वन मज़दूरों में तब्दील हो गये हैं। कई राज्यों ने छोटे-छोटे वन उत्पादनों का राष्ट्रीयकरण कर दिया है और वन विभाग निगमों (फॉरेस्ट डिपार्टमेंट कॉर्पोरेशन - एफडीसी) की स्थापना कर दी है। उनकी बद्किस्मति यही है कि अब वे बाज़ार में वन उत्पादनों की बिक्री नहीं कर सकते, उनसे बेहद कम मज़दूरी पर काम कराया जाता है। उनके लिए सामाजिक सुरक्षा के नज़रिए से भी कोई भी नफा नज़र में नहीं आती। न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम (मिनिमम वेजेज़ आक्ट) 1948 के अधीन अनेक राज्यों ने 'अनुसूचित रोज़गार' की घोषणा की जिसमें कुछ वन रोज़गार शामिल है। इसकी दरें राज्यों में अलग-अलग हैं। न्यूनतम मज़दूरी के अतिरिक्त प्रसूति लाभ, छुट्टी आदि संबन्धी अन्य कानूनों का पालन भी नहीं किया गया।

“सन् 1969 में राष्ट्रीय श्रम आयोग ने आदिवासियों के लिए स्थायी बस्तियों और कृषि अधिकारों का सुझाव दिया। इस विषय में राज्य सरकारों को निर्देश भी दिए गए लेकिन स्थिति ज्यों की त्यों रही। 1977 में मध्य प्रदेश सरकार ने 1901 वन गाँवों के निवासियों को प्रति परिवार 2-5 हेक्टेअर कृषि भूमि पर अधिकार देने का निर्णय लिया।”<sup>1</sup>

‘हूज फारेस्ट्स ओनर्स बिकम वर्केर्स’ की रपट के अनुसार -  
 “कुल मिलाकर विकास कार्यों के चलते, आदिवासियों को अपनी उपजीविका

---

1. आदिवासी कौन - सं. रमणिका गुप्ता - पृ. 36

के साधन-स्रोतों से हाथ धोना पड़ा है। विकास परियोजनाओं के कारण कुल एक करोड़ 85 लाख लोगों अर्थात् भारत की कुल जनसंख्या के 2 प्रतिशत से अधिक हिस्से को अपनी बस्तियाँ छोड़नी पड़ी है। विकास परियोजनाओं के लिए विस्थापित लोगों में लगभग 50 प्रतिशत आदिवासी है यद्यपि उनकी आबादी भारत की कुल जनसंख्या का 8.08 प्रतिशत ही है। इतने विशाल परिमाण में विस्थापन के बावजूद सरकार के पास कोई समान पुनर्स्थापन और पुनर्वास नीति नहीं है।”<sup>1</sup>

दरअसल आज तक के इतिहास पर नज़र दौड़ाने पर पता चलेगा कि महाभारत काल से ही इनका शोषण ‘अर्जुनों’ ने किया और द्रोणाचार्य ने उन्हें ठगा। उन्होंने इनकी कन्याओं को ब्याहकर रनिवास में तो रख लिया मगर उनकी जमात को अपने समाज में सम्मिलित नहीं किया। निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि जब तक आदिवासी स्वयं नेतृत्व नहीं सँभालता तब तक कोई और उनके हितार्थ नीतियाँ बनानेवाला नहीं है।

### आदिवासी शोषण का चित्रण

आज़ादी मिलने के इतने सालों बाद भी इस देश की आठ प्रतिशत आबादी अपने मूलभूत अधिकारों से मेहरूम रहकर शोषण और अभाव की ज़िन्दगी जीने के लिए अभिशप्त है। ओडीषा, राजस्थान,

---

1. रमा, एम. ‘हूज फोरस्टस? ओनर्स बिकम वर्कर्स, लेबर फाइल, भाग-3, क्र. 5 व 6 मई-जून 1997 - पृ. 3-181

छत्तीसगढ़ और झारखंड में सामाजिक धरातल से लेकर राजनीतिक ऊँचाइयों तक जो भी हो रहा है, उससे स्थानीय स्तर पर मानवीय अच्छाइयों से दूर तमाम प्रकार की आसुरी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिल रहा है।

जब आज़ादी के संदेश स्वशासन के झरोखे से घोषित किए गए तब गाँधी बाबा का ज़माना था। स्वराज की खुशियाँ मनाई गई-घी के दिए जलाए गए। अपने जंगल में अपने शासन का महा उच्चार किया गया। 'सबसे ऊँची ग्राम्य सभा' के तुमुल निनाद के बीच पंडित नेहरू ने आदिवासी समाज की समृद्धि और खुशहाली के पाँच मूलभूत सिद्धांत प्रतिवादित किए। उन वनवासियों की मूल संस्कृति को बचाए रखने की जो पैरवी नेहरूजी ने की उसे देश की जनवादी सरकारों ने धत्ता बताया। खुद नेहरूजी ने जिन बाँधों को आधुनिक भारत का मंदिर बताया उन्हीं मंदिरों के सामने आदिवासियों की सामूहिक नरबलि दी गई।

पं. नेहरू का मानना था कि "वन्य समाज को प्रशिक्षित और दक्ष किए जाने की ज़रूरत है।" किंतु हालत ऐसी नहीं रही। दक्षिण भारत की राजनीतिक व्यवस्था 'मुप्पन' और हिमालय क्षेत्र की प्रशासनिक व्यवस्था 'अवुंगा' देखते ही देखते गायब हो गई। मणिपुर से खुलप्पा, मध्य हिमालय से सायना, भील इलाकों से वसावो, जो समाज पर राज करते थे, वे नहीं रहे और हर जगह पंचायती राज का परचम लहराने लगा। अब मुखिया के



माथे पर सरकारी हाकिम जा बैठा जिसके साथ सरकार के तमाम एजेंट आए - साहेब से लेकर पटवारी तक और ठेकेदार से लेकर शिकारी तक। इधर के कुछ दशकों में आदिवासियों की जहालत एवं सक्रिय शोषक तत्वों की कारगुज़ारियों को हिन्दी के चंद इने-गिने उपन्यासों में यथावत् उकेर दिया है।

ये हाकिम ये हुकमरान् सब के सब जंगलों में डेरा जमाने में सफल रहे। यहाँ से उनकी अच्छी कमाई तो हुई ही, साथ में हर रात उन्हें कच्ची उम्र की लड़कियाँ मिलने लगीं। साहबों, शिकारियों और ठेकेदारों ने कन्याओं को अनब्याही माँ बनाया और वे वहाँ से फरार हो गए। इस तरह इस समाज में सुसभ्य जनों ने जाकर भोग-लिप्सा के कई आयाम रचे। ‘जंगल जहाँ शुरू होता है’ में संजीव ने दिखाया है कि काबिल पुलिस अफसर कुमार साहब तक थारू औरत मलारी की यौन शोषण करने से नहीं चूकते। मलारी का आक्रोश देखिए “बस इसी के लिए कुत्ते की तरह आए थे दबे पाँव, आपकी औरतें तो इज्जतदार हैं, ऊँची जात के बड़े लोग। हम गरीब नीच जाति की औरतों की क्या इज्जत? खुला दरवाज़ा है, जो चाहे मुँह मार ले। तुम इतने दिन रुके कैसे रहे, यही आश्चर्य है। बस यही तुम्हारी इंतहाँ थी।”<sup>1</sup>

---

1. जंगल जहाँ शुरू होता है - संजीव - पृ. 51

अफसरशाही और उनके रिश्तेदार एवं साहूकार लोग आदिवासी नारी के साथ बद्तमीज़ी करती हैं, उनकी इज़्जत आबरू पर हमला करते हैं। उनकी मार्फत कोई नियम या कानून नहीं है सब कुछ उनके सहूलियत के लिए है। मनमोहन पाठक के 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास में सोनाराम ने डी.एस.पी एक्का के बेटे जुवेल को एक आदिवासी स्त्री मरियम को भरे बाज़ार में छेड़ने के जुर्म में पीटने का ज़िक्र मिलता है। उनके इस हैवानियत का मज़ाक उठाते हुए लेखक लिखते हैं "गरीब की स्त्री उनके लिए सिर्फ भोग की वस्तु है, मनुष्य नहीं। मनुष्य तो केवल वही हैं। दुनिया की तमाम स्त्रियों को भोगने की लालसा लेकर उनकी जवानी चढ़ती है।"<sup>1</sup> इसी उपन्यास में पुलिस अफसरों द्वारा आदिवासी स्त्रियों के आबरू पर डाका डालने का ज़िक्र भी मिलता है। उपन्यास के नायक सोनाराम को ढूँढते पुलिस लुपुंगा आ जाते हैं और मर्दों को पकड़कर घर की कोठरियों में बन्द कर दिए जाते हैं। "लूटने को उनके पास था ही क्या? पर जो लुटा उसकी कोई भरपाई नहीं हो सकती, जो टूटा उसकी जोड़ नहीं हो सकती। बहुओं बेटियों, लड़कियों - किशोरियों की रक्त सनी देह कौन सी आँख देख सकती है?"<sup>2</sup>

ठेकेदार, व्यापारी एवं उच्चवर्ग के लोगों द्वारा आदिवासी औरतों का यौन शोषण हो जाता है। इन्हें ले जाकर दूर-दराज़ के इलाकों में बेच

---

1. गगन घटा घहरानी - मन मोहन पाठक - पृ. 80

2. वही - पृ. 169

भी देते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के चर्चित उपन्यास 'इदन्नमम' में इसकी चर्चा है। यहाँ हम देखते हैं कि अभिलाख लीला को, मनेसी ददा - तुलसिन को, जगोसर अपनी बेटी की उम्र के अहिल्या को रखैल बनाकर रखता है। इन आदिवासि स्त्रियों की मज़बूरी है कि इनको अपना जिस्म बेचकर जीना पड़ता है। आहिल्या की माँ तुलसिन जगोसर से अपनी मज़बूरी का बयान कुछ इस तरह से करती है "अरे हमरी तो बेबसी है ठेकेदार, हमें पेट के लाने दिन में ही पथरा नहीं तोड़ने पड़त, रात में देह भी... हमें बिना रौंदे - चीथे तुम्हारी बिरादरी के लोग पत्थरों से हाथ नहीं लगाने देते। बिटियाँ का करें, बूढ़ी मताई को, बाप को काम नहीं देता कोई... और जनी की जात मरद बिरोबर काम नहीं कर पाती सो सहद के छत्ता की तरह निचोरते हैं मालिक लोग..."<sup>1</sup> ठेकेदार अभिलाख सिंह आदिवासी स्त्रियों का व्यापार करते हैं। संजीव के 'धार' उपन्यास में भी खनन क्षेत्र में स्त्रियों का यौन शोषण एवं आदिवासी स्त्रियों को बहला फुसलाकर 'चकलाघर' में लाकर उनके जिस्म को निचोड़ने का ब्यौरा मिलता है। अमीरों की हवस से कोई औरत नहीं बच सकती। अमीर लोग कुत्ते की भाँति उन औरतों को नोचते हैं। औरत पर होते अत्याचारों को बताते हुए मैना कहती है - "हाँ हम पापिन; हमारा माँ पापिन, ऊ सब धरमात्मा। कोई भी जनाना (स्त्री) ई कुत्ता लोग से बचा नई को... ड...ड...ड...ई नई"<sup>2</sup>

---

1. इदन्नमम - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 241

2. 'धार' - संजीव - पृ. 174

आदिवासी जाति बाह्य शक्तियों के शोषण से अत्यधिक त्रस्त है। ता-उम्र कड़ी मेहनत करने पर भी उन्हें अभाव ग्रस्त और फटेहाल होकर जीना पड़ता है। उन्हें अपने श्रम का उचित मूल्य नहीं मिलता। संजीव के 'धार' उपन्यास का केन्द्र है 'बाँसगडा' गाँव। बाँसगडा के आदिवासियों के अस्तित्व पर पूँजीपति, ठेकेदार, माफिया, दलाल कारखानेदार और बड़े-बड़े अधिकारियों का अधिकार है। वे बेचारे भोले-भाले अपनी ओर से कुछ नहीं कर पाते। अपने इलाके में ढेर सारी खदानें और छोटे से लेकर बड़े कारखानों के बावजूद उनका जीवन असुरक्षित और अभावग्रस्त है - "ठेकेदार अब भी ढोर डांगरों की तरह उन्हें काम कराने हांक कर ले जाते हैं और चूसकर छोड़ देते हैं। माफिया अब भी उनसे अमानुषिक श्रम कराते हैं और ज़रा-ज़रा सी बात पर पीटते हैं।"<sup>1</sup> बाँसगडा के अधिक से अधिक लोग कोयले की खदानों में मज़दूरी करके अपना पेट पालते हैं। खदानों में ज़मीन धँसने पर अनेक आदिवासी मज़दूर ज़िंदा दफन हो जाते हैं। उनकी कोई खबर तक नहीं ली जाती। पुलिस अधिकारी आदिवासियों को न्याय देना तो दूर बल्कि उनसे ही रिश्वत लेते हैं।

ठेकेदार लोग काम करते हुए ज़ख्मी हो जाने पर दवा-दारु के पैसे तक देने की कृपा नहीं करते। राऊत आदिवासी युवति रति कहती है "जा ठठरी बाँधे मालिक के राज में कोई खा सकत भरपेट रोटी? लो

---

1. 'धार' - संजीव - पृ. 175

महीना - भर से गोड़ कुचला धरा है हमारे धनी (पति) का। भारी बोल्डर गिर गया गोड़े पर। इतेक निरदर्ई कि पट्टी करवाने को एक पइसा तक नहीं देता।”<sup>1</sup>

‘गगन घटा घहरानी’ उपन्यास में मनमोहन पाठक ने आदिवासी मज़दूरों की बदहालत का विस्तृत ब्यौरा किया है। उपन्यास का केन्द्र ‘पलामु’ है। मोरंगा वन के चारों ओर काँटेदार तार का बाड़ लगाने का काम चल रहा है। यहाँ काम करने के लिए दूर-दराज गाँवों से मज़दूर लाये जाते हैं। हाड़-तोड़ मेहनत करवाने के बाद इनको न्यूनतम मज़दूरी से महरूम रखा जाता है। मज़दूरी के नाम पर उन्हें हफ्ते में 10 रुपये के हिसाब से दिया जाता है। उसमें भी आधे रुपये ठेकेदार का मुंशी हडप लेता है। दुःखी मज़दूर डी.एफ.ओ से शिकायत करते हैं तो डी.एफ.ओ. के पूछने पर मुंशी का जवाब देखिए - “मज़दूरी कम मिलती है तो जहाँ ज़्यादा मिले वहाँ जाओ। सरकारी नौकरी नहीं है। ठीकेदार को जितना पोसाई पडेगा उतने देगा।”<sup>2</sup>

आदिवासियों की संस्कृति को कलंकित कर उन्हें बुरी आदतों के शिकार बनानेवाले ऐसे ठेकेदार और मालिक लोग ही हैं। ये मालिक गाँवों व शहरों से वनों में पहुँचते हैं उनके आशियाने को उजाडते हैं, उन्हें

---

1. ‘इदन्नमम’ - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 228

2. ‘गगन घटा घहरानी’ - मनमोहन पाठक - पृ. 127

खानाबदोश बनाते हैं। उन्हें दाने-दाने को मोहताज बनाते हैं। ये अपने काम निकालने के लिए शराब और गांजे जैसी लद उन्हें डाल देते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास इदन्नमम में नायिका मन्दा ठेकेदार भईयाजी से पूछती है “भईयाजी, यह आदत किसने डाली? आपकी बिरादरी ने ही न? आदत नहीं डालते तो इनका शोषण कैसे करते? खून कैसे चूसते?” इसके अलावा ‘गगन घटा घहरानी’ उपन्यास में भी आदिवासी मज़दूरों से बेगारी करवाने के लिए ज़हरीले शराब पिलवाने का ज़िक्र है। इस में कई आदिवासी मज़दूरों को अपनी जान से भी हाथ धोनी पड़ी। उपन्यास का नायक सोनाराम इसके खिलाफ आवाज़ बुलंद करता है शराब से “दिकू (हिन्दु) हमें गुलाम बना देते हैं। हमारी ज़मीन पर कब्ज़ा कर लेते हैं। हमारे ही घर से हमें बेघर कर देते हैं और हम देख भी नहीं पाते। दारु हमारी आँखें और हमारी समझ को ढँके रखता है। ...तो आज से खजुरी में दारु हँडिया बंद?”<sup>2</sup>

आदिवासियों की ज़मीन और उनके जीवन के आधार जंगल पर सरकार ने अपना कब्ज़ा जमाया। वन कानूनों की आड़ में वन विभाग देश का सबसे बड़ा ज़मींदार बन बैठा - “आज ज़मीन और जंगल से बिछुड़नेवाले लोगों की संख्या सवा दो करोड़ से ऊपर जा पहुँची है जिसमें 60 फीसदी

---

1. इदन्नमम - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 275

2. गगन घटा घहरानी - मनमोहन पाठक - पृ. 123

से कहीं ज़्यादा आबादी आदिवासी जनों की है।”<sup>1</sup> आज आदिवासियों की बद्दहालत के बारे में इदन्नमम की नायिका मन्दा की जुबानी सुनें - “जंगली झाड़ियों के फल, पशुओं का चारा और तला पोखरों के जीव-जन्तु ही खाने हैं तो हाड़ क्यों तोड़ते हो? घन चला चलाकर अपनी पसलियों को क्यों धुन रहे हो? चोंच - करमेंथा खाकर जिओ और विषैले कीडा-मकोडा खाकर मर जाओ। इतनी सी ही है न तुम्हारी ज़िन्दगी की कहानी।”<sup>2</sup> जंगल में गुज़ारा करनेवाले बाशिंदा आदिवासियों के लिए हर चीज़ की मनाही है। वे जंगल में शिकार नहीं कर सकते। अपनेलिए घर-बार बनाने के लिए लकड़ी नहीं काट सकते। अगर काटो तो चोर घोषित किए जाते हैं। मनमोहन पाठक के ‘गगन घटा घहरानी’ उपन्यास में इसका ब्यौरा मिलता है - “जंगल में शिकार करने की मनाही है। घर द्वारा बनाने के लिए लकड़ियाँ काटने पर लकड़ी समेत फारेस्टर के सामने हाज़िर कर दिया जाता है। जुर्माना और जेहल की धमकियाँ दी जाती हैं।”<sup>3</sup>

‘पार’ उपन्यास में विकास के दानव के कराल हस्तों में पड़कर दम तोड़नेवाले निरीह आदिवासियों की कराह हमें सुनाई देती है। कथित विकास के चलते राजघाट पर बाँध बनाया जा रहा है। “सरकार चाहती है कि लडैई को, जीरोन को वापस गुरीला पहाड़ पर बसाएँगे। पुराने

- 
1. ‘जंगल - जंगल लूट मची है’ - अमरेन्द्र किशोर - पृ. 22
  2. ‘इदन्नमम’ - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 281
  3. ‘गगन घट घहरानी’ - मनमोहन पाठक - पृ. 32

ज़माने के ढंग का रहन-सहन रखेंगे ताकि भविष्य में पर्यटक आकर देख सकें कि प्राचीन काल में यहाँ लोग किस तरह रहते थे।”<sup>1</sup> नतीजतन लडैई गाँव के अवाम गुरीला पहाड पर राउत आदिवासियों के बीच बसाये जाएँगे। वहाँ के मूल बाशिंदे राउतों की बदहालत को उपन्यासकार वीरेन्द्रजैन कुछ इस तरह पेश करते हैं “जो अब तक बचा है वह सब भी स्वाहा हो जाएगा। तब हम कहाँ जाएँगे? कैसे जिँएँगे?”<sup>2</sup>

आज आदिवासी समाज में चारों ओर बेचारगी है, विवशता है, बेबसी है। नौकरशाहों से लेकर नेताओं और उनके दलालों की एक नहीं कई पीढियाँ आई, जीभें लपलपाकर डंसती हुई गुज़र गई। गज़ब के कानून, सनसनी पैदा करनेवाले फरमान और ज़िन्दगी - संस्कृति को लीलनेवाली परियोजनाएँ इन सब ने जनजातीय भारत को लुटेरों - लोफरों और लालची तत्वों का उपनिवेश बना डाला। यही वजह है कि आज़ाद भारत की राजव्यवस्था से आज हर आदिवासी आहत है, गमगीन है, उत्तेजित है। संक्षेप में हमारे राजनैतिक नेताओं को चाहिए कि आदिवासियों को सपने दिखाने के बजाय उनके विकास के लिए कारगर कदम उठाएँ।

---

1. पार - वीरेन्द्रजैन - पृ. 126-127

2. वही - पृ. 51



## आदिवासी संस्कृति

मशहूर नृविज्ञानवेत्ता मिलिनोवस्की की राय में मानव जाति की समस्त सामाजिक विरासत या मानव की समस्त संचित सृष्टि का ही नाम संस्कृति है। मूल्य, मान्यता, चेतना, विश्वास, विचार, भावना, रिवाज़, भाषा, ज्ञान, कला, धर्म, जादू-टोना आदि के भी वे सभी मूर्त-अमूर्त स्वरूप संस्कृति में शामिल हैं, जिनसे मानव सृजित भौतिक जगत महत्ता एवं सार्थकता पाता है। इन सबके कारण ही मनुष्य पशु योनि से ऊपर उठकर वास्तव में मानव कहलाने का अधिकारी बनता है। इनके माध्यम से मानव की प्रकृति और मानव-मानव के बीच भिन्न-भिन्न प्रकार के रिश्तों की रचना होती है, जिससे मानव समाज का संगठन एवं संचालन होता है।

आदिवासी संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है। इसके अन्तर्गत जाति समानता, लिंग समानता, सहभागिता, सामूहिकता, भाईचारा एवं सबसे विशिष्ट प्रकृति से निकटस्थ संबन्ध एवं प्रकृति प्रेम जो अन्य सभी संस्कृतियों से आदिवासी संस्कृति को पृथक करते हैं। आदिवासी संस्कृति में मनुष्य का जीवन बिल्कुल सादा है। इनका नज़रिया उपयोगितावादी है और विचारधारा 'जीयो और जीने दो' की है। उपयोगिता के साथ-साथ इनकी कार्ययोजना सामूहिक सहयोगिता एवं अनुशासन पर टिकी हुई है।

प्रकृति का नियम है कि ऐसी व्यवस्था जातीय मानसिक एवं स्वाभाविक गठन को प्रभावित करती है।

### प्रकृति प्रेम

आदिवासी यानी इस धरती का पुत्र, धरती और प्रकृति के विकास के साथ ही पैदा हुआ, पनपा, बढ़ा एवं जवान हुआ। वे प्रकृति के सहयात्री और सहजीवि हैं। वे प्रकृति के पुजारी भी हैं। वे प्रकृति की गोद में पलते बढ़ते हैं और प्रकृति के साथ तादात्म्य साबित करते हैं। आदिवासी जनता के धर्म-विश्वास और सांस्कृतिक परंपराओं को देखने से पता चलेगा कि वे अपने धर्म-संस्कार एवं सांस्कृतिक परंपराओं को प्राकृतिक कानून के अनुकूल बनाए हुए हैं। वे अपने प्रार्थनाओं में प्राकृतिक अनुकूलता के लिए कामना तो करते ही हैं, अपने विवादों के निपटान के समय भी प्राकृतिक न्याय का ही प्रयोग करते हैं। आदिवासी चेतना व प्राकृतिक नियम के अन्तर्गत संग्रह की अपेक्षा त्याग, प्रतिशोध की अपेक्षा दया, क्षमा आदि का अहम स्थान है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में कई उपन्यास ऐसे हैं जिनमें आदिवासी पहचान एवं संस्कृति को दर्शाया गया है। कतिपय उपन्यासों पर हम नज़र डालेंगे।

वीरेन्द्रजैन के उपन्यास 'पार' में मुग़िया के माध्यम से लेखक ने पहाड़ की महिमा का वर्णन किया है। पहाड़ी आदिवासी राऊतों की

ज़िन्दगी ही इस उपन्यास का आधार है। उनका जीवन-यापन पहाड़ पर निर्भर है इसलिए मुखिया पहाड़ की खूबियाँ गिनाते नहीं थकता यहाँ तक कि अपने आप को पहाड़ का सेवक, दूत और सपूत करार देता है। “पार (पहाड़) में मंगल है। पार में प्रताप है। पार हमरा सगा माई - बाप है। मुखिया है पार का सेवक। पार का दूत। पार का सपूत।”<sup>1</sup> ‘गगन घटा घहरानी’ उपन्यास में मनमोहन पाठक ने यह दिखाया है कि आदिवासी पेड़-पौधों से किस हद तक जुड़े हुए हैं। चेतु और दामडु तो हर लकड़ी को आसानी से बिना टाँगी लगाए, बिना हाथों पर उठाए पहचान लेते हैं। वन विभाग के डिपों में जिस लकड़ी की अफसरों से पहचान नहीं हो पा रही थी वे आसानी से पहचान लेते हैं - “यह गम्हार का गोला है। बड़ा वजनी। पानी पड़ने से कैसा लाल-लाल रंग चू रहा है। कपड़े पर लग जाए तो कभी न छूटे।”<sup>2</sup> इससे पता चलता है कि आदिवासी संस्कृति वृक्षों से प्रकृति से किस हद तक जुड़े हैं। इसी उपन्यास में जागो के माध्यम से आदिवासी जीव-जालों के प्रति स्नेह एवं जड़ी बूटियों की जानकारी का भी पता चलता है। आदिवासी प्रकृति से ही मरहम ढूँढ लाता है चाहे कोई भी बीमारी हो या कोई चोट लगी हो। जागों को राय बहादुर द्वारा घायल चीते के अहाते में बंद किया जाता है। फिर भी वह जान पर खेलकर चीते को बचाता है। चीते के घाव में लगाने के लिए - “अहाते के कोने-कोने में

---

1. ‘पार’ - वीरेन्द्रजैन - पृ. 37

2. ‘गगन घटा घहरानी’ - मनमोहन पाठक - पृ. 34

घूमते हुए उसने कैसी-कैसी ढेर सारी पत्तियाँ इकट्ठी की। पत्थर पर रगड़कर उन्हें बारीकी से पीसा।”<sup>1</sup> जागो ने जान जोखिम में डालकर चीते का इलाज किया।

## धर्म

आदिवासी का अपना धर्म ‘सरना’ है जो प्रकृति का ‘धर्म’ है। वे पेड़ों और अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं। दफनाए गए या जलाए गए पूर्वजों की कब्रों या शमशानों को चिह्नित करने तथा उसकी स्मृति बनाए रखने हेतु वे उन पर पत्थर रखते हैं - जिन्हें वह ‘ससन’ कहता है और उनकी पूजा करता है। ‘ससन’ पर उसके पूरे समाज का पूरे समूह का हक होता है। उसका धर्म उसके जीने का नियम है, इसलिए वे व्यावहारिक है।

‘सरना’ एक मुंडारी शब्द है। अंग्रेज़ी में इसे ‘सक्रेड ग्रोव’ या ‘पवित्र वृक्षों का समूह’ कहा गया है। मुंडारी में अन्य नाम ‘जाएर’ है। अन्य स्थानीय भाषा में इसे ‘सरना स्थान’ कहा जाता है। इसप्रकार यह संताली में ‘जाहेर’, झारखंडी बंगला में ‘जाहिरा’, ‘जाहिर स्थान’ या ‘गरम थान’ के नाम से जाना जाता है।”<sup>2</sup> आदिवासी परंपरा के अनुसार ग्राम निर्माण के पूर्व ‘जाहिर स्थान’ या ‘सरना स्थान’ का निर्माण होता है।

---

1. ‘गगन घटा घहरानी’ - मनमोहन पाठक - पृ. 70

2. ‘आदिवासी कौन’ - रमणिका गुप्ता - पृ. 53

आदिवासियों का विश्वास है कि पहाड में विशेष पत्थरों, पेड़ों, जलाशयों कटे हुए पेड के अवशेषों में एक शक्ति विद्यमान है। आदिवासियों का विश्वास है कि इन बोंगाओं को संतुष्ट नहीं करने पर आदिवासी नर-नारी अपने कार्य के दौरान पहाड़, जंगल विभिन्न स्थानों में घूमेंगे या फिरेंगे उनमें अचानक भय उत्पन्न हो सकता है या उनके शरीर में पीडा उत्पन्न हो सकती है। इसलिए ग्रामनिर्माण के पूर्व इन बोंगाओं को एक साथ लाकर एक जगह प्रतिष्ठित करते हैं। इस सरना स्थान में - उन समुदायों के पूज्य प्रधान बोंगाओं को प्रतिष्ठित किया जाता है। जैसे - संताल समुदाय के जाहिर स्थान में मारांबुरू, जाहेर एरा, मोडेको आदि है। समकालीन उपन्यासों में खासकर संजीव के 'धार' में इन देवताओं जैसे माराबुरू एवं जाहिर स्थान का जिक्र कई जगहों पर मिलता है। यह संताल आदिवासियों पर आधारित उपन्यास है।

## **समाज**

माझी या मुंडा को केन्द्र-बिन्दु बनाकर सामूहिक रूप से काम करने की परंपरा आदिवासी समाज में युगों से चली आ रही है। यह व्यक्ति ग्राम स्तर का मुख्य सामाजिक पदाधिकारी होता है। मगर ग्राम समुदाय या गाँव के पंच से अलग हटकर के माझी का कोई स्थान नहीं है। उसी प्रकार माझी के बिना ग्राम समुदाय का मूल्य भी नहीं होता। ग्राम के सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए मुंडा समुदाय में 10 से 15 गाँवों में एक

‘मानकी’ होता है। संताल समुदायों में ‘तरफ परगना’ अथवा ‘देश माझी’ होते हैं। नदियों में अस्थि विसर्जन के लिए घाट के अनुसार ‘घाट परगना’ एवं सब डिविजन में एक मुख्य परगना होता है, जिसे ‘देश परगना’ कहा जाता है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में इस सामाजिक ढाँचे का वर्णन मिलता है। जैसे वीरेन्द्र जैन के उपन्यास ‘पार’ में ‘मुखिया’ गाँव का प्रधान होता है। इसके साथ-साथ अगले मुखिया यानी ‘गुनिया’ का चुनाव कैसे होता है, इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। संजीव के पाँव तले की दूब में गाँव के मुखिया को ‘माझी हडाम’ कहा गया है। अंत में उनके नेतृत्व में ‘डोकरी’ गाँव नये सूर्योदय की ओर अग्रसर होने का चित्रण है।

आदिवासी संस्कृति की अहम खूबी है उनकी सामूहिकता। समष्टिगत जीवन आदिवासी संस्कृति का सार है। खेत जोतना हो या घर बाँधना हो या कोई काम अकेले के बस का न हो, तो ‘लाहे’ नाम की सामूहिक मदद की परंपरा आदिवासियों में अभी भी बरकरार है। मदद के लिए आए लोगों को ‘लाहे’ बुलानेवाला खाना एवं दारु दे, यह परंपरा है। संजीव के ‘धार’ उपन्यास में बाँसगडा के आदिवासियों की पंचायत का चित्रण है। उपन्यास की नायिका मैना सौंताल आदिवासी युवक फोकल की पत्नि है। गाँव में पूँजीपति महेन्द्रबाबू द्वारा स्थापित तेज़ाब की फैक्टरी का विरोध करने पर उसे जेल जाना पड़ता है। जेल में जेलर द्वारा मैना पर बलात्कार किया जाता है। परिणाम स्वरूप मैना को बच्चा पैदा होता है। जेल से रिहा

होने पर मैना अपना बच्चा तथा सोनार युवक मंगर को लेकर अपने गाँव बाँसगडा आती है। गाँव के पंचायत में यह तय करना था कि क्या मैना सौंताल समाज में रह सकती है। किन्तु बिना लॉबीर (पंचायत) बुलाये फोकल, किस्कु, टेंगर, टुडू और अन्य सौंताल आदिवासियों द्वारा लॉबीर परंपरा का उल्लंघन करके मैना का श्राद्ध किया जाता है। लॉबीर में सर्वसम्मत निर्णय लिया जाता है कि “फोकल, किस्कु, टेंगर, टुडू और जिन सौंतालों ने लॉबीर की उपेक्षा कर बिना हमारी राय लिये मैना का श्राद्ध किया है, उन्हें लॉबीर इसी दम से जातिच्युत करती है। मैना की मजबूरी को ध्यान में रखते हुए उसके कसूर माफकर उसे पुनर्विवाह की इजाज़त देती है। मंगर को पहले विवाह के खर्चस्वरूप सौ रुपये फोकल को देने होंगे। फोकल के जाति च्युत होने के कारण फोकल और मैना से जन्मे बच्चे भी मैना के हुए।”<sup>1</sup>

स्त्रियाँ आदिवासी समाज की आधा हिस्सा हैं। आदिवासी स्त्री पति को ईश्वर नहीं समझती। उनके ये मूल्य नहीं हैं। ईश्वर मानकर या धन के लोभ से सभी संत्रास सहन किया जाए, ऐसी परंपरा आदिवासियों में नहीं है। पति के सताए जाने पर घुट-घुट कर मर जाने की अपेक्षा उस पति को छोड़कर दूसरा साथी या दूसरा पति चुनना और अपनी पसन्द के पति के साथ जीना, आदिवासी स्त्री को अधिक पसन्द है। इस व्यवहार को

---

1. 'धार' - संजीव - पृ. 55

आदिवासी समाज मान्यता देता है, उसका बहिष्कार नहीं करता। 'धार' उपन्यास में मैना इसकी ज्वलंत उदाहरण है। तेज़ाब के फैक्टरी के खिलाफ संघर्ष के दौरान पति फोकल के कारण उसे जेल जाना पड़ता है। इसलिए वह उसे 'दलाल' बुलाती है और तीन बच्चों की माँ होने पर भी पति फोकल के साथ जीना उसे मंज़ूर नहीं। वह फोकल को छोड़कर मंगर को पति के रूप में चुनती है और ता-उम्र पति से घृणा करती है।

आदिवासी संस्कृति में प्रेम को नकारा नहीं जाता बल्कि उसे बढ़ावा दिया जाता है। 'गगन घटा घहरानी' में मनमोहन पाठक कहते हैं कि प्यार करनेवालों को "बूढ़े-बुज़ुर्ग नशे में टलमल आँखों से ताकते हैं पर उनमें वर्जना नहीं होती, बढ़ावा होता है।"<sup>1</sup>

एकत्रित या संचय करने की रीति भी उनकी संस्कृति में नहीं है। वे स्वच्छंद जीवन बितानेवाले हैं। 'गगन घटा घहरानी' में उराँव आदिवासियों के जीवन का चित्रण है। उपन्यास में दिखाया है कि "बरसात बीतने के पहले ही अनाज के बर्तन-भाँडे सब रीत जाते हैं। संचय का पाठ इनके गले अभी नहीं उतरा।"<sup>2</sup> आदिवासियों के स्वतंत्र जीवन एवं स्वच्छंद इयत्ता का ब्यौरा भी इस उपन्यास में मिलता है "यहाँ सब कुछ सबका है। सबका सबके घर में आना-जाना, घुसना-निकलना। कौन किस घर का है,

---

1. 'गगन घटा घहरानी' - मनमोहन पाठक - पृ. 61

2. वही



जानने में बहुत वक्त लगा सोनाराम को। बहुत से घरों में लकड़ी के दरवाज़े नहीं हैं। सामने आँगन से बाहर लकड़ी के दो खंभों में छेद कर बाँस की लाठियाँ लगा दी गई है।”<sup>1</sup>

आदिवासी समाज की लोक संस्कृति के अन्तर्गत मुख्यतः लोकगीत, लोकनृत्य, लोकवाद्य, लोक-कथाएँ, पर्व, त्योहार आदि का समावेश किया जाता है। आदिवासी अपने-अपने धार्मिक पर्वों और उत्सवों को पूरे उल्लास के साथ मनाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उस समाज में जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध प्रकार के विधि-विधान हुआ करते हैं। हरेक मौसम के अन्त में या फसल प्राप्ति पर विशेष उत्सव मनाये जाते हैं। ऋतु के अनुरूप उत्सव मनाने की परंपरा उन लोगों में अनादि काल से देखी जा सकती है। वे लोग ऐसे उत्सवों का जमकर लुत्फ उठाते हैं। हरेक त्योहार में वे लोग पूरी रात समूह में नाच-गान करते हैं। उत्सवों का भोजन मांस और शराब से सज्ज होता है। शर्मा बाबू आदिवासियों के उत्सव के संदर्भ में कहते हैं कि - “सुनिए मंगरजी। सौतालों की यह परंपरा, है वे भोज-उत्सव में बछड़े का मांस उसी तरह खाते हैं जैसे हम दिक्कू लोग बकरे का मांस। यह दिक्कूओं का भोज नहीं है, सौतालों का भोज है।”<sup>2</sup> आदिवासियों में स्त्री-पुरुष हँडिया पीकर ऐसे उत्सवों पर जी

---

1. ‘गगन घटा घहरानी’ - मनमोहन पाठक - पृ. 52

2. ‘धार’ - संजीव - पृ. 53

भर कर नाचने का चलन है। 'धार' में मैना सोचती है "इस बार सरहुल में जी भर के हँडिया पीकर नाचेगी।"

मनमोहन पाठक के उपन्यास 'गगन घटा घहरानी' में उराँव आदिवासियों का चित्रण मिलता है। उनके 'करमा' त्योहार का विस्तृत ब्यौरा इसमें है। रात भर वे हँडिया पीकर नाचते हैं। उनके लोकनृत्य का नज़ारा देखे "ढकनी छतनी में खेत की मिट्टी लाकर नाना प्रकार के बीज डालकर करमा सजाया गया है, जिसके चारों ओर झूम-झूमकर गाते हुए नृत्य कर रही है गाँव की लड़कियाँ, लड़के, बूढ़े-बूढ़ियाँ सब के सब एक साथ, उनके बीच कोई फर्क कर आए ऊँच-नीच का, वयस का, उत्साह-उमंग का तो जानें। परब-त्योहार में सबके मन में वैसे ही निर्दोष अंकुर फूटते हैं।"<sup>1</sup>

त्योहारों में विभिन्न वाद्यों एवं नृत्यों का प्रयोग होता है। 'गगन घटा घहरानी' में देखिए - "आज तो ढोल-माँदल की आवाज़ सबसे तेज़ है। आज तो सारा खजुरी, लुंपुगा आया हुआ है। झूमर के गीत में ही दोनों गाँव एक दूसरे से होड ले रहे हैं।"<sup>2</sup>

---

1. गगन घटा घहरानी - मनमोहन पाठक - पृ. 61

2. वही

आदिवासियों के बीच काफी तादाद में लोकगीत प्रचलित है। ये प्रकृति से जुड़ी हुई है। इनमें ही इनकी संस्कृति का समावेश है। 'धार' उपन्यास में वर्णित एक सौताली लोकगीत देखें -

“लेयाड गाड़ा धारे रे, हमन हमन दारे  
फाहाउ आकान पेडा नाइ, वाहा थारे, थारे  
वाहा लागी हायरे मने, जिउंग आखान थारे।”<sup>1</sup>

(‘बारहों महीने पानी से भरे रहनेवाले छोटे से नाले के बगल के फूलवाले पेड में जगह-जगह फूल खिले हैं शिशु। फूल बगीचे में है और शिशु है दूर। फूल के लिए आकुल है शिशु।) इसी तरह संजीव के ‘पाँव तले की दूब’ उपन्यास में भी ‘डोकरी’ गाँव के परिवर्तन को लोकगीत के माध्यम से कुछ इस तरह ज़ाहिर किया गया है -

“आलोक पाडहाल जेल ते  
आलो पे मेना नुई दो...।”<sup>2</sup>

(हम को लिखते पढ़ते देख कोई ये मत सोचो कि ये सिर्फ लिख पढ़ ही सकता है। इसको धान रोपना नहीं आता। वहाँ देखो वह बड़ा बाँध हमने बाँधा है। वहाँ खेत में जो धान है वह हमने ही रोपा है।)

---

1. 'धार' - संजीव - पृ. 162

2. पाँव तले की दूब - संजीव - पृ. 152

## भाषा पर संकट

भाषा को भावनाओं और विचारों का वाहक माना जाता है। आदिवासी साहित्य का अमूल्य भंडार उनके लोकगीतों में है। डॉ. केसरी कहते हैं कि “जो समाज अपने को अभिव्यक्त नहीं कर पाता, उसकी समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता।”<sup>1</sup> जिनमें आदिवासियों की संघर्ष गाथा, इतिहास, विचार, भावना आदि सुरक्षित हैं। आदिवासी भाषा की कोई लिपि नहीं रही इसलिए साहित्य लोकगीतों और लोककथाओं में सीमित रहा। मिशनरियों के आगमन से इसमें विकास हुआ। मौजूदा दौर में आदिवासी भाषाओं की पढ़ाई लिखाई होती है।

पूरे भारतवर्ष में 24 ऐसी भाषाएँ हैं जिनको बोलनेवाले सिर्फ दस हज़ार से ज़्यादा लोग है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार कश्मीरी और सिंधी बोलनेवालों की तादाद क्रमशः बत्तीस लाख और बीस लाख है। इन दोनों भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा प्राप्त है। बगैर इसके मणिपुरी एवं त्रिपुरा क्रमशः नौ लाख, पाँच लाख लोगों द्वारा बोली जाती है। इन भाषाओं को संबद्ध राज्यों में सरकारी कामकाज हेतु मान्यता प्राप्त है। जबकि उनसे अधिक आबादी द्वारा बोली जानेवाली भाषा-संताली (बयालीस लाख); उराँव (तेरह लाख) तुलु (चौदह लाख) को राज्यस्तर

---

1. आदिवासी कौन - रमणिका गुप्ता - पृ. 45

पर भी मान्यता नहीं है। बहरहाल संताली को आठवीं अनुसूची में ले लिया गया है।

बिहार, बंगाल और मध्यप्रदेश राज्यों में आदिवासी को हिन्दी या बंगला माध्यम से पढाया जा रहा है। भाषायी भिन्नता के कारण पहले तो आदिवासी बच्चों को इन भाषाओं के उच्चारण तथा व्याकरण को ही समझने में कई वर्ष लग जाते हैं। हिंदी या बंगला के साथ-साथ मातृभाषा में भी शिक्षा दी जाए तो उनके बच्चे हीनता की ग्रन्थी से जल्दी उबरेंगे। फिल्हाल हमारे देश में इसका प्रावधान नहीं है।

विकसित भारतीय भाषाओं को सीखने के क्रम में एक आदिवासी बच्चा दो तरह की मानसिक ग्रन्थियों का शिकार हो जाता है। पहला तो यह है कि वह अपनी भाषा से कटता है और अपनी मातृभाषा को ही हीन भावना से देखता है। इस तरह वह अपनी भाषा, संस्कृति परिवेश आदि की उन जड़ों से कटता जाता है, जहाँ से उसे जीवनदायिनी शक्ति प्राप्त हो जाती है। दूसरी ओर विकसित भाषा को सीखने के क्रम में अपनी मातृभाषा से पृथक उच्चारण, व्याकरण एवं वाक्य रचना की पद्धति के कारण आत्मसात करने में देरी करता है। संजीव के 'धार' उपन्यास में हम देखते हैं कि अविनाश शर्मा जनखदान की पाठशाला में नायिका मैना और

उनके साथियों को हिन्दी पढा रहे हैं। हिन्दी पढ़ते हुए उन्हें जिन-जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है उसका तफसील से यहाँ ब्यौरा मिलता है - “ई नहीं यह, रटो। इयेह! इयेह! इयेह।” ‘य बोलो’ इये, ये, ये...। केतना की जगह ‘कितना’, काहें की जगह क्यों।” ...वह “रटने लगी, कितना, कितना, कितना...” उसे बार-बार इस बात पर झल्लाहट हो रही थी कि उसकी जबान सीधी क्यों नहीं होती। घण्टों रट-रट के जतन से उसको सीधा करो और छोड़ दो तो फिर कुत्ते की पूँछ जैसी टेढी की टेढी।”<sup>1</sup>

मिशनरियों द्वारा हो रहे पढ़ाई की पोल ‘धार’ उपन्यास में संजीव ने खोल दी है। मेरी हेब्रम (धर्म परिवर्तित आदिवासी युवति) मैना से कहती है के वे लिपि को लेकर आन्दोलन चलाने जा रहे हैं। उनके अनुसार सौताली भाषा कब तक देवनागरी की गुलाम रहेगी और देवनागरी में वो क्षमता भी नहीं है कि सौताली शुद्ध-शुद्ध लिखी जा सके। स्टुअर्ट वाबू चाहते हैं कि देवनागरी छोड़कर रोमन लिपि अपना ली जाय। मेरी का पति जैकब जनखदान में अपना नाम लिखाने आता है और पिता का नाम बताता है - ‘टुएट हेब्रम’। स्टुअर्ट को ही टुएट बोला जा रहा है। मैना सोचती है कि “बेचारा नाम तक तो सही बोल ही नहीं पा र हा था और

---

1. ‘धार’ - संजीव - पृ. 167-168

इसे जोत दिया गया था उस आन्दोलन में सौताली हिन्दी में न लिखकर अंग्रेज़ी में लिखी जाय।”<sup>1</sup>

जब आम अवाम की उपस्थिति जंगलों में आदिवासियों की जीवन व्यवस्था में हुई है। तब से शोषण शुरू हो गया है। जंगल तबाह हो रहा है। उनकी आबो-हवा दूषित हो रहा है। वे दो वक्त की रोटी के लिए दर-दर भटकने के लिए गाँवों पर मोहताज होने के लिए मजबूर हो गए हैं। उनकी संस्कृति ही नष्ट होने के कगार पर है। वे अपनी भाषा छोड़कर दूसरों की भाषा को अपनाने के लिए मजबूर हो गए हैं। इस तरह उनकी भाषा व उनकी संस्कृति नष्ट होने के कगार पर है। यहाँ अभिव्यक्ति संकट है। अपने वजूद को अभिव्यक्त करने का माध्यम है भाषा वही नष्ट होती जा रही है। ‘पार’ उपन्यास में वीरेन्द्रजैन ने राउत आदिवासियों की इस विडम्बना का चित्रण किया है। मुखिया के अनुसार जितनी भाषा व बोल वे खेरे का मुखिया होके बोलता है वह तो गाँववालों के बच्चे तुतलाने के दिनों में ही जान जाता है। मुखिया सोचता है कि “अब जब तक हमारी जनीं उनके बोल कि बोली परचेंगी (पहचानेंगी) तब तक तो जाने का से का हो लेगा।”<sup>2</sup>

---

1. ‘धार’ - संजीव - पृ. 167-168

2. ‘पार’ - वीरेन्द्र जैन - पृ. 30

संक्षेप में सरकार, मिशिनरी, संघ और विभिन्न राजनीतिक दलों के सहारे आदिवासी अपना कितना विकास कर सकते हैं? यह भी आज सोचने का विषय है। इन सभी के अपने पूर्वाग्रह और विचारों के साँचे तैयार है, जिनमें इन निरीह लोगों को ढालकर ही वे उनका विकास करना चाहते हैं। उनके लिए हम एक साधन है, उनकी सफलताओं के लिए इसलिए उन्हें स्वयं अपनी अस्मिता; भाषा, संस्कृति आदि की रक्षा हेतु आगे आना होगा। बैसाखी के सहारे चलने की आदत और हर बात के लिए किसी की ओर मुँह देखने की प्रवृत्ति से उन्हें छुटकारा पाना होगा या छुटकारा पाने की कोशिश तो करनी ही होगी।





चौथा अध्याय  
विस्थापन का मुद्दा

# विस्थापन का मुद्दा

## विस्थापन

आम तौर पर मूल से उखड़कर बिखर जाना ही 'विस्थापन' है। लोग जब अपने जन्म एवं आवास स्थान छोड़कर एक नयी जगह की ओर प्रस्थान करते हैं तो उसे विस्थापन कहते हैं। विस्थापन, केवल एक सरहद को पार करने का कार्य नहीं है बल्कि इससे जुड़े लोगों के जीवन के हर पहलु को प्रभावित करनेवाली एक जीवनपर्यन्त प्रक्रिया है। दुनिया में 'विस्थापन' की कोई मानक परिभाषा नहीं है। संयुक्त राष्ट्र (U.N) के अनुसार "विस्थापित वे हैं जो किसी दूसरे देश में एक साल से ज़्यादा स्वेच्छा से या किसी दबाव से, स्थायी एवं अस्थायी तौर पर तथा किसी अन्य कारणों से विस्थापित होकर जीवन बिताते हैं।"<sup>1</sup>

## विस्थापन के विविध रूप

जीवन की प्रगति के साथ-साथ विस्थापन में भी बदलाव आया है। कभी स्वेच्छा से लोग एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर पलायन

---

1. [http://en.wikipedia.org/wiki/human\\_migration](http://en.wikipedia.org/wiki/human_migration)

करते हैं। इसके अलावा किसी मजबूरी या दबाव से भी लोग विस्थापित हो जाते हैं। स्वेच्छा से स्थानान्तरण करनेवाले अपने निर्णय से खुश होते हैं और दूसरे स्थान पर निवास करने में भी कामयाबी हासिल करते हैं। मगर विस्थापन के लिए मजबूर बनते लोगों की बद्दहालत आपत्तिजनक है। दबाव या मजबूरी से विस्थापन यानी “संघर्ष, पारिस्थितिक आपदाओं, अणु एवं रासायनिक आपदाओं, खेती एवं विकास योजनाओं से प्रभावित शरणार्थियों का पलायन है।”<sup>1</sup> अपने देश या मिट्टी से मजबूरन या दबाव से विस्थापित जन मानसिक तौर पर टूटकर बिखर जाते हैं एवं दूसरे स्थान पर बसते हुए भी उनके मन में हमेशा मूल मिट्टी की यादें ताज़ी रहती है और वे वहाँ लौटने के लिए तरसते रहते हैं।

विस्थापन का एक प्रमुख रूप, अंतर्राष्ट्रीय विस्थापन यानी एक मुल्क से दूसरे मुल्क में जाकर बसना है। यह विश्वव्यापी कार्यकलाप है जिसके लिए ज़्यादातर आर्थिक कारण ही ज़िम्मेदार होते हैं। ज़िन्दगी को अधिक खुशहाल बनाने के ख्वाब से लोग अपने मुल्क से प्रस्थान करते हैं और यह वे मजबूरन करते हैं। लोग अपने घर-परिवार, देश और मिट्टी से अलग होकर एक अन्य मुल्क और परिवेश में चले जाते हैं। माहौल में परिवर्तन आने से उनकी ज़िन्दगी में काफी कठिनाइयाँ एवं उलझनें आती हैं। इस नये परिवेश के घुटन भरे माहौल से वे

---

1. <http://www.forced migration.org/about/what is fm>

समझौता करते हैं सिर्फ इसी ख्वाहिश में कि अपनी आर्थिक तरक्की के बाद अपना देश लौट जाएँगे।

राष्ट्र के विभाजन से बनते विस्थापन भी मजबूरी में किया गया विस्थापन है। संघर्ष से होनेवाला विस्थापन भी दबाव के अंतर्गत आता है। “देशीयता, वंश, धर्म एवं राजनैतिक मतभेदों के कारण होनेवाले आभ्यंतर संघर्षों, हिंसा, मारघाट और ऐसे माहौल में जब सरकारें जनता के जान-माल का संरक्षण नहीं कर पाती है तो वे पलायन करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इसे संघर्ष प्रेरित पलायन कहते हैं।”<sup>1</sup>

पर्यावरण एवं पारिस्थितिक संकट से होते पलायन भी विस्थापन का नवीन एवं प्रचलित रूप है। विकास परियोजनाओं एवं प्रक्रियाओं से काफी लोग विस्थापित हो जाते हैं, इसी कारण यह विकास कार्यक्रम समाज के लिए हानिकारक तत्व भी बन जाते हैं।

आंतरिक रूप से विस्थापित हुए लोगों की तादाद में आयी वृद्धि एक अहम चुनौती है। पलायन के लिए विवश लोग शरणार्थियों के समान है मगर ये कोई अंतर्राष्ट्रीय सरहद पार नहीं करते। ये अपने ही मुल्क के भीतर ही बसते हैं। इसलिए ये मासूम लोग शरणार्थियों के लिए स्थापित किसी भी अंतर्राष्ट्रीय योजना की सुरक्षा के तहत नहीं आते। अपनी सुरक्षा

---

1. <http://www.forced migration.org/about/what is fm>

और मदद के लिए एक भी अंतर्राष्ट्रीय सभा स्थापित न होने के कारण विस्थापित मूल से उजड़ जाने की पीड़ा को चुपचाप सहने के लिए अभिशप्त है।

### विस्थापन के अनुपात

अंतर्राष्ट्रीय विस्थापन संस्था के विस्थापन रिपोर्ट-2010 के अनुसार “दुनिया भर में 214 अरब लोग विस्थापित हो चुके हैं। अगर यह इसी तरह जारी रहा तो यह आंकड़ा वर्ष 2050 तक आते 405 अरब तक पहुँचने की संभावना है।”<sup>1</sup> 2010 में करीब 27.5 अरब लोग आंतरिक तौर पर विस्थापित (Internally displaced) हुए थे। पूरे विश्व में अनैच्छिक रूप से विस्थापित होनेवालों की संख्या 1840 लाख से भी ज़्यादा है। इसमें 160 लाख शरणार्थी और शेष 260 लाख आंतरिक रूप से विस्थापित हैं। 250 लाख लोग प्राकृतिक विपत्तियों के कारण विस्थापित हुए और 1050 लाख से भी अधिक लोग विकास योजनाओं के कारण विस्थापित हुए।

---

1. <http://www.forced migration.org/about/what is fm>

## विकास से उत्पन्न विस्थापन

“विकास से उत्पन्न विस्थापन के अन्तर्गत वे लोग आते हैं जो विकास परियोजनाओं और नीतियों के तहत एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर पलायन करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।”<sup>1</sup>

आज औद्योगिक विकास से भारी पैमाने पर मानवीय विस्थापन हो रहा है। अक्सर ऐसे विस्थापित होनेवाले मासूम लोगों को नज़र अंदाज़ किया जाता है। ऐसी योजनाओं में प्रमुख हैं - (1) जल विद्युत शक्ति उत्पादन एवं सिंचाई के लिए बाँधों का निर्माण (2) राजमार्ग, रेलपथ एवं सिंचाई नहर जाली का निर्माण (3) हवाई अड्डों का निर्माण (4) नगर और बंदरगाहों का निर्माण (5) सबवे एवं भीतरी शहरीय सड़क योजना (6) खनन कार्य (7) देशीय संरक्षित अभयारण्य (8) सुरक्षित आर्थिक क्षेत्र (9) कोयले से संचालित ताप बिजलीघर (10) अन्य औद्योगिक कारखाने आदि।

आंकड़ों के अनुसार “90 के दशकों में करीब 90 से 100 अरब लोग विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुए थे।”<sup>2</sup> विकास योजनाओं में जैसे बताया गया प्रमुख स्थान महाकाय बाँध निर्माण को जाता है। “हर

---

1. [http://www.forcedmigration.org/about/what is fm](http://www.forcedmigration.org/about/what-is-fm)

2. " "

साल केवल बाँधों के कारण दुनिया में 10 अरब लोग विस्थापित हो जाते हैं।”<sup>1</sup> आधिकारिक गणना निरूपण के अनुसार बाँध, विद्युत शक्ति उत्पादन योजनाएं, खदान और कारखानों के कारण ज़्यादातर विस्थापन हो रहा है। भारत में ऐसी विकास योजनाओं के कारण विस्थापित होनेवालों की संख्या करीब साढ़े तीन करोड़ है जो पूरे विश्व की तुलना में सबसे ज़्यादा है। भारत के सिंगरौली में विकास योजनाओं के कारण विस्थापित होनेवालों की संख्या डेढ़ लाख से ऊपर पहुँच गया है। सरकारी पुनर्वास योजनाओं के अंतरगत उन्हें ऐसी जगहों पर बसाया गया है जहाँ न तो बिजली का प्रबंध है और ना ही नौकरी का। राजनीतिक विस्थापन की तुलना में विकासोत्पन्न विस्थापन ज़्यादा गंभीर है। भारत और चीन सरकार ऐसे विस्थापनों के लिए विस्तृत रूप से उत्तरदायी है।

### **बाँधों से विस्थापन**

भारत में विकास से होनेवाले विस्थापन में मुख्य भूमिका बाँध निर्माण से उत्पन्न विस्थापन की है - “गत पचास सालों में लगभग तीन हज़ार 600 बाँध निर्मित हुए और हज़ार बाँधों पर निर्माण कार्य चल रहा है।”<sup>2</sup> विश्व भर के बाँध निर्माण में तृतीय स्थान भारत का है। भारतीय विशेषज्ञों के अनुसार बाँध निर्माण से विस्थापित लोगों की

---

1. <http://www.forcedmigration.org/about/whatisfm>

2. राजभाषा भारती - जनवरी-मार्च 2001

संख्या दो से चार करोड़ के बीच है। मात्र “नर्मदा घाटी परियोजना जो 1300 कि.मी. लंबी है, इससे लगभग दो करोड़ पचास लाख लोगों का जीवन प्रभावित होगा।”<sup>1</sup>

भारतीय नियोजन आयोग द्वारा सन् 1972 में, गंगा नदी के ऊपरी तट पर तेहरी बाँध बनाए गए। इसकी वजह सौ गाँव जल के भीतर आ गए और लगभग नब्बे हज़ार परिवार विस्थापित हुए। पुनर्वास के मामले में परियोजनाओं की अवधि काफी लंबी होने की वजह विस्थापितों की परेशानियाँ भी बढ़ जाती हैं।

1990 में निर्मित बरगी नर्मदा नदी का प्रथम बाँध है। इस कारण 162 गाँवों के एक लाख चौदह हज़ार लोग विस्थापित हुए। मुआवज़े से वे वंचित रहे। साथ आजीविका से भी बेदखल हो गये।

उड़ीसा की महानदी पर बनाये हिराकुंड बाँध, भारत के स्वातन्त्र्योत्तर प्रमुख बहु आयामी नदी-घाटी परियोजनाओं में प्रथम है। 1957 में निर्मित इस बाँध से इक्कीस हज़ार पारिवार विस्थापित हुए। सालों बाद आज भी लोग विस्थापन का दर्द भुगत रहे हैं।

अरुंधति रॉय के शब्दों में “पिछले पचास वर्षों में अकेले हिन्दुस्तान में बड़े बाँधों ने 3 करोड़ 30 लाख से ज़्यादा लोगों को विस्थापित किया

---

1. राजभाषा भारती - जनवरी-मार्च 2001



है।”<sup>1</sup> इसमें सबसे विवादग्रस्त परियोजना है सरदार सरोवर जिसने 237 गाँवों से सतसठ हज़ार लोगों को विस्थापित कर दिया। इसके खिलाफ ही नर्मदा बचाओ आन्दोलन शुरू हुआ।

### समकालीन उपन्यासों में चित्रित विस्थापन की समस्याएँ

समकालीन हिंदी उपन्यासों में बाँधों से उत्पन्न विस्थापन का सही चित्रण मिलता है। बीरेन्द्रजैन के ‘डूब’ और ‘पार’ दोनों उपन्यास बाँध निर्माण और विस्थापित लोगों की व्यथा कथा पर आधारित है। ‘डूब’ उपन्यास में हम देखते हैं कि मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश सरकारें शहरों के बिजली की ज़रूरत पूरी करने के लिए राजघाट बाँध परियोजना तैयार करती है। इसके फलस्वरूप सैकड़ों गाँव और वहाँ के हरे-भरे खेत और खलिहान नष्ट हो जाता है। लडैई ‘डूब’ क्षेत्र घोषित किया जाता है। लेकिन निर्णय-अनिर्णय के बीच इनकी नियति झूलते हुए दिखाई देती हैं। अंत में बाँधवालों ने सरकार को सुझाव दिया कि पंचमनगर महल के पीछे जब वह दीवार बन जाएगी, तब उस दीवार और दीवार के पीछे से लडैई तक एक अभयारण्य का निर्माण होना चाहिए ताकि वहाँ जंगली जानवर बेखटके रह सकें। इसतरह निरीह गाँववासी अपने गाँव से कटकर जंगल में जंगली जानवरों के साथ जीवन बिताने के लिए अभिशप्त है।

---

1. नवसाम्राज्य के नये किस्से - अरुंधति रॉय - पृ. 177

वीरेंद्रजैन के 'पार' उपन्यास में हम देखते हैं कि सरकार की गलत नीतियों के कारण लडैई गाँववालों एवं जीरोन खेरे (आदिवासी गोत्र समूह) को पहाड पर बसाने का निर्णय लिया जाता है - "लडैई को जीरोन को वापस गुरीला पर बसायेंगे। पुराने ज़माने के रहना-सहना रखेंगे ताकि भविष्य में पर्यटक आकर देख सकें कि प्राचीन काल में लोग किस तरह रहते थे।"<sup>1</sup> यानी संपन्न शहरीय ज़िन्दगी को और ज़्यादा ऐश और आराम दिलाने के लिए इन निरीह गाँववालों की बलि चढ़ा दी जाएगी उन्हें शहीद घोषित किए जाएंगे और पर्यटकों के सामने उनका नुमाईश करेंगे। यही है विकास। यों पुरानी संस्कृति चलायमान नहीं कहीं-कहीं विद्यमान रहेंगी स्थापत्य की वस्तुओं की तरह स्थिर स्थापित।

### मुआवज़ा

मुआवज़े और पुनर्वास के लिए डूब क्षेत्र पर सर्वे किया जाता है। पहले तो सबसे घातक हाथ की सफाई 'परियोजना प्रभावित' की परिभाषा ही है, जिसके तहत गाँवों के सर्वाधिक विपन्न लोगों को छोड़ दिया जाता है। मूलतः वे लोग जो भूमिहीन हैं अर्थात् मछुआरे, केवट, बालु - बजरी निकालनेवाले, दिहाडी मज़दूर और वे अन्य, जिन्हें 'अतिक्रमणकारी' माना जाता है, परियोजना प्रभावितों की परिभाषा में नहीं आते हैं, इसलिए

---

1. पार - वीरेन्द्रजैन - पृ. 126-127

बाहर कर दिए जाते हैं। कुछेक मामलों में तो पूरा का पूरा गाँव ही इस प्रक्रिया का शिकार हो जाता है। मसलन “नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण (नर्मदा कंट्रोल अथॉरिटी) का कहना है कि केवल 211 गाँव ही मुआवज़े के हकदार होंगे। लगभग 38 गाँवों को ‘अतिक्रमणकारी’ कह दिया गया है और वे मुआवज़े के अधिकार से वंचित कर दिए गये हैं।”<sup>1</sup> मुआवज़े की दर तय करते समय विस्थापितों की तरफ से यह माँग होती है कि उनको मुआवज़ा परियोजना क्षेत्र की मौजूदा कीमतों के हिसाब से दिया जाए। लेकिन उन्हें केवल इसका आधा ही नसीब होता है।

पटवारी और राजस्व निरीक्षक एवं अन्य अफसर मिलकर विस्थापितों को लूटते हैं। पटवारी और निरीक्षक हरेक चीज़ की कीमत खटाकर लिखते हैं। सिंचित भूमि को असिंचित के बतौर दर्ज करते हैं। पक्के मकानों को कच्चा दिखाते हैं। नतीजतन जिन किसानों के पास दस एकड़ ज़मीन थी, वे मुश्किल से पाँचवाले रह गए हैं। एक आध एकड़वाले छोटे किसान तो सीधे भूमिहीन मज़दूर हो जाएँगे। धनी गरीब हुए और दरिद्र अकिंचन। इसे कहते हैं ‘बेहतर प्रबंधन’।

लोगों के पास इस फैसले के खिलाफ अदालतों में शिकायत पेश करने का विकल्प है। दूसरा रास्ता पटवारियों और निरीक्षकों को घूस देने का है। गरीब लोगों के पास इतना पैसा नहीं होता कि वे घूस दे सके

---

1. नव साम्राज्य के नये किस्से - अरुंधति रॉय - पृ. 192

इसलिए वे बेदखल हो जाते हैं। पटवारियों को घूस देनेवालों को बड़ी रकम का मुआवज़ा मिल जाता है। यह बात और है कि इसका अधिकांश हिस्सा घूस के बतौर अधिकारियों के पास पहुँच जाता है। यहाँ तक कि यह अनुचित बेहुदा मुआवजा भी, पूरी तरह से वितरित नहीं होता।

वीरेन्द्रजैन के 'डूब' उपन्यास में मुआवज़ा के बाँटते वक्त होते सरकारी मुलाज़िमों के पतित आचरण, क्रूरता, घूसबाज़ी, पटवारी - बनिया गठबंधन, अधिकारियों का साहुकारों से अनैतिक सांठगांठ सभी का पर्दाफाश किया गया है। कई किसानों ने कोशिश की कि बिना घूस दिए मुआवज़ा पाएँ। लेकिन भू अर्जन अधिकारी के दफ्तर में बाबू तो बाबू, चपरासी भी ऐसे पेश आता है, जैसे उनके सामने विकास के लिए अपना सब कुछ देनेवाला देशप्रेमी नहीं बल्कि कोई देशद्रोही खड़ा हो। मुआवज़े की जानकारी पाने के लिए निरक्षर किसानों को घंटों खड़ा होना पड़ता है। फिर भी बिना घूस के कोई उसकी तरफ मुड़कर भी नहीं देखता।

'डूब' में अफसरों और बनियों के अनैतिक सांठगांठ को भी दिखाया गया है। यहाँ हम देखते हैं कि अफसर लोग निर्मल साव के साथ मिलकर किसानों को डरा, धमकाकर प्रति बीघा 600 रुपये मुआवज़े की रकम से अपने जेब में कर लेते हैं। यहाँ लेखक की यह टिप्पणी सही निकलती है कि "कैसी अंधेरनगरी और कैसा चौपट राजा आया है यह।

जिन सरकारी मुलाज़िमों का काम सरकार की हिफाज़त करना, जनता की सेवा करना होना चाहिए वही सरकार के पाँव कुतर रहे हैं।”<sup>1</sup>

### पुनर्वास

सर्वेक्षणों से यह तथ्य सामने आता है कि आधे से ज़्यादा विस्थापितों का पुनर्वास सरकारी स्तर पर नहीं किया गया और उन्हें अपने हाल पर जीवन गुज़ारने के लिए विवश होना पड़ा। विस्थापितों ने अन्य जागरूक लोगों के सहयोग से इस विस्थापन का विरोध किया। लेकिन विडंबना की बात है कि विकास के नाम पर संभावित विस्थापन का विरोध उस सोपान पर शुरू होता है जब सारे निर्णय लिये जा चुके होते हैं। जिन लोगों की कीमत पर परियोजना कारगर होता है उन्हें अंत में पता चलता है कि उन्हें बेदखल करने का फैसला सराकार ने राज्य, केन्द्र और विश्व-स्तर पर ले लिया है। उल्लेखनीय है कि विस्थापन के कारण उनके उत्थान की अन्य सारी गतिविधियाँ बाधित हो जाती हैं चाहे वह शिक्षा, स्वास्थ्य, पेय-जल, सड़क, संचार, आवास और जीविकोपार्जन आदि किसी भी अहम मसले से जुड़ी हुई क्यों न हो।

वीरेन्द्रजैन के ‘डूब’ उपन्यास में इसके विकराल रूप का चित्रण मिलता है। देश के विकास के लिए की गयी अनेक परियोजनाओं की

---

1. वीरेन्द्रजैन ‘डूब’ - पृ. 245

कडी में बेतवा नदी के राजघाट पर बाँध बनाने की योजना बनते ही लडैई डूब क्षेत्र में आ गया। यह आदेश निकलने पर लडैई गाँव से स्कूल उठ गया, मास्साव (मास्टर साब) वहाँ से गये, गज़ट का आना बंद हुआ और हफ़्ते में दो चार बार चक्कर लगानेवाली मोटर का आना भी बंद हुआ। सरकार की इस हैवानियत के प्रति विद्रोह माते के इन शब्दों में झलकता है - हम से तो तुमने छीना हो छीना है मदरसा छीना, मोटर छीनी, सडक छीनी, तेंदु पत्ते का रोज़गार छीना, मास्साव छीने, मुसलमान भाई छीने....., शांति छीनी, मेलजोल छीना।”<sup>1</sup>

सरकार की तरफ से पुनर्वास और मुआवजे का आश्वासन दिया जाता है। मगर वादे टूट जाते हैं। जबकि लोगों की जिंदगी तबाह हो जाती है, राजनैतिक नेता आपराधिक उपेक्षा का हत्यार अख्तियार कर लेते हैं। अगर पुनर्वास किया जाए तो भी ऐसे चट्टानी एवं बंजर इलाकों में रहने के लिए बेहद गरीब लोग ही जाते हैं। बाकि लोग पास-पड़ोस के कस्बों में रिश्तेदारों की रहम का मोहताज होकर ज़िन्दगी बसर करते हैं। ऐसे पुनर्वास इलाकों में न पानी होता है, जल-मल निकासी का प्रबंध नहीं होता, कोई छत नहीं होता, स्कूल और अस्पताल का तो नाम और निशान नहीं होगा। बीरेन्द्रजैन के ‘पार’ उपन्यास में तो विस्थापन का खतरनाक एवं दर्दनाक रूप हमें देखने को मिलता है। पुनर्वास सातों पहाड़ों के बीच

---

1. वीरेन्द्रजैन - ‘डूब’ - पृ. 181

जंगल में होता है। वीरेन्द्रजैन के लफ़्ज़ों में “धीरे-धीरे लडैई के बाशिंदे जा रहे हैं पठार पार के गाँवों की ओर अँधियाई के सातों पारों (पहाड) के बीच बसे राउतों के बीच। वहाँ जहाँ सूर्य भी अपने पूरे तेज के साथ नहीं पहुँचता; विकास के पाँव तो स्वप्न की बात। अब तो ये वही रहेंगे। उजड़ने की चिंता और बिछुडने के गम से दूर निश्चित, निरापद, निरी प्राकृतिक अवस्था में, सरकार की पाँच शताब्दी पहले के जीवन में ले जाने की योजना को धता बताकर पचीस शताब्दी पीछे के जीवन से फिर एक शुरुआत करेंगे।”<sup>1</sup> वहाँ रहनेवाले आदिवासी ‘राउत’ अपने परिवेश और व्यवस्था से भी हाथ धो पड़ते हैं।

विस्थापित लोगों को रोज़गार तक नहीं दिया जाता। यह विस्थापितों का राष्ट्रीय अनुभव है। ‘डूब’ उपन्यास में दिखाया है कि बाँध बन रहा है तो ज़ाहिर सी बात है कि वहाँ काम की या रोज़गार की कोई कभी नहीं होगी। लेकिन सरकार और ठेकेदारों की तरफ से यह निर्णय लिया गया है कि आसपास के किसी भी गाँव के किसी भी आदमी को मज़दूरी नहीं दी जाएगी। इसका कारण महज़ इतना है कि “यहाँ के स्थानीय आदमी मन लगाकर पूरे समय काम नहीं करेंगे। क्योंकि वे अपने तीज-त्योहार मनाना नहीं छोड़ेंगे काम की खातिर। घर-परिवार के शादी-ब्याह में शामिल होना भी न त्यागेंगे। कोई बीमार दुखी हुआ तो उसकी तीमारदारी में जुटना भी

---

1. वीरेन्द्रजैन - ‘पार’ - पृ. 166

नहीं छोड़ेंगे। सरकारी बाबु से, कि ठेकेदार के मुँह से कोई ऊँच-नीच बात निकल गई तो उससे झगडने से बाज भी न आएँगे।”<sup>1</sup> इन सबके कारण बेकार में अडचन आएगा। इसलिए वे दूर से मज़दूरों को लाकर काम पर लगाते हैं। इसतरह देश के लिए अपना सबकुछ कुर्बान कर देनेवाला विस्थापित अपनी आजीविका से भी वंचित रह जाते हैं।

‘डूब’ उपन्यास में यह दिखाया है कि कैसे सरकार विस्थापितों को बूँद-बूँद पानी के लिए तरसने के लिए छोड़ देती है। राजघाट से जो नहर पानीपुरा तक जा रही है उसे सरकार मुँहाने से बंद करना चाहती है। पानीपुरा में पानी का एक मात्र साधन यह नहर है। तो ज़ाहिर है नहर बंद करने पर गाँव स्वतः उजडेगी। सरकार को चाहिए कि पहले गाँववालों को कहीं ओर बसाए और बाद में नहर बंद करे। चाहिए तो बहुत कुछ लेकिन जनता की मुसीबत से सरकार का क्या सरोकार इसलिए पानीपुरावाले यही कहते हुए गाँव से गए कि

“पहले राजा को पानी की दरकार थी  
सो गाँव बसाया था।  
अब राज्य को पानी की दरकार है सो  
गाँव उजाड़ रही है।”<sup>2</sup>

---

1. वीरेन्द्रजैन - डूब - पृ. 191

2. वही - पृ. 196



## खनन

मानव अपनी विकास यात्रा के पथ पर एक सुव्यवस्थित प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत, प्रकृतिदत्त चीजों का उपयोग अपनी मूलभूत आवश्यकता के लिए सदियों से करता चला आ रहा है। इसके फलस्वरूप पहाड़ी भूभागों से काफी तादाद में लोग विस्थापित हो रहे हैं।

पूरे भारत में झारखण्ड में ही खनन के कारण सबसे ज़्यादा विस्थापन हुआ है। इसलिए कि झारखण्ड ही भारत के सबसे खनिज संपन्न राज्य है। कोयला, तांबा, कांस्य, इस्पात, मैका, बॉकसैइट, क्रोमाइट, आस्बटोस, चैना क्ले, युरेनियम, मॉंगनीस, डोलोमाइट, टंगस्टन और सोना आदि खनिजों से यह इलाका संपन्न है।

झारखंड में “पूर्वी कोयला खदानों के लिए करीब 32750 परिवार विस्थापित हो चुके। लेकिन कोल इंडिया महज़ 11901 लोगों को ही नौकरी दे पायी है।”<sup>1</sup> महज़ रानीगंज खदान क्षेत्र में 49 से ज़्यादा इलाके असुरक्षित घोषित किए गए। यहाँ 60,000 लोग खदानों से प्रभावित हुए।”<sup>2</sup> 75 स्क्वयर कि.मी. ज़मीन हर साल खदानों के कारण बर्बाद हो जाता है।

- 
1. Government of India (1985) : Report of the committee on Rehabilitation of Displaced Tribals due to Development Projects, Ministry of Home affairs, New Delhi
  2. Anon (1994) : subsidence fears in India, Mining Journal (London), March 11

“ई.सी.एल. कंपनी के राजमहल खदान परियोजना के अन्तर्गत गोड्डा जिले में 7 गाँवों के 6000 लोग विस्थापित हुए।”<sup>1</sup> उत्तर करनपुरा घाटी के पिपवार खदान परियोजना से दो गाँव के 460 परिवार विस्थापित हुए। अनौद्योगिक आंकड़ों के अनुसार 14 गाँवों के 15000 लोग इससे विस्थापित हुए। यू.सी.ए.एल. फैक्टरी ने जादुगुदा में पाँच गाँवों को युरेनियम खनन के लिए अपने अधीन में कर लिया। 1961 के जनगणना के अनुसार इन गाँवों में 2047 लोग बसते थे। उनमें 47.1 प्रतिशत आदिवासी है।

झारखण्ड की आबादी में 85 से 90 प्रतिशत आदिवासी हैं। सोने के खज़ाने पर रहकर भी उन्हें आधे पेट सोना पड़ता है। औद्योगिक इकाइयों, खदानों और जंगलों के बाज़ारीकरण से जहालत की ज़िन्दगी बिताने के लिए वे मजबूर हो जाते हैं। बाकी दस प्रतिशत नौकरी के लिए अन्य राज्यों से आए हुए लोग हैं। खदान के मालिक उनका कोयला लूट ले जाते हैं और वे विस्थापन के दर्द को झेलने के लिए मजबूर हो जाते हैं। संजीव के ‘धार’ उपन्यास की नायिका मैना के शब्दों में इसके प्रति आक्रोश हम देख सकते हैं। मैना कहती है “कोयला का खज़ाना पे हम रहता है, फिर भी कंगाल? कब तक अइसा माफिक चलेगा?”<sup>2</sup>

- 
1. Tandon GL (1990) : Scenario of Environmental status in coal mining in India in BB Dhar, op. cit - pp. 1757
  2. संजीव - ‘धार’ - पृ. 57

बहुसंख्यक अनैतिक रूप से अपनी ज़मीन से निकाले गये है और कई लोग तो दबाव से बेघर हो गये हैं। बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश, पंजाब के ईट की भट्टियों में और पत्थर के खदानों में बंधुआ मज़दूरी करने के लिए अभिशप्त हैं। 'धार' उपन्यास में संजीव इंसानों को मवेशियों की तरह हाँक ले जानेवाले उस दर्दनाक मंजर का चित्रण कुछ इस तरह से बयाँ करते हैं - "इंसानों को मवेशियों के रूप में हाँकते ले जा रहे हैं ठेकेदार रामपुर हाट, चित्तरंजन, जामताडा, वहाँ से ट्रेन पकड़कर असम, बंगाल, बिहार या कहीं और? हे कोई जानगुरु (ओझा) जो इन्हें मन्त्र से शापमुक्त कर दे?"<sup>1</sup>

स्थानीय लोगों एवं आदिवासियों को झूठे वादे और दिलासे देकर उनका सारी ज़मीन कब्जे में कर ली गयीं। उन्हें नौकरी व पानी देने और स्कूल खोलने के वादे दिए गये। लेकिन सब झूठ साबित हुए। इन्हें दर-दर के ठोकरें खाने के लिए छोड़ दिए गए। विकास के लिए ज़मीन देनेवालों की हमेशा यही दर्दनाक कहानी रही है। संजीव के 'सावधान नीचे आग है' उपन्यास में रामप्रसाद ओझा कहते हैं यह पूरा मौजा उनके बाप-दादा की ज़मींदारी था, अंग्रेज़ खदानवाले फुसलाकर आठ सौ बावन बीघे के अंडरगिराउन का नौ सौ निन्यानबे बरस के लिए लीज़ लिया। वे आगे कहते हैं "वही झूठा वादा, ....विस्थापितों को नौकरी देंगे, स्कूल खोलेंगे,

---

1. संजीव - 'धार' - पृ. 41

पानी का परबन्ध करेंगे.... लेकिन कुच्छो नहीं हुआ, तब फरक इस बात का है कि तुम लोगों ने मरद की तरह मोरचा लिया और हम बैठल-बैठल ताकते रहे।”<sup>1</sup>

कोल इंडिया लिमिटेड का यह प्रस्ताव है कि विस्थापितों की सहमती के बाद ही कोयले के खनन काम आरंभ होगा। इस में उत्पादन में प्रभावित लोगों का भी अधिकार होगा इस उद्योग में भ्रष्टाचारियों की कोई कमी नहीं है। अतः माफिया गिरोहों के संजाल में ऐसे प्रस्ताव फँसकर रह जाएँगे। इनके अलावा महाराष्ट्र (1989) मध्यप्रदेश (1985) तथा उड़ीसा (1994) आदि राज्यों में पुनर्वास से जुड़े हुए अधिनियम एक दूसरे से प्रायः मिलते जुलते हैं जिनका व्यावहारिक पहलु बेहद लुंजपुंज है।

हर साल दो-चार लाख लोग खनन से बेघर हो रहे हैं और सरकारें उनका पुनर्वास ठीक तरह से करने में नाकामयाब रही है। सबसे बड़ी समस्या “भूमि के बदले भूमि की है।” संजीव के ‘सावधान बीचे आग है’ उपन्यास में दिखाया गया है कि आदिवासी बाशिंदा बिना किसी मुआवज़े के, बिना किसी पुनर्वास योजना के अपनी ज़मीन से बेदखल करने के खिलाफ संघर्षरत हैं। संजीव के ‘धार’ उपन्यास में कोयला माफियाओं के हाथों ढगे गये आदिवासी काम की तलाश में दर-दर की

---

1. संजीव - ‘सावधान नीचे आग है’ - पृ. 49

टोकरों खाने के लिए मजबूर हैं - “बाँसगड़ा में रहने का मतलब है या तो पुलिस का शिकार बनना या माफिया का। हर आदमी दूसरे आदमी को भय की निगाह से देख रहा था आज। एक दिन सोरे की तरह कोई उन्हें पहचानने से भी कतरा जाएगा। लाश चील कौवे खायेंगे। सबने बोरमो जाने का निश्चय किया। दामोदर नदी में बालू हटाते ही कोयला है।”<sup>1</sup>

### पारिस्थितिक संकट से बनते विस्थापन

हर साल पारिस्थितिक संकटों जैसे - बाढ़, भूस्खलन, सूखा, भूदलाव, निर्वनीकरण, मरुस्थलीकरण एवं औद्योगिक आपदाओं से भारी पैमाने पर लोग विस्थापित हो जाते हैं। एस्साम ई.ए - हिन्नावी 1985 के मुताबिक “पारिस्थितिक शरणार्थी वे हैं जो किसी भयानक पारिस्थितिक संकट से पीड़ित होकर अपने जीवन स्तर एवं अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए पारंपरिक निवास स्थान तात्कालिक या स्थायी तौर पर त्यागने के लिए मजबूर हो जाते हैं।”<sup>2</sup>

आंकड़ों के अनुसार 250 तक 50 से 500 अरब लोग बाढ़, मिट्टी के अपर्दन, प्राकृतिक आपदाओं, निर्वनीकरण और विशालकाय

---

1. संजीव - 'धार' - पृ. 127

2. CLIMATE HIMALAYA <http://1chimalaya.org>. 2012/04/02 climate growing factor in global

बाँधों के निर्माण और औद्योगिक दुर्घटनाओं से विस्थापित हो जाएंगे। इसके बावजूद इन लोगों को अंतर्राष्ट्रीय कानून का संरक्षण नहीं मिलता।

अरबों की तादाद में लोग पारिस्थितिक समस्याओं से विस्थापित हो चुके हैं। 1998 की भयानक बाढ़ से कई लोग बेघरबार हो गये थे और चेर्नोबिल त्रासदी से करीब 10,0000 ज़्यादा लोग विस्थापित हो गये। अफ्रीका में भयानक सूखे की मार से हज़ारों की तादाद में लोग पड़ोसी देशों की ओर पलायन कर गये। “यू.एन.एफ.पी.ए (United Nations Population Funds) की 2001 रिपोर्ट के अनुसार 1998 में प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं से 25 अरब लोग पारिस्थितिक संकट से शरणार्थी बन गए थे।”<sup>1</sup>

### **सूखे का प्रभाव**

मौजूदा समय गवाह है कि विश्व भर में करोड़ों लोग सूखे से प्रभावित हैं। निर्वनीकरण से धर्ती आज सूखा और मरुस्थलीकरण की गिरफ्त में जकड़ता जा रहा है। भारत के राज्यों में राजस्थान ही सबसे ज़्यादा सूखे से प्रभावित है। राजस्थान के आधे से ज़्यादा जिले सूखे से बुरी तरह प्रभावित हैं। कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु के कई जिले भी

---

1. <http://www.grida.no/publications/et/epi>

सूखे से प्रभावित है। यहाँ तक कि 44 नदियोंवाले केरल के कई जिले आज सूखे की चपेट में आ गए हैं।

विश्व भर में सूखे का सबसे विकराल रूप अफ्रिका में है। पश्चिमी अफ्रिका के सहेल इलाका पिछले तीन सदियों से भयानक सूखे की गिरफ्त में है। वहाँ हर बार फसल काटने के बाद घर के युवा सदस्य नौकरी के लिए बाहर चले जाते हैं। फसल कम होने पर सूखा अपना खतरनाक रूप अख्तियार करता है। फलतः स्त्री और पुरुष दोनों को नौकरी की तलाश में विस्थापित होना पड़ता है। इसे सहेलियन सूखा कहा जाता है। “इसके दौरान करीब 250,000 लोग विस्थापित हुए थे। 2011 में पूर्व आफ्रीका में हुए सूखे को 60 सालों में हुए सबसे खतरनाक सूखा कहा जा सकता है।”<sup>1</sup>

1930 के दौरान औसत से कम वर्षा मिलने के कारण अमरीका के छोटे किसानों को काफी नुकसान उठाना पड़ा। आंकड़ों के अनुसार करीब 300,000 लोग वहाँ से कालिफोर्निया की ओर पलायन करने के लिए मजबूर हो गये थे।

अन्तरीक्ष में कार्बन की मात्रा में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ अन्तरीक्ष ऊष्मा में 4<sup>0</sup>C की बढ़ोत्तरी एवं महासागरीय जल स्तर में 29 से.मी. से.

---

1. <http://www.thenigerianvoice.com/nvnews/89210/none.html>

59 से.मी. तक की बढ़ोत्तरी होने की संभावना है। स्टर्न रिपोर्ट के अनुसार “अन्तरीक्ष ऊष्मा में 4<sup>0</sup>C की बढ़ोत्तरी से मेडिटरेनियन एवं दक्षिणी आफ्रीका में पानी की उपलब्धता में 30 से 50 प्रतिशत की कमी दर्ज की जाएगी।”<sup>1</sup> इसप्रकार जलवायु में होनेवाले परिवर्तन से भी सूखे की संभावना बढ़ रही है। आगे सूखे से होनेवाले विस्थापन में काफी बढ़ोत्तरी होगी।

भगवानदास मोरवाल के काला पहाड उपन्यास में सूखा एवं उससे उत्पन्न विस्थापन के बारे में विस्तार से ब्यौरा दिया गया है। ‘नगीना’ गाँव में सात साल से बरसात नहीं हुई। पहले तो आधे सावन तक तो जिधर भी निगाह जाती उधर पानी ही पानी दिखाई देता था। लेकिन अब पिछले आठ नौ बरस से पूरे मेवात की आँखें जोहड़ों के किनारों से हट मारते पानी के लिए तरसने लगी है। सूखे के कारण खेती भी तहस-नहस हो जाती है। आखिर ज़्यादातर गाँववाले गाँव छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं “आखिरकार एक-एक कर आधे से ज़्यादा चमरवाड़ा खाली हो गया बल्कि खटीकवाड़ा तो लगभग पूरा ही खाली हो गया। बेसाख और जेठ में चमरवाड़ा व खटीकवाड़ा तो क्या अब सात-आठ कीले के मालिक

---

1. Nicholas Stern (ed). (2006) The Economics of climate change : the stern review, Cambridge University Press, Cambridge - P. 57



भी चुपचाप अपने सयाने-सवाने बच्चों को लेकर उनकी देखा-देख जाने लगे हैं।”<sup>1</sup>

संजीव के ‘सावधान नीचे आग है’ उपन्यास में सूखे के कारण राजस्थान से विस्थापित लोगों के दुःख दर्द का वर्णन मिलता है। इस उपन्यास का क्षेत्र चंदनपुर खदान है। भारत के सबसे आधुनिक खदान है चंदनपुर। यहाँ के कामगर मज़दूरों में कई लोग तो अपना देश छोड़कर (राजस्थान) आए हुए हैं। बहुतों को एक बार गाँव छोड़कर आने के बाद फिर गाँव वापस जाना नसीब नहीं हुआ। इस उपन्यास के राजस्थानी पात्र रायपुरिया अपनी मायूसी कुछ इस तरह बयाँ करता है - “एक तो उतना पैसे नहीं जुट पाते एक साथ, फेन (फिर) हुआँ (वहाँ) रखा ही का है? सूखा उजाड देस। जायें भी तो पहचानेगा कौन?”<sup>2</sup>

### **बाढ़ से विस्थापन**

भौमताप के संदर्भ में बाढ़ की घटनाएँ बढ़ती जा रही है। हिमनदियों के सिकुड़ने से, चक्रवात से, बढ़ते महासागरीय जलस्तर के कारण भी बाढ़ बराबर होती है। आम तौर पर अतिवृष्टि से नदी के जलस्तर बढ़ने से बाढ़ होती है। यह बाढ़ उतना खतरनाक नहीं होता। लेकिन पहाड़ों पर

---

1. ‘काला पहाड़’ - भगवानदास मोरवाल - पृ. 50

2. ‘सावधान नीचे आग है’ - संजीव - पृ. 17

निर्वनीकरण से मिट्टी में पानी की सोखने की क्षमता कम हो जाती है तथा मिट्टी के अपर्दन से नदी में मिट्टी जम जाती है और नदी की संभरणक्षमता कम हो जाती है। इससे हमारी नदियों में मिट्टी के टीले बनते हैं। इस कारण मणसूण में नदी अपने किनारे तोडकर जन आवास केन्द्रों में घुस जाती है और भारी तबाही मचाती है। यह मानव निर्मित आपदा हर साल भीषण बाढ़ में तब्दील होकर हज़ारों लोगों को विस्थापित कर देता है।

यू.एन.एफ.सी.सी. के अनुसार 30 प्रतिशत तटीय क्षेत्र खतरे के कगार पर है तथा बाढ़ से पीड़ित आफ्रिका निवासियों की संख्या 1999 में एक अरब था जो 2080 में 70 अरब होने की संभावना है।

1998 के मणसूण में बंगलादेश में जो बाढ़ हुई थी वह विश्व की सबसे बड़ी बाढ़ त्रासदियों में एक है। देश की आबादी में से आधे से ज़्यादा लोग इससे प्रभावित हुए। देश की बुनियादी सुविधाएँ चौपट हो गईं। भीषण बाढ़ से 21 अरब लोग बेघर हो गए। इसी साल में चीन के याड-स्टे कियांड नदी में आई बाढ़ से लगभग 14 अरब लोग विस्थापित हुए।<sup>1</sup>

2007 में दक्षिण एशियायी मुल्कों में जैसे भारत, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान और बंगलादेश में हुई बाढ़ से करीब 20-30 अरब लोग

---

1. Climate change and forced migration : observations, projections and implications - oil brown

विस्थापित हुए। दक्षिणी चीन में जून 2008 में हुई बाढ़ से करीब एक अरब लोग विस्थापित हुए। कोलंबिया में हुए (दिसंबर 2010) बाढ़ में 2.2 अरब लोग बेघर हुए।”<sup>1</sup> नोर्वेजियायी शरणार्थी संघ और अंतर्राष्ट्रीय विस्थापन निरीक्षण केन्द्र ने 2010-2011 के दौरान एशियायी, अफ्रिकी एवं दक्षिणी अमेरिकी मुल्कों में हुई बाढ़ से जुड़े व्यापक विस्थापन की ओर अंतर्राष्ट्रीय ध्यान खींचने की कोशिश की।

भारत के ओड़ीषा के तटीय क्षेत्र लगातार तूफान के प्रकोप से पीडित है। आंकड़ों के अनुसार 1999 में हुए सबसे बड़े चक्रवात के प्रकोप से 14 तटीय जिलों के एक करोड़ से ज़्यादा लोगों की ज़िन्दगी बरबाद हो गयी। इस प्राकृतिक दुर्घटना से कम से कम 20,000 करोड़ रुपये का नुकसान भी हुआ था।

स्टर्न रिपोर्ट के अनुसार “हिमनदियों के पिघलने से सागर का जलस्तर बढ़ता है और जिसकी वजह 4 अरब कि.मी. तटीय क्षेत्र के डूबने की संभावना है जहाँ विश्व के 5% आबादी की बसाहट है। मौसमी परिवर्तनों के कारण नदियों एवं सागरों के कई द्वीप डूबने के कगार पर है।

- 
1. <http://www.thinigerianvoice.com/nvnews/89210/1/none.htm/>
  2. Nicholas Stern (ed) (2006) The Economics of climate change the stern review, Cambridge University Press, Cambridge, P. 57

भारत में हूगली नदी में 'लोहाचारा' नामक द्वीप के डूबने से 10,000 से ज़्यादा लोग विस्थापित हुए।

बाँधों के निर्माण से भी बाढ़ होने की संभावना है। 1971 में चीन एवं 2010 नैजीरिया में इसप्रकार बाढ़ हुई थी। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में भी बाढ़ जनित विस्थापन का चित्रण है। वीरेन्द्रजैन के 'डूब' एवं पार दोनों उपन्यासों में बाँध के निर्माण से उत्पन्न बाढ़ का ज़िक्र है। जैसे बताया गया 'डूब' उपन्यास का कथा क्षेत्र लडैई गाँव है। सरकार की तरफ से राजघाट बाँध परियोजना की घोषणा की गयी। जिस लडैई को केवल सूखे का अनुभव है वहाँ साल में दो तीन बार बाढ़ आने लगी। माते का कथन देखिए - "इंदिराजी एक ईंट रख गई थी कि फेंक गई थी कि, राम जाने, मगर उस एक ईंट से बेतवा में जो उफान आया वह जाने कितने गाँव के गाँव लील गया।"<sup>1</sup> अंत में हम देखते हैं कि बाँध बना नहीं कि उसका तटबंध टूट गया। पूरे इलाके में पानी फैल गया। इतना भयानक बाढ़ कि लोग अपना घर-बार खेत-खलिहान छोड़कर भाग गये। सरकार का रवैया यह है कि - "इस बाढ़ से जो लड़ सकें, जो मुकाबला कर सकें या कि जो इंतज़ार कर सके इस आफत के टलने का, वह टिका रहे अपने गाँव में, वरना अपना खेत-खलिहान घर-द्वार बेच-बूचकर जा रह कहीं शहर में।"<sup>2</sup>

---

1. वीरेन्द्रजैन - 'डूब' - पृ. 86

2. वही - पृ. 288

उपन्यास 'पार' में भी बाढ से हुए विस्थापन का चित्रण है। मूसर खेरा (आदिवासी गोत्र समाज) पार (पहाड़) में बसा है। बाँधवालों की गलतनीतियों के कारण अचानक एक रोज़ बिना मेघ बरसे ही पूरे मूसर खेरे में जल ही जल समा गया - "मूसर के सब जन भागे अंधियाई छोड, अंधियाई लांघ, दूसरी अंधियाई में। पार के उस पार। ऐसे गदबद दी जैसे भूत ने पिछयाया है। न सँभलने का मौका मिला, न सँभालने का। खेरा का खेरा बाल बच्चों को बगल में चाँपे अंधियाई पार कर गया।"<sup>1</sup>

### **भूस्खलन (land slide)**

पहाड़ी इलाकों में भूढलाव (भूस्खलन) आम बात हो गया है। निर्वनीकरण एवं पहाडी इलाकों में सस्य आवरण का हट जाना एवं ऊपरी उपजाऊ मिट्टी का बहजाना, भूढलाव की अहम वजह है। इसके अलावा विकास कार्य जैसे खनन, बाँध, एवं सडक योजनाएँ भी इसके ज़िम्मेदार है। डॉ. अरविंद दरमोडा के अनुसार "पहाड़ों में सडकों के अनियोजित विकास से भूस्खलन जैसी आपदाओं को बढ़ावा मिल रहा है। पर्यावरणविद जगतसिंह जंगली के मुताबिक "भूस्खलन जैसी समस्याओं से निपटने के लिए वनों को बढ़ावा दिया जाना ज़रूरी है।"<sup>3</sup>

---

1. वीरेन्द्रजैन - 'पार' - पृ. 17

2. B.B.C.Hindi.com

3. B.B.C.Hindi.com

भारत में हिमालय की तराई इलाकों में सबसे ज़्यादा भूस्खलन की घटनाएँ सुनने में आयी है। हिमालय नीति संवाद के अध्यक्ष भुवन पाठक ने कहा है कि “भूस्खलन की चपेट में आने से कई गाँव खाली हो चुके हैं, लेकिन उनका पुनर्वास नहीं हो पाया है।”<sup>1</sup> समकालीन हिंदी उपन्यासों में भूदलाव से उत्पन्न विस्थापन का ब्यौरा मिलता है।

सुभाष पन्त के बहुचर्चित उपन्यास ‘पहाड़चोर’ का झाण्डूखाल मोचियों का गाँव है। पहाड़ की तराई में बसा शांत व सुन्दर गाँव। वहाँ खनन माफिया ‘विकास’ का जामा पहनकर उन्हें लूटने आता है। पहाड़ उनके लिए प्राकृतिक नियामत है। इस नियामत को तहस नहसकर माफिया चूनापत्थर ले जाता है। वे जंगल काट ले जाते हैं, पहाड़ को खोदते हैं। विस्फोटनों से पहाड़ की नींव तक हिल जाती है। वहाँ का झरना लुप्त हो जाता है। अंत में गाँव में तूफान आता है, अतिवृष्टि होती है और भूस्खलन हो जाता है। गाँववाले सब अपने जान बचाने के लिए सब कुछ छोड़कर भाग निकलते हैं - “धरती डोलने लगी... उसी के साथ पहाड़ का सीना फूटकर बिखरने लगा और उसीके साथ चीख पुकार और भागदड़ मच गई। सभी गाँव से भाग रहे थे।”<sup>2</sup> इसी तरह भूस्खलन की घटनाएँ बढ़ रही हैं। दुःख की बात है कि इन प्राकृतिक आपदाओं से पीड़ित लोगों को उचित पुनर्वास और मुआवज़ा मय्यस्सर नहीं है।

---

1. B.B.C.Hindi.com

2. ‘पहाड़ चोर’ - सुभाष पन्त - पृ. 355

## भू-क्षरण (land-degradation)

आज भूक्षरण एक भौगोलिक समस्या ही नहीं पारिस्थितिक संकट से उत्पन्न विस्थापन का कारण भी बन गया है। खेती में गलत नीति अख्तियार करने से अमेरिका के डस्ट बौल (Dust Bowl) में जो परिवर्तन हुआ वही इसके लिए सबसे चर्चित मिसाल है। निर्वनीकरण के कारण, गलतनीतियों से मिट्टी की उर्वरता के कम होने से, अत्यधिक चराई के कारण, सिंचाई की गलत नीतियों के कारण, नगरीकरण के बढ़ने से, औद्योगिक कचरे से उत्पन्न मिट्टी प्रदूषण से, गाड़ियों के बढ़ने से एवं खनन से उत्पन्न मलबे से भूक्षरण होता है। दुनिया के भूक्षरणवाले इलाकों में 25% अफ्रीक में है।

सुभाष पन्त के चर्चित उपन्यास 'पहाड़चोर' में खनन के मलबे से उपजाऊ खेत की बर्बादी एवं कृषक परिवार के विस्थापन का चित्रण है। खनन के फलस्वरूप झाण्डूखाल धंस रहा है। टोपन झाण्डूखाल का मेहनती किसान है। लेकिन खनन से उसका दो बीघा खेत धसक गया। इसके अलावा खनन के मलबे से मिट्टी की उर्वरता भी नष्ट हो गई। इसलिए टोपन गाँव छोड़कर जा रहा है। साबरा से मुखातिब होकर टोपन कहता है "अब हियाँ रहना भौत मुश्किल हो गया है। मेरी पछाह की दो बिघा खेत की पट्टी धसक गई। झाण्डूखाल धंस रहा है। सबको ई भागना होगा हिया से एक दिन।"<sup>1</sup>

---

1. 'पहाड़चोर' - सुभाष पन्त - पृ. 248

## आदिवासी विस्थापन

भारत में ढ़ाई करोड़ डीनोटिफाइड और साढ़े आठ करोड़ अनुसूचित आदिवासी हैं। कुलमिलाकर करीब 11 करोड़ की जनसंख्या भारत में है जो फ्रांस व ब्रिटेन की संपूर्ण एवं आस्ट्रेलिया की आबादी का चार गुना है। आदिवासियों की सर्वाधिक आबादी आफ्रीका महाद्वीप के पश्चात भारत में है। भारत के प्रांतों के आधार पर मध्यप्रदेश में अन्य राज्यों की तुलना में आदिवासियों की तादाद सर्वाधिक है।

अपनी धरती से आदिवासी लोगों की ज़बरदस्ती से बेदखली दरअसल ज़मीन के टुकड़े से एक परिवार के विस्थापन का पर्याय भर नहीं है। यह बहुत व्यापक है और इसका पूरी दुनिया के आदिवासी बर्दाश्त कर रहे हैं। सरकारें बड़ी आसानी से विकास का नकाब ओढ़कर अंग्रेज़ी राज के जमाने के भूअर्जन अधिनियम 1894 के तहत हज़ारों आदिवासियों को उनकी ज़मीन से बेदखल कर देती है।

भारत में आदिवासी जनसमूहों का विस्थापन एवं पलायन सदियों से जारी है। रमणिका गुप्ता के अनुसार - “विकास के नाम पर बरती गई नीतियों के कारण वे केवल अपनी ज़मीनों, जंगलों, संसाधनों व गाँवों से ही बेदखल नहीं हुए बल्कि उनके मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन-शैलियों, भाषाओं एवं संस्कृति से भी उनके विस्थापन की प्रक्रिया तेज़ हो



गई।”<sup>1</sup> सरकारी हस्तक्षेप व नीतियों के साथ-साथ, तथाकथित मुख्यधारा के समाज द्वारा उनके संसाधनों पर अधिकार जमाकर उन्हें बेदखल करना भी आदिवासियों के विस्थापन व पलायन की अहम वजह है।

विकास नीति के निर्धारित लक्ष्य के मुताबिक विभिन्न क्षेत्रों में बन रही परियोजनाओं के माध्यम से पूरे समाज को प्रगति की राह पर लाना था लेकिन इसके ठीक विपरीत ही संभव हुआ। सरकार की तरफ से 1998 में भूमि-अधिग्रहण संशोधन विधेयक पुनर्वास बिल, फोरस्ट बिल और बायो डायवर्सिटी बिल पारित किए गए। भूमि-अधिग्रह संशोधन विधेयक इसलिए लाया गया ताकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को मनचाही ज़मीन जल्द-जल्द उपलब्ध करवा सके। सरकार की इस नीति के तहत 1951 और 1995 की अवधि में झारखण्ड में 50 हज़ार एकड़ भूमि से 15 लाख लोग विस्थापित हो गए। इनमें 41.27 प्रतिशत आदिवासी है। रक्षा परियोजनाओं में विस्थापित हुए आदिवासियों की संख्या 89.7 प्रतिशत है। इसी तरह जल संसाधन परियोजनाओं के परिणामस्वरूप विस्थापितों में आदिवासियों की संख्या 75.2 प्रतिशत है।”<sup>2</sup> इसमें भी ज़मीन के बदले नौकरी देने का प्रावधान नगण्य है। कोयला खदानों के लिए सरकार ने एक नया कानून बनाया कोल बियरिंग एरिया एक्ट 1957 के तहत

---

1. रमणिका गुप्ता - ‘आदिवासी विकास से विस्थापन’ - पृ. 7

2. ‘आदिवासी विकास से विस्थापन’ - रमणिका गुप्ता - पृ. 8

अधिगृहीत भूमि को ज़बरदस्ती कब्ज़े में ले सकते हैं। जब कोयला खदानों का राष्ट्रीयकरण हुआ तो पुरानी खदानों के साथ खाली पड़ी ज़मीन भी कोयला कंपनी ने बिना नोटिस दिए कब्ज़ा कर ली।

समूचे देश के आदिवासियों की अहम समस्या विस्थापन ही है। वे पहले भी खदेड़े जाते थे, और आज भी खदेड़े जा रहे हैं। यह खदेड़ना सदियों से चालू है। केवल इसका रूप और तरीके बदल गये हैं। वे उजड़ रहे हैं। जंगल, जल, ज़मीन इन तीनों मौलिक अधिकारों से वे वंचित हो रहे हैं। गौरतलब है कि यह सब हो रहा है उनके विकास या उनकी स्थिति में सुधार के नाम पर। भूमि में वे बसते हैं उसके गर्भ में खनिज है ऊपर नदियाँ और जंगल है मगर वहाँ उनका प्रवेश वर्जित है। नदियाँ कोयले की धूल से काली होकर प्रदूषित हो गई, उनका पानी किसी काम का नहीं रहा। जंगल कट गए, ज़मीनें गड्ढा और पोखर हो गईं। खेत धँस गए, पानी के स्रोत सूख गए या जल स्तर बहुत नीचे चला गया।

वर्षों तक आदिवासी किसानों की नौकरी और पुनर्वास के मामले को नज़रंदाज़ किया गया। किसानों के खेत खदान बदल गए। वनपति से रैयत बने आदिवासी किसान अंततोगत्वा विस्थापित हो गया। जीने के लिए अपनी ही ज़मीन से कोयला चुराकर बेचने को मजबूर हो गया। मज़दूर बने आदिवासी किसान कोलमाफिया के चंगुल में फँसकर कोयला चुराने लगे। खदानों के धँसने से सैकड़ों की तादाद में वे मरते रहे।

रमणिका गुप्ता के मुताबिक “अच्छा-खासा इज्जतदार, खाता-पीता वनपति आदिवासी किसान, गाँवों की सामूहिक ज़मीन का भागीदार-पहले मज़दूर बना, फिर विस्थापित और अब कोयलाचोर। उसकी ज़मीन, जंगल, संस्कृति और भाषा सब खतम की जा रही है और ये सब हो रहा है - ‘राष्ट्रहित’ के नाम पर।”<sup>1</sup>

उपन्यासों में आदिवासी विस्थापन के दर्द को बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत किया गया है। संजीव के ‘सावधान नीचे आग है’ में विस्थापन के दर्द का चित्रण तो है साथ मुआवज़े, पुनर्वास और नौकरी आदि विस्थापितों के मूल अधिकारों से भी वंचित होने की त्रासद तस्वीर भी दिखाई देती है। आदिवासी ज्ञानू बताते हैं - “आस्ते-आस्ते सारा ज़मीन दखल कर लिया हमारा, बोलो हम कहाँ जायेगा, बोलो। बोला नौकरी देगा, पानी देगा, स्कूल खोलेगा - ये कर देगा, वो कर देगा, सोना से मढ़ देगा। क्या किया बोलो?”<sup>2</sup>

संजीव के ‘धार’ उपन्यास में कोयला खदानों के परिप्रेक्ष्य में विस्थापित आदिवासियों का दर्दनाक ब्यौरा उकेरा गया है। कोयला खदानों के चलते उनकी खेती खत्म हो जाती है। खदानों में उन्हें नौकरी नहीं मिलती। भीखमाँगकर, चोरी करके या चोरी से कोयला काटकर जीवन

---

1. रमणिका गुप्ता - ‘आदिवासी विकास से विस्थापन’ - पृ. 40

2. ‘सावधान नीचे आग है’ - संजीव - पृ. 43

बिताने के लिए वे अभिशप्त है। बाँसगड़ा में रहने का मतलब है या तो पुलिस का शिकार बनना या माफिया का। हर आदमी दूसरे आदमी को भय की निगाह से देख रहा है - “सबने बोरमो जाने का निश्चय किया। दामोदर नदी में बालू हटाते ही कोयला है। रात को ट्रेन से गोमो चलना है और वहाँ से बोरमो। मैना का पति मंगर सुबरन रेखा जा रहा है सोना चुनने।”<sup>1</sup>

जैसे धार में यह सत्य दर्ज है - “केवल बाँध परियोजनाओं की वजह से भारत की करीब 50 से 70 लाख आदिवासी जनसंख्या का विस्थापन हुआ इसके बाद खनन व अन्य औद्योगिक इकाइयों के कारण विस्थापन का संकट सामने आया। एक अनुमान के तहत प्रति दिवस एक आदिवासी विस्थापन की त्रासदी भोगने को विवश है।”<sup>2</sup> वीरेन्द्रजैन के उपन्यास ‘धार’ में बाँध परियोजनाओं से विस्थापित राऊत आदिवासियों का चित्रण मिलता है बाँध के बनने से उनके वजूद मिटता जा रहा है। उनकी ज़िन्दगी पर सवालिया निशान लग रहे हैं। इसका दर्द मुखिया के इन शब्दों में है “अब ये शहरवाले नदी बाँध रहे हैं। तब प्रलय आएगी। जो अब तक बचा है वह सब भी स्वाहा हो जाएगा। तब हम कहाँ जाएँगे? कैसे जिँएँगे?”<sup>1</sup> पंचम नगर किले के साथ-साथ प्राणपुर और बारी की

---

1. ‘धार’ - संजीव - पृ. 127

2. B.B.C. Hindi.com

ओर ज्यों-ज्यों दीवार ऊँची हो रही है। लडैई (गाँव) वासियों का शेष दुनिया से नाममात्र का संपर्क भी टूटता जा रहा है। तिस पर यह भय भी कि इस दीवार के साथ जमा किया जानेवाला पानी किसी रात लडैई में छोड़ दिया गया तो क्या होगा? इसीलिए लडैई के बाशिंदा जा रहे हैं सातों पहाड़ों के बीच में बसे राउत आदिवासियों के बीच। अंत में उपन्यासकार लिखते हैं “राउत आदिवासी अपनी व्यवस्था से भी हाथ धो पड़ते हैं।”<sup>2</sup>

देश आज़ाद होने से पहले ही अंग्रेज़ों ने आदिवासियों के जंगल में प्रवेश पर रोक लगाकर उन्हें वहाँ से खदेड़ने की योजना शुरू कर दी थी। इस तरह वे जंगल के सारे अधिकारों से बेदखल हो गये। जंगलवासियों को उनके परंपरागत वन-अधिकारों से लगातार बेदखल ही नहीं किया जाता रहा बल्कि जंगल को औद्योगीकरण के मार्फत बर्बरतापूर्वक उजाडा जाने लगा। सन् 1960-61 में डेबर कमीशन (अनुसूचित क्षेत्र और अनुसूचित जनजाति कमीशन) ने इस सरकारी नीति पर टिप्पणी की थी - “इस तरह आदिवासी, पहले जो अपने को वनपति समझता आया था, एक सुनियोजित प्रक्रिया द्वारा एक रैयत के दर्जे में उतार दिया गया और वन विभाग की दया पर छोड़ दिया गया। उनके बसाए गाँव, वन के ही मौलिक अंग न रहकर विभागीय वरदहस्त पर टिक गए। जन-जातियों के

---

1. वीरेन्द्रजैन - ‘पार’ - पृ. 51

2. वही - पृ. 166

परंपरागत वन-अधिकार की मान्यता की इतिश्री कर दी गई। 1894 में, जिन्हें अधिकार एवं विशेषाधिकार माना गया, वे 1952 में अधिकार एवं रियायत में तब्दील हो गए। अब तो उन्हें 'रियायत' मात्र समझा जाता है।”<sup>1</sup>

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास में यह दिखाया गया है कि जंगल के अधिकारों से वंचित सरकारी वननियमों से पीड़ित आदिवासी अंत में विस्थापित होकर पत्थर के खदानों में बंधुआ मज़दूरी करने के लिए मजबूर हो जाता है। केशर पर लगे फुटकर मज़दूर ललितपुर जिले के अन्दरुनी हिस्सों से आये राउत-सहारिया जाति के हैं। ललितपुर के अलावा सागर, गुना, टीकमगढ़ छतरपुर आदि जिलों के वन प्रान्तरों के आदिवासी बाशिंदा भी इसमें शामिल हैं। ये निरीह आदिवासी अवाम यहाँ सोलिंग (मोटा पत्थर) तोड़ने का काम करते हैं। वे अपने गाँवों में लौट नहीं सकते। खानाबदोश की तरह बेघरबार घूमना पड़ रहा है। वहाँ वे लकड़ी काटने का काम करते थे। लेकिन अब जंगल के मालिक सरकार, आदिवासी वनपति से खानबदोश और ठेकेदार व कर्मचारी जंगल के राजा बन गये। वे कहते हैं “लकड़ी काटने का काम था हमारा जंगल सिरकारी हो गये तब तक भी करते रहे। ठेकेदारों की यहाँ मजूरी करी

---

1. डेबर कमीशन रिपोर्ट - वॉल्यूम-1 - पृ. 129-30, दिल्ली पब्लिकेशन मैनेजमेंट, 1961

हमने। पेड काटने की मजूरी। ठेका तो ले पच्चीस पेड़ों का और कटावे हमसे पचास पेड। जो पकरें जाएँ तो हम जेहल में।”<sup>1</sup> पकड़ें जाये तो इन्हें चोर साबित करते हैं और ज़मानत भी नहीं मिलते। इसलिए ये अपने गाँव भी नहीं जा सकते।

आदिवासी लोगों की भूमि जिसे बंधक के रूप में ली जाती है। अपनी गरीबी, अशिक्षा एवं पिछड़ेपन के कारण, वे महाजनों से नियत समय के अन्दर्गत अपनी ज़मीन वापस लेने में अक्षम साबित होते हैं। फलतः महाजन-वर्ग पुलिस, प्रशासन-तंत्र तथा अपराधिक तत्वों का इस्तेमाल करते हैं। इस तरह वे अपने जंगल से कट जाते हैं, विस्थापित भी होते हैं। मनमोहन पाठक के उपन्यास ‘गगन घटा घहरानी’ में आदिवासियों की इस बदहालत की ओर इशारा करते हुए नायक सोनाराम कहता है - “इस तरह तो... जब खेत नहीं रहेगा जंगल - पहाड सब सरकारी ही है, तब तो गाँव छोड़कर भागना पड़ेगा।”<sup>2</sup>

नासिरा शर्मा के चर्चित उपन्यास ‘कुइयाँजान’ में स्वर्णरेखा परियोजना एवं उनसे विस्थापित लोगों की चर्चा की गई है। दक्षिण बिहार के ‘सुखाड क्षेत्र’ में सिंचाई सुविधा के नाम पर यह परियोजना तैयार की गई। इसके बाबत सरकार द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों एवं गैरसरकारी सर्वेक्षण के अनुसार साबित हो गया कि इससे चांडिल और इंचा के इलाके में

---

1. ‘इदन्नमम’ - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 236

2. मनमोहन पाठक - ‘गगन घटा घहरानी’ - पृ. 125

करीब 182 गाँवों में पानी भर जाएगा। इनमें से 44 गाँव तो पूर्णतया जलमग्न हो जाएँगे। कुल मिलाकर एक लाख लोग, जिनमें अधिकतर आदिवासी हैं, विस्थापित हो जाएँगे।

संक्षेप में ऐसे विकास से बाज आना है जो वन्य संस्कृति, वन्य संपदाओं को उजाड़ दें और जीव जगत का जीना दूभर कर दे। विस्थापन की निरंतरता रोकने की ज़रूरत है, अन्यथा उससे जन असंतोष उपजेगा। विकास के आयातीत मानदंडों से विप्लव, विग्रह और विनाश की आशंकाएँ गहराती हैं - ये सच बड़े डरावने लग रहे हैं।

### **ताप बिजली घर से जनित विस्थापन**

ताप बिजली घरों के कारण भारत भर में हज़ारों लोग विस्थापित हुए हैं और हो रहे हैं। झारखण्ड की एन.टी.पी.सी. (नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन) परियोजना के कारण कनकपुरा घाटी के 186 गाँवों के कुल तीन लाख में से 2 लाख लोगों पर विस्थापन का संकट आया था जिसमें ज़्यादातर आदिवासी थे।

एन.टी.पी.सी. ने विस्थापितों को लेकर जो भी नियम तय किए थे, उनका गहरा अर्थ था। एन.टी.पी.सी का खयाल रहा है कि ज़मीन अधिग्रहण के पहले ही उनको यह निश्चित कर लेना होगा कि प्रभावित लोगों की संख्या कितनी है? प्रस्तावित योजना के कार्यान्वयन के साथ-



साथ विस्थापितों को क्रमिक रूप से बसाया जाना चाहिए। विस्थापन और पुनर्वास के बीच ज़्यादा अंतराल नहीं होने से अपने मूल से उजड़ने की पीड़ा लघुतम तौर से प्रभावित करेगी। इसके साथ ही पुनर्वासित गाँव हरा-भरा और उसमें चारे पानी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। मगर सिंगरौली में एन.टी.पी.सी. से विस्थापित हज़ारों परिवारों की दुर्दशा ने उपरोक्त प्रवचनों की कलाई खोल दी है।

संजीव के 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में पंचपहाड़ के खनिज बहुल क्षेत्र का चित्रण मिलता है। औद्योगीकरण की चपेट में आए गाँव और आदिवासी जीवन का इसमें यथार्थ अंकन हुआ है। डोकरी ताप बिजली घर के परिप्रेक्ष्य में लिखे इस उपन्यास के माध्यम से लेखक यह कहना चाहते हैं कि औद्योगीकरण किस प्रकार गाँवों तथा आदिवासियों को विस्थापित कर रहा है। डोकरी में एन.टी.पी.सी. के लिए सरकार ने आदिवासियों की ज़मीन का अधिग्रहण किया। उन्हें दर-दर के ठोकरें खाने के लिए भी मजबूर कर दिया। मुआवज़े का पैसा भी अफसरों की जेब में चले गये। डोकरी एवं मकर ये दोनों गाँव गायब हो गये। विस्थापित लोग कटी पतंग की तरह कहीं भडकने लगे।

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है फिलिप। फिलिप अपने समाज के प्रति काफी चिंतित था। आदिवासियों के प्रति हो रहे ज़ुल्मों पर उनकी प्रतिक्रिया देखिए - "प्रदेश की दो-तिहाई आय हमसे होती है और हमारी

हालत-न तन में साबुत कपड़ा, न पेट में भरपेट भात, दवा-दारू, पढ़ाई-लिखाई की बात छोड़ ही दीजिए। बहुत पैसा दिया सरकार ने, सरकार घोषणाएँ करती नहीं थकती - लेकिन हम कंगाल के कंगाल। मालो-माल कोई और हो रहा है। हमने कहा हमें अपने करम पर छोड़ दो लेकिन वे नहीं छोड़ते। सोने के खजाने पर कुण्डली मारकर बैठा साँप क्यों छोड़ दे।”<sup>1</sup> इसप्रकार सरकार एवं एन.टी.पी.सी. के निहित स्वार्थों की वजह वहाँ के आदिवासी विस्थापन के दर्द को झेलने के लिए मजबूर हो गये।

संक्षेप में आपदाओं व संघर्ष के कारण पलायन करने के लिए मजबूर लोगों को ही आम तौर पर अंतर्राष्ट्रीय समाज की हमदर्दी नसीब होती है। मगर दुनिया भर में विकास योजनाओं के कारण बेदखल होनेवालों को त्रासद ज़िन्दगी का ही सामना करना पड़ता है। दरअसल ये लोग मजबूरन अपनी ज़िन्दगी और आजीविका छोड़कर पलायन के लिए अभिशप्त हैं। यों विस्थापित जनता का पुनर्वास भी अनिश्चयता की गिरफ्त में आ जाता है। अंतहीन इंतज़ार उनकी नियति बन जाती है। निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि इंसान को प्रकृति और पर्यावरण के अस्तित्व को संकट में डालनेवाले इस विकास योजना से कोसों दूर रहना चाहिए। तभी आम इन्सान एवं पर्यावरण की सुरक्षा संभव हो सकती है।




---

1. संजीव - 'पाँवतले की दूब' - पृ. 112

**उपसंहार**

## उपसंहार

आज पर्यावरण, परिवेशकी और प्रदूषण से जुड़ी समस्याओं पर विश्व भर बहस हो रही है। जब से पश्चिम में एनवायर्नमेंट 'इकोलोजी' और 'पोल्यूशन' के प्रश्न पर तीव्र चिन्ता होने लगी, तब से भारत में भी इसको गहरी अहमियत मिलने लगी। 1963 में प्रकाशित रेचल कार्सन के 'सैलेंट स्प्रिंग' नामक ग्रन्थ के प्रकाशन से पाश्चात्य दुनिया में पारिस्थितिक चर्चाओं की शुरुआत हुई थी। उनसे पहले हेनरी डेविड तोरो, जॉन म्योर, अलदो लियपोल्ड, लूयी मंफोड़ आदि चिन्तकों ने पारिस्थितिक एवं सैद्धांतिक आविष्कार किए थे, फिर भी कार्सन के इस प्रायोगिक वैज्ञानिक ग्रन्थ ने ही पाश्चात्यों को ज़्यादा सचेत किया था।

1970 के आसपास ही इक्को फिलोसफी का विकास होने लगा था। यह दर्शन मुख्यतः गहन परिस्थितिवाद, सामाजिक परिस्थितिवाद, पारिस्थितिक साम्यवाद, पारिस्थितिक स्त्रीवाद आदि शाखाओं में बंटा हुआ है।

वर्तमान युग विकासवाद और प्रगतिशील विकास की कामना का युग है। लोगों के बीच यह मान्यता रूढ़मूल हो चुकी है कि ज़्यादा से

ज़्यादा उत्पादन एवं अधिकतम वस्तुओं का उपभोग राष्ट्रीय विकास का पर्याय है। शुरुआत में विकास पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके होता था। किंतु पूँजीवादी व्यवस्था की मज़बूती के साथ विकास की मूल अवधारणाओं में काफी बदलाव आया। विकास का आधार स्वहित हो गया और उसके मूल्यों में तब्दीली आ गयी। वैश्वीकरण के वर्तमान संदर्भ में विकास की अवधारणा आक्रामक तथा लूट पर आधारित हो गयी है। हमारे कुछ पर्यावरणविदों तथा चिंतकों ने इस विषय पर संरक्षणात्मक भूमिका निभाने के लिए सरकार की योजनाओं का विरोध करके इसमें जनता की भागीदारी सुनिश्चित की थी। पर्यावरण की स्वच्छता को बनाये रखने के लिए हमारे यहाँ विभिन्न पर्यावरण संरक्षण आंदोलन चलाये गये जैसे - सैलेंटवाली संरक्षण आंदोलन, चिपको आंदोलन, प्लाच्चिमड़ा आंदोलन, शिवनाथ नदी बचाओ आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन आदि।

मानव जाति के अस्तित्व एवं हिफाज़त के लिए बेहद ज़रूरी चीज़ें हैं - भूमि, वायु और जल। आज ये तीनों संकट में हैं। इस पारिस्थितिक संकट को आधार बनाकर हिन्दी में कई उपन्यास लिखे गये हैं। इसमें सबसे अहम मुद्दा पानी का है।

जल ही जीवन है ('जलेव जीवनम') पानी के बिना जीवन की कल्पना तक कठिन है। कहा जाता है कि इस सदी का युद्ध अगर तेल के

लिए है तो अगली सदी का युद्ध पानी के लिए होगा। यानि इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी समस्या दुनिया की प्यास होगी। आज की दुनिया में पानी की विकराल समस्या का चित्रण संजीव के उपन्यास 'सावधान नीचे आग है' में कुछ इस तरह चित्रित है - "झरिया में पानी महंगा और दुर्लभ है। सस्ती और सुलभ है शराब और उससे भी सस्ता है आदमी का खून।" पुराने ज़माने में कुएँ तालाब बचे हुए थे, जब से नल और वाटर वर्क्स से हमारा रिश्ता जुड़ा है, पानी का राशन शुरू हो गया। पहले टाइम बँधा फिर तीन टाइम से दो टाइम हुआ और अब पानी बिजली पर निर्भर है। इसका विशद ब्यौरा नासिरा शर्मा के उपन्यास 'कुइयाँजान' में मिलता है।

भूमिगत जलस्तर भी आज नीचे गिरता जा रहा है। राजस्थान के रेगिस्तानी जिलों में ऐसे भी इलाके हैं जहाँ तीन-चार सौ फुट गहरा पानी मिलता है जो स्वाद में सबसे ज़्यादा खारा है। 'कुइयाँजान' उपन्यास में नासिरा शर्मा ने विस्तार से इस समस्या की चर्चा की है। वहाँ के लोगों को खेत जोतते हुए अगर प्यास लगती तो गड्ढे के कीड़ेदार पानी जिसमें जानवर का मूत भी मिला होता उसमें बूर डालकर पी लेते थे। वहाँ के एक लोककथानुसार एक नवविवाहिता ने होली पर स्नान कर लिया फिर दिवाली पर दुबारा नहा लिया। जब उसकी सास को पता चला तो यह कहकर शिकायत दी कि "होली में नहाय, दीवाली में नहाया, बहू लगे है

जलमुर्गी।” हमारे हाइड्रोलॉजिकल सिस्टम को नज़रअंदाज़ करने से स्थिति विस्फोटक हो सकती है। इसलिए हमें अपनी पुरानी परंपराओं की ओर लौटना चाहिए। हमें राजस्थान के कुआँ और कुइयाँ, बिहार के आहर पाइन, एवं तालाबों की परंपराओं की ओर लौटना चाहिए।

भारत में जल का महत्वपूर्ण एवं सर्वाधिक प्रभावशाली जलस्रोत नदी है किंतु आज विश्व के अन्य देशों की भाँति ही हमारे देश की भी नदियाँ मृत्यु के कगार पर हैं। इसका प्रमुख कारण जल प्रदूषण, वन विनाश एवं उससे उत्पन्न भूक्षरण और बृहद् बाँधों का निर्माण है। बाँधों से समृद्ध हरा-भरा अंचल धीरे-धीरे रेगिस्तान में तब्दील हो जाता है। बाँधों के कारण पीछे के इलाकों में नदी का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। सालों भर पानी का जमाव हो जाता है, लवण बढ़ जाते हैं जिससे ज़मीन की सहज उर्वरता नष्ट हो जाती है। बाँधों में पानी की अधिकता है तो बाँध को खोल दिया जाता है तब निचले इलाकों में बाढ़ आ जाती है। इससे खेतीहर ज़मीन पर बालू भर जाती है। पशुपालन का क्षेत्र भी नहीं के बराबर हो जाता है। वीरेन्द्रजैन के ‘डूब’ उपन्यास में इसके भयानक रूप का वर्णन हुआ है। ‘डूब’ में मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के शहरों के विद्युतीकरण के लिए राजघाट पर बाँध परियोजना तैयार की जाती है। इसके फलस्वरूप सैकड़ों गाँवों के हरे-भरे खेत और खलिहान नष्ट हो

गये। लोगों को पीने का पानी भी नसीब नहीं हुआ। बाँधों के निर्माण से 'लडैई' गाँव में दो-तीन बार बाढ़ आ गयी। पशुपालन का क्षेत्र भी सीमित हो गया।

जलविद्युत योजनाओं के साथ आज नदियों को आपस में जोड़ने की योजना भी तैयार हो रही है। नासिरा शर्मा के उपन्यास 'कुइयाँजान' में नदी जोड़ योजना के नफा-नुकसान के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी है। इसमें भविष्य के प्रति अंदेशा व्यक्त किया गया है। नदियों को जोड़ने से कई लाख गाँव उजड़ेंगे। उसके रास्ते में आनेवाले जंगल काटे जाएँगे। ऋतुचक्र बदल जाएगा। इन्हीं ऋतुओं का आदी हमारा शरीर कई रोगों से ग्रसित होगा। हमारे फल और सब्जियाँ अपने मौलिक रूप में स्थिर नहीं रह पाएँगी। ज़मीन का हाल भी बुरा हो जाएगा। नदियों में अतिरिक्त बहनेवाली जलराशी में सरकार को बाढ़ और अतिरिक्त पानी नज़र आता है। लेकिन यह अतिरिक्त पानी नदी के तल में साल भर में जमा गाद को साफ करने, भूजल का पुनसंभरण करने और मैदानी क्षेत्र में मिट्टी की नयी और उपजाऊ परत बनाने में मुख्य भूमिका निभाता है। बाढ़ जैसी विभीषिका के लिए मनुष्य की हरकतें ज़िम्मेदार है।

भूमि पर भी आज संकट के बादल गहरा हो रहे हैं। प्रत्येक योजना, उद्योग, खदान, रोड़, रेलवे, शहरीकरण, भवन निर्माण आदि वनों



और खेतों को चुपचाप खा रहे हैं। हर-नगर आस-पास की भूमि पर हमला करता रहता है। खेत अब कॉलोनी, अपार्टमेंट्स और सबसिटी में परिणत हो रहे हैं। इस संदर्भ में भूमि पर दबाव बढ़ जाता है तथा भूक्षरण एवं भूस्खलन होते हैं और समकालीन उपन्यासों में भी इनका चित्रण मिलता है। राकेशकुमार सिंह के 'जहाँ खिले हैं रक्तपलाश' में भी भूस्खलन का चित्रण है। इस उपन्यास का केन्द्र पलामू है। पलामू एक ज़माने में समृद्ध जंगल था। अब तमाम जंगल कट चुके हैं और पहाड़ियाँ गंजे हो चुकी हैं, और वर्षा के मौसम में भूस्खलन होता है।

आज वायु के प्रदूषण के साथ अंतरीक्ष का तापमान भी लगातार बढ़ रहा है। वायुप्रदूषण के कारण एक ओर शहरी क्षेत्र में क्रोनिक ब्रॉकाइटिस, सिलिकोसिस तथा हृदयरोग जैसी बीमारियाँ बढ़ रही हैं, तो ग्रामीण क्षेत्रों में ब्रॉकाइटिस और ट्यूबरकुलोसिस फैल रहे हैं। सुभाष पन्त के 'पहाडचोर' संजीव के 'धार', 'पाँव तले की दूब', 'सावधान नीचे आग है', मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' आदि उपन्यासों में वायु प्रदूषण का विस्तृत ब्यौरा मिलता है।

आज मानव जीवन शोर शराबे से बेहद बेचैन है। सुबह से शाम, यहाँ तक सोना भी शोर के माहौल में है। समकालीन उपन्यासों में खासकर राकेशकुमार सिंह के 'जहाँ खिले हैं रक्तपलाश', मनमोहन पाठक

के “गगन घटा घहरानी’ और सुभाष पन्त के ‘पहाडचोर’ में ध्वनिप्रदूषण का चित्रण है।

कतिपय सालों से वनों पर मानव का हस्तक्षेप बढ़ता आ रहा है। वन, विश्व में जैव वैविध्य बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा जीन-बैंक की तरह कार्य करता है। पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में वनों की काफी अहमियत है। वायुमंडल में उचित अनुपात में ऑक्सीजन की उपलब्धता बनाये रखने में वन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अलावा वन जलसंपदा को भी सुरक्षित रखता है। भारत के सूखा प्रभावित क्षेत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि सूखे से सबसे ज़्यादा प्रभावित क्षेत्र वृक्षरहित क्षेत्र है। बाढ़ आँधी एवं भूक्षरण को रोकने में वन सहायक है।

मानव समाज के विकास में जंगलों की अहमियत की ओर समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने प्रकाश डाला है। वनों का सबसे ज़्यादा दोहन तना के लिए किया जाता है। आज भी भवन निर्माण उद्योग में तने का व्यापक इस्तेमाल होता है। राकेशकुमार सिंह के उपन्यास ‘जहाँ खिले है रक्तपलाश’ में तना के लिए जंगल कटान की पाशविकता पर रोशनी डाली गई है।

विकास के नाम पर भी जंगल की अंधाधुंध कटाई होती है। कई राज्य पुराने जंगलों के स्थान पर ज़्यादा मुनाफा कम समय में देनेवाले

उद्योग जैसे खनन, और जल विद्युत परियोजनाओं को आयोजित करना चाहते हैं। 'धार' उपन्यास में संजीव ने नायिका मैना के द्वारा दिखाया है कि खनन उद्योग के चलते जंगल से दाहसंस्कार तक के लिए लकड़ी मिलना नामुमकिन हो जाती है। 'सावधान नीचे आग है' में संजीव ने दिखाया है कि किस हद तक कोयला खनन के लिए जंगलों की तबाही मची हुई है और यहाँ तक कि बेजुबान निरीह जानवरों के चरने तक के लिए जंगल शेष नहीं रह गया है।

देश में बाँधों की झड़ी लगा दी गयी है। प्रस्तावित जल-बिजली परियोजनाओं के परिप्रेक्ष्य में लिखे गये उपन्यास हैं वीरेन्द्रजैन के 'पार' एवं 'डूब'। इन दोनों उपन्यासों में बाँधों के निर्माण के लिए वनों के निर्ममतापूर्ण विनाश का ब्यौरा मिलता है।

बढ़ती हुई व्यावसायिक व सामाजिक ज़रूरतों को देखते हुए लगता है कि वन संपदा पर लगातार दबाव बढ़ रहा है। सूखे और बाढ़ की बढ़ती घटनाओं से पर्यावरण असंतुलन के खतरे होने लगे हैं। ऐसे विकराल बाढ़ एवं सूखे का चित्रण समकालीन कई उपन्यासों में मिलता है जैसे राकेशकुमार सिंह के 'जहाँ खिले हैं रक्तपलाश' में प्रलयकारी बाढ़ का चित्रण है। भगवानदास मोरवाल के 'काला पहाड़' में भीषण सूखे का ब्यौरा मिलता है।

खनन से भूमि, जल, जंगल और हवा चारों ही दूषित होते हैं। सीधे ढलानवाले पहाड़ों पर होनेवाले खनन कार्य से जल संसाधनों की तबाही के साथ-साथ भूक्षरण एवं भूस्खलन होने की संभावना है। यही नहीं, इनके मलबे से नदियाँ और झरने भर जाएँगे और वे बेकार हो जाएँगे। सुभाष पन्त के उपन्यास 'पहाड़चोर' में खनन से एक गाँव की तबाही का दर्दनाक चित्रण मिलता है। वहाँ के एकमात्र मीठा पानी का स्रोत 'धार' सूख जाती है। खनन के फलस्वरूप वहाँ भूस्खलन होता है और गाँव तबाह हो जाता है। संजीव ने अपने दोनों उपन्यास 'धार' और 'सावधान नीचे आग है' के माध्यम से खनन से प्रकृति पर होनेवाले हस्तक्षेप एवं प्रकृति के चारों तत्व भूमि, जल, जंगल एवं हवा पर होनेवाले खुले बलात्कार का खतरनाक खाका खींच लिया है।

इसके अलावा वन बांशियों के जीवन यथार्थ, उनकी संस्कृति, भाषा पर संकट आदि का विशद चित्रण 'धार', 'पार', 'पाँव तले की दूब', 'इदन्नमम' एवं 'गगन घटा घहरानी' आदि उपन्यासों मिलता है।

आज औद्योगिक विकास से बड़े पैमाने पर मानवीय विस्थापन हो रहा है। विकास योजनाओं में प्रमुख स्थान महाकाय बाँध निर्माण का है। विश्व भर के बाँध निर्माण में तृतीय स्थान भारत का है। 'डूब' एवं 'पार' उपन्यासों में वीरेन्द्रजैन ने मध्यप्रदेश में बेतवा नदी के तट पर बाँध बनाने

की योजना के तहत जिस जनजीवन का विस्थापन हो रहा है, उसका प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। लडैई गाँव को डूब क्षेत्र घोषित किया जाता है। बाँध में पानी भरने के साथ-साथ गाँववालों को मजबूरन, विस्थापित होना पड़ता है। सातों पहाड़ों घेरे के आदिवासी राउतों के बीच जहाँ सूर्य भी अपने तेज के साथ नहीं पहुँचता वहाँ इन निरीह गाँववालों को बसाया जाता है। सरकार की पाँच शताब्दी पहले के जीवन में ले जाने की योजना को धता बताकर ये गाँववाले पच्चीस शताब्दी पीछे के जीवन से फिर एक शुरुआत करेंगे। इसके अलावा 'पार' उपन्यास में जनजातीय विस्थापन का भी चित्रण मिलता है। विनाश पर आधारित विकास ज्ञान और मानव की आधुनिक सभ्यता से कटे आदिवासी जिनके जीवन का आधार प्रकृति तथा आदिमकालीन खेती है, वे अपनी प्राकृतिक व्यवस्था से भी हाथ धो बैठते हैं। राउत आदिवासियों को लडैई गाँववालों के आगमन से अपने प्राकृतिक पर्यावरण से भी विस्थापित होना पड़ता है।

भारत में खनन के कारण भारी पैमाने पर विस्थापन हो रहा है। बहुसंख्यक अनैतिक रूप से निकाले जाते हैं और कई तो दबाव से बेघर-बार हो जाते हैं। वे ईंट की भट्टियों में और पत्थर के खदानों में बंधुआ मज़दूरी करने के लिए अभिशप्त हैं। 'धार' उपन्यास में संजीव इंसानों को मवेशियों की तरह हाँक ले जानेवाले उस दर्दनाक मंजर का

चित्रण कुछ इस तरह से बयान करते हैं - “इंसानों को मवेशियों के रूप में हाँकते ले जा रहे हैं ठेकेदार रामपुर हाट, चित्तरंजन, जामताड़ा, वहाँ से ट्रेन पकडकर असम, बंगाल, बिहार या कहीं और? है कोई जानगुरु (ओझा) जो इन्हें मन्त्र से शापमुक्त कर दे?”<sup>1</sup> सुभाष पन्त के ‘पहाड चोर’ उपन्यास में चूना पत्थर खनन से होनेवाले विस्थापन का विस्तार से चर्चा मिलती है। इसके अलावा ताप बिजली घरों की स्थापना से भी बड़े पैमाने पर विस्थापन हो रहा है। इसका चित्रण संजीव के ‘पाँव तले की दूब’ उपन्यास में किया गया है।

दरअसल भारत में आदिवासी जनसमूहों का विस्थापन एवं पलायन सदियों से जारी है। विस्थापन की समस्या भारत में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में आदिवासी बर्दाश्त कर रहे हैं विकास के नाम पर बरती गई नीतियों के तहत आदिवासी अपनी ज़मीनों, संसाधनों व गाँवों से ही नहीं बल्कि अपने मूल्यों नैतिक अवधारणाओं, जीवन-शैलियों, भाषाओं एवं संस्कृति से बेदखल हो गये। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विस्थापन के दर्द को बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत किया गया है। संजीव के ‘सावधान नीचे आग है’ में विस्थापन के दर्द का चित्रण तो है साथ ही साथ मुआवज़े, पुनर्वास और नौकरी आदि विस्थापित के मूल अधिकारों से भी

---

1. संजीव - धार - पृ. 41

वंचित होने की त्रासद तस्वीर भी दिखाई गई है। आदिवासी झानू बताता है - “आस्ते-आस्ते सारा ज़मीन दखल कर लिया हमारा, बोलो हम कहाँ जायेगा, बोलो। बोला नौकरी देगा, पानी देगा, स्कूल खोलेगा - ये कर देगा, वो कर देगा, सोना से मढ़ देगा। क्या किया बोलो?”<sup>1</sup> संजीव के ‘धार’ उपन्यास में भी आदिवासी विस्थापन की चर्चा विस्तार से मिलती है।

वीरेन्द्रजैन के ‘पार’ उपन्यास में बाँध परियोजनाओं से विस्थापित राऊत आदिवासियों के जीवन की दर्दनाक तस्वीर उभर आई है। बाँध के बनने से उनका वजूद मिटता जा रहा है। उनकी ज़िन्दगी व संस्कृति पर सवालिया निशान लग रहे हैं। मैत्रेयी पुष्पा के ‘इदन्नमम’ उपन्यास में यह दिखाया गया है कि जंगल में अधिकारों से वंचित सरकारी वननियमों से पीड़ित आदिवासी अंत में विस्थापित होकर पत्थर के खदानों में बंधुआ मज़दूरी करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

हर साल पारिस्थितिक संकट जैसे बाढ़, भूस्खलन, सूखा, भूढलाव, निर्वनीकरण, मरुस्थलीकरण एवं औद्योगिक आपदाओं से बारी पैमाने पर लोग विस्थापित हो जाते हैं। मौजूदा समय गवाह है कि विश्व भर में करोड़ों लोग सूखे से प्रभावित हैं। निर्वनीकरण से धर्ती आज सूखी हो गई

---

1. सावधान नीचे आग है - संजीव - पृ. 43

है और मरुस्थलीकरण, की गिरफ्त में जकड़ता भी जा रहा है। भगवानदास मोरवाल के 'काला पहाड़' उपन्यास में सूखा एवं उससे उत्पन्न विस्थापन के बारे में विस्तार से ब्यौरा दिया गया है। नगीना गाँव में सात साल से बरसात नहीं हुई। पहले आधे सावन तक तो जिधर भी निगाह जाती है, पानी ही पानी दिखाई देता था। सूखे के कारण खेती भी तहस-नहस हो जाती है। आखिर ज़्यादातर गाँववाले गाँव छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। संजीव के 'सावधान नीचे आग है' उपन्यास में भी सूखे के कारण राजस्थान से विस्थापित लोगों के दुःख दर्द का वर्णन मिलता है।

भौमताप की वजह बाढ़ की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं। हिमनदियों के सिकुड़ने व चक्रवात से, तथा बढ़ते महासागरीय जलस्तर के कारण भी बाढ़ बराबर हो रही है। आम तौर पर अतिवृष्टि से नदी के जलस्तर बढ़ने से ही बाढ़ होती है। यह उतना खतरनाक भी नहीं होती। बाँधों के निर्माण से भी बाढ़ होने की संभावना है। वीरेन्द्रजैन के 'डूब' एवं 'पार' दोनों उपन्यासों में बाँध के निर्माण से उत्पन्न बाढ़ का ज़िक्र है। 'डूब' उपन्यास का कथा क्षेत्र लडैई गाँव है। सरकार की तरफ से राजघाट बाँध परियोजना की घोषणा की गयी। जिस लडैई को केवल सूखे का अनुभव है। वहाँ साल में दो तीन बार बाढ़ आने लगी। अंत में हम देखते हैं कि बाँध बना नहीं कि उसका तटबंध टूट गया। पूरे इलाके में पानी फैल गया। इतनी



भयानक बाढ़ कि लोग अपना घर-बार खेत खलिहान छोड़कर भाग गये। उपन्यास 'पार' में भी बाढ़ से हुए विस्थापन का चित्रण है। मूसर 'खेरा' (आदिवासी गोत्र समाज) पार (पहाड़) में बसा है। बाँध वालों की गलत नीतियों के कारण अचानक एक रोज़ बिना मेघ बरसे ही पूरे मूसर खेरे में जल ही जल समा गया। सब लोग पहाड़ छोड़कर भाग गये।

पहाड़ी इलाकों में भूस्खलन आम बात हो गया है। निर्वनीकरण एवं पहाड़ी इलाकों में सस्य आवरण का हट जाना एवं ऊपरी उपजाऊ मिट्टी का बह जाना, भूस्खलन की अहम वजह ही है। इसके अलावा विकास कार्य जैसे खनन, बाँध एवं सडक योजनाएं भी इसके लिए ज़िम्मेदार हैं, सुभाष पन्त के बहुचर्चित उपन्यास 'पहाड़चोर' का झाण्डुखाल मोचियों का गाँव है। पहाड़ की तराई में बसा शांत व सुन्दर गाँव। वहाँ लाइम स्टॉण कंपनी खनन माफिया का जामा पहनकर उन्हें लूटने आती है। वे जंगल काट ले जाते हैं, पहाड़ को खोदते हैं। विस्फोटनों से पहाड़ की नींव तक हिल जाती है। गाँव में तूफान आता है। वहाँ का झरना लुप्त हो जाता है। अतिवृष्टि होती है और भूस्खलन हो जाता है। गाँववाले सब अपनी जान बचाने के लिए सब कुछ छोड़कर भाग निकलते हैं।

यों वर्तमान समय में विभिन्न प्राकृतिक दुर्घटनाओं, आपदाओं तथा अभूतपूर्ण असंतुलनात्मक घटनाओं की वजह पारिस्थितिक विनाश

आम बात हो गया है। इस कारण ही आज पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। इस का परिणाम हमें बाढ़ और सूखे के रूप में भुगतना पड़ रहा है।

पृथ्वी के बढ़ते तापमान से बचने के लिए संरक्षण एवं संवर्द्धन की बेहद ज़रूरत है। ऐसे पेड़ लगाने चाहिए जिनसे भूमि में उपजाऊपन, नमी आदि की वृद्धि हो। पीपल व अन्य स्वदेशी वृक्षों का बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण कर प्रदूषण की समस्या से लड़ा जा सकता है। बाँध जैसे विकास परियोजनाओं की पर्यावरणिक तबाही से बचने के लिए छोटे एवं लाभदायक बाँधों को प्रोत्साहन देना चाहिए। हवा से व सौरज से बिजली पैदा करने की योजनाओं को प्राथमिकता देनी चाहिए। खनन से होनेवाले पारिस्थितिक क्षति से बचने के लिए कई कारगर कदम उठाने की ज़रूरत है। सबसे पहले पानी के बहाव से उत्पन्न छोटे-छोटे नालों में छोटे बाँध बनाना आवश्यक है। इसके साथ खुले हुए खनन के गड्ढों में पुराना मलबा भरना चाहिए उसके ऊपर 1.0 मीटर अच्छी मिट्टी डालकर-वनस्पति की पुनर्स्थापना आवश्यक है। वनस्पतियों की चयन में स्थानीय वनस्पतियों को प्राथमिकता देनी चाहिए। पानी की समस्या से निपटने के लिए पुराने तरीकों की ओर हमें लौटना चाहिए। तालाबों, पोखरों, आहर-पाइनों, कुआँ-कुइयाँ आदि के माध्यम से जलसंग्रहण प्रणाली को बढावा देना होगा।

संक्षेप में प्रकृति की प्रति प्रतिबद्ध साहित्यकारों की एक परंपरा उपन्यास जगत में मौजूद है। उनके मन में प्रकृति के प्रति प्रेम, ममता, आदर एवं दायित्वबोध है। इसीलिए उन्होंने पारिस्थितिक समस्याओं को उपन्यास के कथ्य के रूप में चयन किया। जिसप्रकार मेधापाटकर, वंदनाशिवा, सुंदरलाल बहुगुणा जैसे दिग्गज पर्यावरणविद् पारिस्थितिक-विनाश के खिलाफ संघर्षरत हैं उसीप्रकार ये उपन्यासकार भी अपनी रचनाओं के ज़रिए संघर्षरत हैं और ये प्रतिबद्ध साहित्यकार दायित्वशील नागरिक की भूमिका बखूबी निभा रहे हैं।



## संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अथर्ववेद श्रीपाद दामोदर सातवलेक्कर  
चौखांबा प्रकाशन  
वाराणसी, उत्तरप्रदेश
2. अवधारणाओं का संकट पूरनचंद जोशी  
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड  
नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली
3. आज भी खरे हैं तालाब अनुपम मिश्र  
माहेश्वरी  
वाणी प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड  
4697/21-ए, दरियागंज  
नई दिल्ली-110002  
सं. 2005
4. आदिवासी विकास से सं. रमणिका गुप्ता  
विस्थापन राधाकृष्ण प्रकाशन  
7/31, अंसारी रोड  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

5. आदिवासी साहित्य यात्रा सं. रमणिका गुप्त  
राधाकृष्ण प्रकाशन  
7/31, अंसारी रोड  
दरियागंज, नई दिल्ली
6. आधुनिक हिन्दी समीक्षा निर्मलाजैन, साहित्य  
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली  
सं. 1985
7. इदन्नम मैत्रेयी पुष्पा  
किताब घर प्रकाशन  
4855-56/24, अंसारी रोड  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002  
प्र.सं. 1994
8. ऋग्वेद श्रीपाद दामोदर सातवलेक्कर  
चौखांबा प्रकाशन  
वाराणसी, उत्तरप्रदेश
9. कविता की मुक्ति नंदकिशोर नवल  
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली  
सं. 1976
10. कवि दृष्टि अज्ञेय  
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद  
सं. 1983

11. कला और साहित्य चिंतन सं. नामवरसिंह  
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली  
सं. 1991
12. काला पहाड भगवानदास मोरवाल  
राधाकृष्ण प्रकाशन, 7/31  
अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली  
सं. 1999
13. कार्ल मार्स : कला और साहित्य चिंतन नामवरसिंह  
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली  
सं. 1991
14. कुइयॉजान नासिरा शर्मा  
सामयिक प्रकाशन  
3320-21 जटवाडा,  
नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली
15. गगन घटा घहरानी मनमोहन पाठक  
प्रकाशन संस्थान  
4715/21, दयानंद मार्ग  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002  
सं. 2000

16. जंगल जंगल लूट मची है अमरेन्द्र किशोर  
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड  
21/38 अंसारी मार्ग, दरियागंज  
नई दिल्ली-110002  
पहला संस्करण-2006
17. जंगल जहाँ शुरु होता है संजीव  
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.  
2/38, अंसारी मार्ग,  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
18. जहाँ खिले है रक्तपलाश राकेशकुमार सिंह  
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली  
सं. 2003
19. डूब वीरेन्द्र जैन  
वाणी प्रकाशन  
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002  
सं. 1998
20. धरती की पुकार सुन्दरलाल बहुगुणा  
राधाकृष्ण प्रकाशन  
अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली  
सं. 2007

21. धर्म और पर्यावरण किशनराम बिश्नोई  
नरसीराम बिश्नोई  
दया पब्लिशिंग हाउस  
2123/74, दवा राम पार्क, त्रिनगर  
दिल्ली-110035
22. धार संजीव  
राधाकृष्ण प्रकाशन  
2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज  
नई दिल्ली-110002
23. नव साम्राज्य के नये किस्से अरुंधति रॉय  
पेंगुइन बुक्स इंडिया प्रा.लि.  
11 कम्युनिटी सेंटर  
पंचशील पार्क, नई दिल्ली-110017  
प्र.सं. 2005
24. नित्य कर्म पूजा प्रकाश गीता प्रेस  
गोरखपुर, संवत्  
2060 तीस्वाँ संस्करण
25. पहाड चोर सुभाष पन्त  
राजपाल एण्ड सन्ज़  
कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006  
संस्करण-2005



26. पर्यावरण और जलप्रदूषण निशांतसिंह  
ड्रीम बुक सर्विस 35/3  
पॉकेट सी-9, सेन्टर-8  
अपोसिट, सरोज हॉस्पिटल  
रोहिणी, दिल्ली-110085
27. पर्यावरणीय अध्ययन डॉ. हरिश्चन्द्र सिंह  
ग्रीनलीफ पब्लिकेशन, सी.के.  
59/5, राधाचित्र मंदिर बिल्डिंग  
वारणसी
28. पर्यावरण की राजनीति लता जोशी  
अनामिका पब्लिशर्स एंड  
डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड  
4697/3 21-ए, अंसारी रोड  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002  
प्र.सं. 2001
29. पर्यावरण की संस्कृति शुभु पटवा  
वागदेवी प्रकाशन  
सुगन निवास, बीकनेर  
प्र.सं. 1993

30. पर्यावरण पर्यटन एवं  
अन्तर्राष्ट्रीय कानून  
ताज रावत  
प्रवीण प्रकाशन  
4760-61 (द्वितीय तल) 23  
अंसारी रोड, दरियागंज  
नई दिल्ली-110002  
संस्करण 2008
31. पर्यावरण प्रदूषण और  
इक्कीसवीं सदी  
डॉ. सुजाता बिष्ट  
तक्षशिला प्रकाशन  
98-ए, हिन्दी पार्क  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002  
प्र.सं. 1992
32. पर्यावरण वर्तमान और  
भविष्य  
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव  
राधा पब्लिकेशन 4231/1,  
अंसारी रोड, दरियागंज  
नई दिल्ली-110002
33. पर्यावरण विकास और  
यथार्थ  
ज्ञानेन्द्र रावत  
श्री. नटराज प्रकाशन  
ए-507/12, साउथ गांवड़ी  
एक्स्टेंशन, दिल्ली-110053  
प्र.सं. 2005

34. पर्यावरण विज्ञान  
डॉ. गया प्रसाद गुप्त  
जय भारती प्रकाशन  
267बी, माया प्रेस रोड़  
इलाहाबाद-211003 द्वारा प्रकाशित  
प्र.सं. 2001
35. पर्यावरण और संस्कृति  
का संकट  
डॉ. गोवन्द चातक  
तक्षशिला प्रकाशन  
98-ए, हिन्दी पार्क दरियागंज  
नई दिल्ली-110002  
प्र.सं. 1992, परिवर्धित और संशोधित  
संस्करण 2006
36. पर्यावरणीय समस्याएँ  
और समाधान  
विनयकुमार  
लोक संस्कृति प्रकाशन  
4 अंसारी रोड़, गली मुरारी लाल  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
37. पार  
वीरेन्द्र जैन  
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002  
सं. 1998
38. पाँव तले की दूब  
संजीव  
प्रवीण प्रकाशन, 1/1079 ई  
महरौली नई दिल्ली-110030  
प्र.सं. 1995

39. पीपल के बहाने विद्यानिवास मिश्र  
वाणी प्रकाशन  
21-ए, दरियागंज  
नई दिल्ली-110002  
संस्करण 1998
40. प्रकृति पर्यावरण और बाज़ारवाद राजेन्द्र जोशी  
अमित प्रकाशन, के.बी. 97  
कवि नगर, गाज़ियाबाद-201002  
नई दिल्ली
41. प्रदूषण पृथ्वी का ग्रहण प्रेमानन्द चन्दोला  
प्रकाशन हिमाचल पुस्तक भण्डार  
IX/221, सरस्वति भंडार  
गाँधी नगर, दिल्ली-110031  
संस्करण 2008
42. प्राकृतिक आपदाएँ और बचाव हरिनारायण श्रीवास्तव  
राजेन्द्र प्रसाद  
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड  
7/31, अंसारी रोड़, दरियागंज  
नई दिल्ली-110002  
प्र.सं. 2009

43. बाज़ार के बीच : बाज़ार के प्रभा खेतान  
खिलाफ भूमण्डलीकरण और वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज  
स्त्री के प्रश्न नई दिल्ली-110002  
प्र.सं. 2004
44. भूमण्डलीकरण के भँवर कमलनयन काबरा  
में भारत प्रकाशक - प्रकाशन संस्थान  
4715/21, दयानन्द मार्ग  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002  
प्र.सं. 2005  
द्वि. सं. सन् 2008
45. भूमि, जल, वन और संपादन अनुपम मिश्र  
हमारा पर्यावरण प्रकाशक - नवचेतन प्रकाशन  
जी-5 गली नं. 16  
राजपुरी उत्तम नगर  
दिल्ली-110059  
संस्करण 2008
46. मसि कागद प्रभाष जोशी  
प्रकाशक - प्रभात प्रकाशन  
चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6  
संस्करण 1990

47. महागाथा वृक्षों की प्रतिभा आर्य  
प्रकाशक राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट  
लिमिटेड, 2/38, अंसारी मार्ग  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002  
पहला संस्करण 1997
48. वीरेन्द्र जैन का साहित्य सं. मनोहरलाल  
अरुणोदय प्रकाशन, नई दिल्ली  
प्र.सं. 1997
49. समकालीन साहित्य चिंतन सं. डॉ. रामदरश मिश्र  
डॉ. महीप सिंह  
प्रभात प्रकाशन  
चावडी बाज़ार, दिल्ली-110006
50. समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना संपादन डॉ. वी.के. अब्दुल जलील  
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज  
नई दिल्ली-110002  
प्र.सं. 2006
51. सावधान नीचे आग है संजीव  
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली  
सं. 1986
52. साहित्य का समाज शास्त्र डॉ. नगेन्द्र  
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली  
प्र.सं. 1982

53. साहित्यिक निबन्ध                      डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त  
लोकभारती प्रकाशन, 15-ए  
महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1
54. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी  
साहित्य का इतिहास                      डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णीय  
राजपाल एंड सन्ज़  
कश्मीरी गेट, दिल्ली  
सं. 1996
55. हज़ारी प्रसाद ग्रन्थावली              सं. जयनारायण द्विवेदी  
एवं मुकुंद द्विवेदी - भाग-7  
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली  
प्र.सं. 1981
56. हमारा पर्यावरण                      लाइक फतेह अली - अनुवाद  
अमन नम्र  
प्रकाशक - नेशनल बुक ट्रस्ट  
इंडिया, नेहरु भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल  
एरिया वसंत कुंज  
नई दिल्ली-110070  
पहला संस्करण 2006
57. हमारा पर्यावरण                      सं. अनुपम मिश्र  
गाँधी शांति प्रतिष्ठान  
221, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग  
नई दिल्ली

58. हमारा वातावरण और शहरी रहन सहन  
संपादन अनुपम मिश्र  
प्रकाशक - ज्योतिलोक प्रकाशन 21,  
टैगोर मार्ग, केवल पार्क  
आज़ादपुर, दिल्ली-110033
59. हिन्दी आलोचना के वैचारिक सरोकार  
डॉ. कृष्णा दत्त पालीवाल  
वाणी प्रकाशन  
नई दिल्ली-110022
60. हिन्दी उपन्यास : आज  
डॉ. के. वनजा  
प्रकाशक कोच्चिन विज्ञान और  
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय  
कोच्चि-68022, केरला
61. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा  
रामदरश मिश्र  
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड  
नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली  
प्र.सं. 1968
62. हिन्दी उपन्यास का इतिहास  
प्रो. गोपाल राय  
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली  
सं. 2002
63. हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य  
डॉ. महीप सिंह  
लिपि प्रकाशन



64. हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक  
डॉ. जयश्री बरहाटे  
प्रकाशक संचयन  
124/152 सी  
गोविन्द नगर, कानपुर-208006  
सं. 1988
65. हिन्दी साहित्य का इतिहास  
सं. डॉ. नगेन्द्र  
मयूर पेपर बेग्स, ए-94  
सेक्टर नं 4, नोएडा-201331
66. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास  
लोकभारती प्रकाशन  
15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग  
इलाहाबाद-1
67. हिन्दी विश्वकोश - भाग-14  
संपादक नगेन्द्र बसु  
प्रकाशक बी.आर. पब्लिशिंग  
कारपारेशन, दिल्ली  
सं. 1986

#### मलयालम संदर्भ ग्रन्थ सूची

68. अधिनिवेशत्तिन्टे अटियोषुक्कुक्कल  
एम.पी. वीरेन्द्रकुमार  
मातृभूमि बुक्स, एम.एम. प्रेस  
कोप्पिक्कोड़
69. आगोलवत्करणत्तिन्टे पुतुयुद्धडल  
वन्दना शिवा  
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम

70. इक्को फेमिनिज़म  
इक्को टूरिज़म  
माक्सिसम एन.एम. पियर्सण  
करन्ट बुक्स, तृशशूर  
सं. 2006
71. कथयुम परिस्थितियुम जी. मधुसूदनन  
करन्ट बुक्स, त्रिशशूर  
सं. 2006
72. जलयुद्धडल वंदना शिवा  
मातृभूमि बुक्स, कोषिक्कोड़
73. परिस्थिति प्रत्ययशास्त्रवुम एन.एम. पियर्सण  
मार्क्सियन प्रतिसन्धियुम करन्ट बुक्स, त्रिशशूर  
सं. 2010
74. पश्चिमघट्टतिले बेन्नि कुर्यन  
जैववैविध्यम डी.सी. बुक्स, कोट्टयम  
सं. 2008
75. प्लाच्चिमटयिले जल एम.पी. वीरेन्द्र कुमार  
चूषणवुम जनकीय मातृभूमि बुक्स  
प्रतिरोधवुम कोषिक्कोड़
76. भगवद्गीता बालगंगातर तिलक  
अनुवाद आचार्य नरेन्द्र भूषण  
एन.बी. बुक्स, चेडन्नूर

77. हरित चिंतकल                      प्रो. एम.के. प्रसाद  
केरल शास्त्र साहित्य परिषत्  
कोच्चि-24  
पहला संस्करण 2006
78. हरित निरूपणम  
मलयालत्तिल                      जी. मधुसूदनन  
करन्ट बुक्स, त्रिशूर
79. हरित राष्ट्रीयम                      जॉर्ज के. अलक्स  
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम  
सं. 2003
80. हरित विप्लवत्तिन्टे  
काणाप्पुरडल                      पोलसण  
मातृभूमि बुक्स, कोप्पिक्कोड़  
सं. 2007

### अंग्रेज़ी संदर्भ ग्रन्थ सूची

81. A Dictionary of Marxist thought                      Edited by Tom Bottomore  
Publisher - Basil Blackwell  
(Oxford England 1983)
82. Blue Gold                      Moude Barlow and Tony Clark  
Earth Scan Publication Ltd.  
London 2002 Publication

83. Feminist and Post Development thought      Edited by Kriemild Sounder  
Zed Books, London and  
Newyork
84. Modern English Poetry      A.N. Kapoor  
Kithab Mahal  
Alahabad 1962
85. One Straw revelation      Masanobu Fukuoka  
Published by Rodali Press  
Oct. 1978
86. Silent Spring      Rachel Carson  
Published by Houghton Mifflin  
U.S.A, 1962
87. The Encyclopedia of Philosophy      Paul Edwards  
Macmillan Publishing Company  
New York 1987
88. The Oxford Companion of Philosophy      Ted Honderich  
Oxford University Press  
New York, 1995

89. The Road back to Nature regaining the Paradise Lost - Environment Philosophy by Masanobu Fukuoka  
Published by Japan Publication Trading Company Ltd.  
Tokyo
90. The Social Science Encyclopedia  
Edited by Adam Kuper  
Jessica Kuper  
Published by Routledge  
London 1996

### हिन्दी पत्र - पत्रिकाएँ

- |                      |                     |
|----------------------|---------------------|
| 1. अकार              | जुलाई - 2005        |
| 2. अक्षरा            | अक्तूबर-दिसंबर 2000 |
| 3. आलोचना            | जनवरी-मार्च 2001    |
| 4. दस्तावेज़         | जुलाई-सितंबर 1998   |
| 5. दस्तावेज़         | जुलाई-सितंबर 2000   |
| 6. दस्तावेज़         | अक्तूबर 1996        |
| 7. नया ज्ञानोदय      | मार्च 2004          |
| 8. पर्यावरण संजीवनी  | जून 2008            |
| 9. पर्यावरण संजीवनी  | जुलाई 2008          |
| 10. राजभाषा भारती    | जनवरी-मार्च 2001    |
| 11. राजस्थान पत्रिका | 21 मार्च 1993       |
| 12. वर्तमान साहित्य  | मार्च 2007          |
| 13. वर्तमान साहित्य  | जून 2007            |
| 14. वर्तमान साहित्य  | सितंबर 2007         |
| 15. वर्तमान साहित्य  | जनवरी 2008          |
| 16. वागर्थ           | सितंबर 2001         |
| 17. वागर्थ           | अक्तूबर 2001        |
| 18. वागर्थ           | जुलाई 2002          |
| 19. वागर्थ           | फरवरी 2002          |
| 20. साक्षात्कार      | जून-जुलाई 2005      |

21. साक्षात्कार	जुलाई-अगस्त 2006
22. हंस	सितंबर 2000
23. हंस	जनवरी 2006
24. हंस	अगस्त 2006
25. हस्तक्षेप	5 जून 1994

### मलयालम पत्र-पत्रिकाएँ

1. एन्टे मरम कुट्टिकलुटे डायरी	- 2007-08
2. मातृभूमि पत्रिका	- मई 19-25, 1991
3. मातृभूमि पत्रिका	- जनवरी 19-25, 1992
4. मातृभूमि पत्रिका	- जनवरी 26 - फरवरी 1
5. मातृभूमि पत्रिका	- जून 26 - जुलाई 2, 2002
6. मातृभूमि पत्रिका	- सितंबर 2001
7. मातृभूमि पत्रिका	- जनवरी 19-25, 2004
8. मातृभूमि पत्रिका	- अप्रैल 2005
9. मातृभूमि तोषिल वार्ता - हरिश्री	- 2006 मई 6
10. मातृभूमि तोषिल वार्ता - हरिश्री	- 2006 जून 10
11. साहित्य लोकम	- सितंबर 1995

